स्वातन्त्र्योत्तर
हिन्दी और गुजराती
नयी कविता



नेशनल पब्लिशिंग हाउस • दिल्ली

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी और गुजराती नयी कविता

मंजु सिन्हा

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
२३ दरियागंज दिल्ली ११०००६
द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण १९७३
© डॉ० मंजु सिन्हा
मूल्य ३५.००

जी आर कम्पोजिंग एजेंसी द्वारा
सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस दिल्ली ११००३२
में मुद्रित

Swatantryottar Hindi aur
Gujrati Nayi Kavita
(Thesis)
by Dr Manju Sinha

:

भूमिका

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का विषय है 'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी और गुजराती नयी कविता : एक तुलनात्मक अध्ययन'। इस विषय को चुनने के पीछे हिन्दी और गुजराती नयी कविता में रुचि के अतिरिक्त विषय से सम्बद्ध सम्भावनाएँ भी कारण स्वरूप रही हैं। हिन्दी और गुजराती साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन पर कार्य पहले भी हो चुका है किन्तु वह समस्त कार्य मुख्यतः मध्यकालीन साहित्य में और उपन्यासों से सम्बद्ध है, नया साहित्य अभी तक अछूता ही रहा है। प्रबन्ध में दो भाषाओं में मिलनेवाली एक-सी संवेदना के क्रमिक विकास के अध्ययन का प्रयास किया गया है और यह परखने की चेष्टा भी की गयी है कि किन परिस्थितियों में और किन दिशाओं से होकर इसे वर्तमान स्वरूप प्राप्त हुआ है।

नयी कविता का विवेचन शास्त्रीय और परम्परागत मानदण्डों के अनुसार नहीं किया गया है। अभावों और अपनी उपलब्धियों के साथ जो कुछ नया कहने का प्रयास 'नयी कविता' में मिलता है उसके मूल आधारों और सन्दर्भों को ही सामने लाने का प्रयास किया गया है।

माँग के कारण ही उदभूत हुई। वह अचानक ही कविता के क्षेत्र में नहीं आयी अपितु उसके पीछे समय की एक सुदृढ पृष्ठभूमि है।

दूसरे अध्याय मे हिन्दी और गुजराती नयी कविता के काव्य-परिदृश्य पर विचार किया गया है। हिन्दी में छायावाद छायावादोत्तर गीत और प्रगतिवाद से होते हुए नयी कविता का विकास हुआ और गुजराती में गाधीवाद और मार्क्सवाद के बाद प्रयोगवादी अथवा नया काव्य विकसित हुआ। साहित्य में लम्बे समय से चले आनेवाले प्रयोगों की एकरूपता ने यह आवश्यक कर दिया था कि एक ऐसे काव्य को अवसर दिया जाये जो हर दृष्टि से कुछ-न कुछ ताजा और अछूता दे।

तीसरा अध्याय नयी कविता के ऐतिहासिक क्रम विकास तथा साथ ही पाश्चात्य कविता की मुख्य धाराओं और भारतीय (हिन्दी गुजराती) कविता पर उनके प्रभाव से सम्बन्धित है। नयी कविता को बहुधा पाश्चात्य कविता की नकल माना जाता रहा है पर सत्य तो यह है कि नयी कविता की दृष्टि सकुचित नहीं है और प्रबुद्ध होने के कारण विश्व-काव्य का परिचय नये कवि के लिए लज्जा की बात नहीं है, साथ ही विश्व की परिस्थितियां भी समान होती जा रही हैं। ऐसे मे यदि उसके काव्य में पश्चिम की उक्तियों से समानता प्राप्त होती है तो उसे नकल कहने के स्थान पर प्रभाव कहना ही अधिक उचित है।

चौथा अध्याय नयी कविता की दार्शनिक पीठिका से सम्बन्धित है, जिसमे रहस्यवाद अरविन्द-दर्शन, मार्क्सवाद मनोविश्लेषणवाद और अस्तित्ववाद की पृष्ठभूमि मे नयी कविता का विश्लेषण किया गया है। *किसी दर्शन का आधार लेकर नयी कविता नहीं चली* है और न ही किसी दर्शन विशेष का प्रतिपादन उसका लक्ष्य है किन्तु पश्चिम और पूर्व के भिन्न भिन्न युगानुकूल दर्शनों का स्पर्श उस पर अवश्य है। यह स्पर्श भिन्न भिन्न कवियों में भिन्न भिन्न मात्रा में है। दर्शनों के सामूहिक रूप तथा नयी कविता में उनके समावेश का विश्लेषण यहाँ हुआ है।

पाँचवें अध्याय मे नयी कविता की भावभूमि *संवेदना बोध और मानव मूल्यों का विवेचन* किया गया है। छठा अध्याय नयी कविता की काव्यक्रिया अर्थात् उसके शिल्पगत प्रयोगों से सम्बन्धित है। शिल्प के अन्तर्गत आनेवाले भाषा, प्रतीक, बिम्ब और छन्द से सम्बन्धित प्रयोगों के साथ ही संरचनामूलक कतिपय नये आयामों को लिया गया है।

सातवें अध्याय मे प्रमुख कवियों के काव्य का विवेचन और हिन्दी और गुजराती की तीन तीन कविताओं का विश्लेषण किया गया है। *जिन कवियों के काव्य में नयी कविता की* सभी सम्भावनाएँ प्राप्त हैं उन्हीं का विवेचन किया गया है। कविताओं के चयन में उनके कथ्य के साथ ही शिल्प की परिपक्वता और विचारों की गहराई भी कसौटी रही है।

आठवें अध्याय में विषय का समापन किया गया है और काव्य की अन्य धाराओं की तुलना

मे नयी कविता की विवेचना की गयी है। अपनी तमाम बौद्धिक उपलब्धि, अनुभव की प्रामाणिकता और सच्चाई के बाद भी नयी कविता सम्प्रेषण म पूरी सफलता नही प्राप्त कर सकी है और उलझी तथा गहरी सवेदना को विषय बनाने के कारण जनसाधारण मे लोक प्रिय न होकर एक सीमित किन्तु प्रबुद्ध वग की कविता हो गयी है।

हिदी और गुजराती नयी कविता का तुलनात्मक अध्ययन करने का यह पहला प्रयास है, क्योकि हिदी की नयी कविता भले ही स्थापित हा चुकी हो, गुजराती नयी कविता अभी सक्रान्ति के उसी दौर मे है जहा हर गुण के बावजूद नयी प्रवृत्ति का विरोध किया जाता है। हिदी नयी कविता के ऐतिहासिक क्रमविकास के साथ ही उसकी दाशनिक पीठिका और शिल्प के क्षेत्र म उसकी नवीन स्थापनाओ का मूल्याकन करने का प्रयास किया गया है। गुजराती नयी कविता मे शिल्प म कोई नया मानदण्ड लेने या नयी स्थापना करने का कोई प्रयास नही है फिर भी जो दृष्टि ली गयी है उसके आधार पर गुजराती नयी कविता का विवेचन पहले नहीं हुआ है।

मैं श्री गिरिजाकुमार माथुर, श्री सर्वेश्वरदयाल सक्सेना और डॉ० चन्द्रकान्त मेहता को हार्दिक धन्यवाद देती हूँ जिन्होने अपने निजी पुस्तकालय से पुस्तकें और पत्रिकाएँ देकर मेरी समय-समय पर मदद की।

मैं श्रद्धेय डा० नगेन्द्र की आभारी हूँ जिन्होने रुचि के अनुकूल विषय देकर अनुग्रहीत किया। आदरणीय डा० रामदरश मिश्र और डॉ० चन्द्रकान्त मेहता के प्रति आभार प्रदर्शित करती हूँ, जिनके कुशल और स्नेहपूर्ण निर्देशन के बिना काम पूरा होना ही सम्भव नही था।

—मजु सिन्हा



अनुक्रम

स्वातन्त्र्योत्तर
हिन्दी
और गुजराती
नयी कविता

नयी कविता की सामाजिक और बौद्धिक पृष्ठभूमि

काव्य का उदभव शून्य म या आकाश म नही होता। ऐसा नही है कि मानवीय शक्ति के अतिरिक्त किसी दवी शक्ति के सहयोग से काव्य की रचना होती है। अत प्राय कायगत प्रवृत्तिया के मूल म कुछ एसे ऐतिहासिक सत्य रहते है जो सामाजिक, वयक्तिक और सस्कारगत स्थितियो के माध्यम स अभिव्यक्त होत है। वास्तव म, आज साहित्य व्यक्तिगत अनुभूतियो की अभिव्यक्ति मात्र न होकर चारो ओर फले हुए विभिन्न सदर्भो से जुडा हुआ है। युग निर्माण म सहायक परिस्थितिया का इस कारण साहित्य से अभिन्न सम्बन्ध जुड जाता है।

कविता का जहा तक सम्बन्ध है (कविता अभी भापा निरपेक्ष मानी जाए तो उचित होगा) भारत भर की कविता एक अथ म नए जागते हुए देश की कविता थी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए सजग प्रयास, यदि ऊपरी दष्टि से देखा जाए तो, कांग्रेस की स्थापना के साथ सन १८८५ म ही आरम्भ हो गए थे। अभी तक भारत म देश अथवा राष्ट्रीयता की भावना विकसित नही हुई थी। हिन्दी प्रदेश का अथ केवल सयुक्त प्रान्त (वतमान उत्तर प्रदेश) था, जहा के लोग हिन्दुस्तानी अथवा खडी बोली हिन्दी बोलते थे। बाकी प्रान्त अपनी भापा और अपनी जाति के बाहर का सब कुछ भूल बठे थ। साहब-बीबी गुलाम की बनमाली सरकार लेन' की चौधरी बाडी जिस तरह बाहर की दुनिया स एकदम बेखबर बदलत हुए समय से बेफिक्र अपन ही ससार म लीन थी, उसी प्रकार देश भर एक कुआँ था, जिसके बाहर दुनिया मानो थी ही नही।

यह वह समय था जब कुएँ के बाहर क आलोक, भीड और परिवतन स परिचित कराने के लिए स्वामी विवकानन्द 'उठो जागो ! और जब तक तुम अपने अतिम ध्यय तक नही पहुँच जाते, निश्चित मत हो' का सदेश दे रह थे। राजा राममोहन राय और स्वामी दयानन्द सरस्वती ब्रह्मसमाज और आयसमाज की स्थापना कर चुके थ। इसका स्पष्ट अथ था कि अपने म दुनिया समेटे खडी हवेलिया जल्दी ही समय के सन्तत आघाता से गिरेंगी और उनके मलबे पर जिसका निर्माण होगा उसम केवल अतीत न होकर आज और होनेवाला कल भी होगा।

बिरादरी बाहर कर दिए जानेवाले विदेश गए लोग अब विजातीय नहीं, सामान्य माने जाने लगे। जाति पाँति छुआछूत और हिन्दू धर्म के नाम पर फैले भयंकर पाखण्ड की परतें उघड़ने लगीं। इन सबके बदले जिस धर्म का निर्माण हो रहा था वह कोई विशिष्ट धर्म नहीं मानव धर्म था।

घर की चहारदीवारी में बन्द, सात तालों में रखी जानेवाली स्त्रियाँ पुरुष से अधिकार माँगने लगी थीं। घूँघट उघाड़कर विरोधों का सामना करती हुई जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में काम सम्हालने लगी थीं। अधिक शिक्षा देने से स्त्री का चरित्र बिगड़ जाता है—इस मान्यता को झूठ करने के लिए हर ओर प्रयास हो रहे थे। बाल विवाह का विरोध, विधवा विवाह का समर्थन, सती प्रथा का निषेध—एक रूढ़िवादी समाज की जड़ हिला देने में ये प्रयत्न समर्थ थे।

सबको जीने के समान अधिकार मिले। शिक्षा के क्षेत्र में होनेवाले क्रांतिकारी परिवर्तनों का श्रेय लार्ड मैकाले को ही जाएगा। एक प्रकार से देश की स्वतन्त्रता प्राप्ति का एहसास भारतीय जनता के मन में सहसा नहीं आया था। ग्यारहवीं शताब्दी में जब चौहान वंश का पतन भारतीयों की संकीर्ण मनोवृत्ति के कारण हुआ तब से लेकर सन् १९४७ तक आठ शताब्दियों का इतिहास परतन्त्रता और पराजय का इतिहास ही रहा। अपने अतीत में क्षण भर की प्रेरणा देने वाले दो चार ऐतिहासिक पात्रों को छोड़कर और कोई नहीं था। इतिहास में शत्रु का साथ देनेवाले नाम भी, उन नामों के साथ ही सामने आते हैं जिनके लिए राष्ट्र (अथवा राज्य) के हित से बड़ा अपना हित था। ऐसी स्थिति में स्वाधीनता की ओर बढ़ता हर पाँव काट दिया जाता था। विरोध में उठता हर सिर कुचल दिया जाता था।

बौद्धिक परिवर्तन और राजनैतिक सजगता

इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना का वर्ष सन् १८८५ भारत के सांस्कृतिक इतिहास में एक नए युग के आगमन का प्रतीक है। इस समय से ही भारतीय मस्तिष्क अपनी राजनीतिक स्थिति के विषय में जागरूक हो रहा था। पश्चिम (अंग्रेजों) का प्रभाव उन पर कई रूपों में स्पष्ट हुआ। भारतीयों के लिए कानून की शिक्षा आरम्भ हो चुकी थी और पत्रकारिता के प्रचार द्वारा सरकार विरोधी और ब्रिटिश विरोधी भावनाओं का प्रसार शब्द रूप में होने लगा था। भारतीय भाषाओं के साहित्य में राष्ट्रीयता के पूर्वाग्रही भावनाओं, आशाओं और आकांक्षाओं को स्वर मिल रहा था।

शिक्षित भारत और भारत स्थित ब्रिटिशों के मध्य की खाई अधिकाधिक बढ़ती जा रही थी। भारतीय पत्रकार निर्भय होकर सरकार पर आघात करते थे और भारतीय नेता सार्वजनिक सभाएँ और सामूहिक प्रदर्शन करने लगे थे।

सन् १८८५ से १९०७ तक कांग्रेस के तेईस अधिवेशन हो चुके थे और इस समय के दौरान कांग्रेस का एक तरह से कायाकल्प हो चुका था जिसमें उसके तरीके, उसके दृष्टिकोण और व्यक्तित्व में पर्याप्त अन्तर आ गया था। वास्तव में यह ठीक ही है कि स्वाधीनता के दस-बारह वर्ष पूर्व हर प्रकार की सांस्कृतिक चेतना राजनीति से प्रभावित थी। सन् १९३५ के विधान में पैंतीस करोड़ स्त्री-पुरुषों को मतदान का अधिकार मिला जिसके द्वारा राज्य के

उच्चतम पदा की वर्कपिक विधि जनता तक पहुँच गई और शासनयत्र का व्यक्ति से सीधा सम्बन्ध हुआ।''[1]

इसका परिणाम यह हुआ कि महत्त्वाकांक्षाओं को प्रोत्साहन मिला और समाज, ग्रथ, संस्कृति तथा राजनीति तक उन व्यक्तियों के हाथ में जाने लगी जिनका सम्बन्ध मूल भारतीय विशेषताओं से था।

राजनीति में दृश्य परिवर्तनों ने दो जातियों में नए सिरे से दुश्मनी खड़ी कर दी। सामाजिकता के सामने वयक्तिकता का कुछ महत्त्व ही नहीं रह गया। बड़े दलों को हर प्रकार की सुविधा प्राप्त करते देख छोटे दलवालों ने बड़े दल में फूट डलवाने का हर संभव प्रयास किया जिसमें उनका अपना महत्त्व बना रहे। सत्ता हथियाने के लिए दुश्मनी, ईर्ष्या के साथ ही छीना झपटी भी चलने लगी। एक बार शक्ति हथिया लेने के बाद उसे हाथ से न निकलने देने के लिए हर प्रयास किया जाने लगा। एवं सच्चे लोकतंत्र में प्रभावशाली व्यक्ति अपने को पहचान सकते हैं और दल के नियम सतत विकसनशील कार्यक्रमों पर बनते हैं, वहाँ विपक्ष स्वस्थ होता है और उससे जनता का हित भी होता है। परन्तु जहाँ निश्चित जातियों के आधार पर विभाजन होता है वहाँ ठहराव आ जाता है। एक ओर तो कड़वाहट और विजय की भावना होती है और दूसरी ओर होती है केवल कुण्ठाएं जो जनता के विकास और हितों में बाधक बन जाती हैं। भारत में जातीयता की भावना का यही परिणाम हुआ। नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस के जिन्ना से किये गए पत्र व्यवहार से स्पष्ट होता है कि बिना विचारों के परिवर्तन के किसी भी समझौते पर आना कठिन था।[2]

भारत भर में साम्प्रदायिक दंगे आए दिन की घटना हो गए थे। महात्मा गाँधी अहिंसा में विश्वास करते थे किन्तु उनके कार्य आतंकवादियों और क्रांतिकारियों को भड़काते थे।

रामकृष्ण मिशन की स्थापना ने हिन्दू धर्म के प्रमुख विचारकों और अन्य अहिन्दुओं (भारतीय अभारतीय दोनों) में एक सार्वभौमिकता लाने की चेष्टा की। उसका उद्देश्य संसार भर के लोगों के दर्शन, धर्म, नैतिकता, शिल्प और कला, विज्ञान, साहित्य, आर्थिक विकास, स्वास्थ्य, शिक्षण आदि संस्थाओं पर विचार करना था। स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका

---

१ ' And brought the elective machinery of the highest offices in the State to the door of the people Moreover it brought the highest positions in the State and real power over the machinery of Government within the reach of any individual or organised bodies which could command the votes in the remotest areas —A Yusuf Ali Cultural History of India, p 298

२ The correspondence between Nehru and Bose as representing the Congress at one hand and Jinnah of Muslim League on the other reveals a hopeless impasse from which it is difficult to see a way out without a radical alteration in the points of view of one communal leader' —A Yusuf Ali Cultural History of India, p 297

तथा अन्य देशों को भारत की ओर इस सिद्धांत से आकर्षित किया कि हर विश्वास ईश्वर तक जाने का मार्ग है।

रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द दोनों ने ही हिंदू धर्म के साथ ही अन्य धर्मों के सिद्धान्तों को गम्भीरता से अपनाने का संदेश दिया। समाज में धर्म का स्थान सबसे ऊँचा माना जाता था।[1]

सांस्कृतिक क्षेत्र में हमारे सामने बहुत सम्भावनाएं थीं पर उन्हें पहचाना नहीं गया। इसके अतिरिक्त यह विश्वास कि शिक्षा द्वारा सब समस्याएं सुलझ जाएंगी अपने में ही सुलझा हुआ नहीं था, क्योंकि शिक्षा के कारण ही बहुत सी समस्याएं भड़क उठी थीं। कई व्यक्ति भारत के सांस्कृतिक समन्वय को असंभव मानते थे, क्योंकि उनके अनुसार इतनी अनेकताओं का समन्वय वाले भारत का समन्वय हो ही नहीं सकता। सन १९३७ में कलकत्ता विश्वविद्यालय के दीक्षांत भाषण में रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी कहा था—भारत में हम समय के अतीत सागर के तट पर खड़े हैं और उसके थपेड़ों से अपने संसार को बचाने का अधिकार हमें प्रत्यक्षतः नहीं मिला है, किन्तु इस भंवर से अपने को हम हर प्रकार से बचाता ही है अशांति की लहरें हमारी ओर बढ़ती आ रही हैं और बड़ी बड़ी समस्याएं देश के सामने एक के बाद एक उठ रही हैं। साम्प्रदायिक भेद भयंकर रूप धारण कर रहे हैं और हमारे अस्तित्व मात्र को दूषित कर रहे हैं। इनका समाधान आसान भले ही न हो किन्तु यदि समाधान नहीं खोजा गया तो हम खाई में गहरे से गहरे गिरते जाएंगे।

किन्तु लक्ष्य तो संकट के इन थपेड़ों और खाइयों से हतोत्साह होना नहीं था, अपितु अधिक की आशा किए बिना और हतोत्साहित हुए बिना केवल सफलता तक पहुंचने का प्रयास करना था।

शिक्षा और बदलता समाज

पश्चिमी सभ्यता के आगमन ने भारतीय परिवेश में केवल नवीन तत्वों का ही समावेश नहीं किया अपितु भारतीय परिवेश की कई महत्वपूर्ण शक्तियों को झकझोरकर रख दिया। यूरोप के लोग यहां बसने की दृष्टि से नहीं आए थे। कुछ भारतीय सभ्यता की भव्यता से प्रभावित होकर आए थे और शीघ्र ही उस प्रभाव से ऊब गए थे। भारत में उन्होंने अपने ढंग की व्यवस्था के अनुसार रहना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार इतिहास में पहली

१ Diversity of faiths and races is to be accepted as a first postulate in all large sized social groups But the Ramakrishna and Vivekananda movement calls upon the Hindus to be serious enough in the matter of practising the teachings of Ramakrishna by opening their soul to the principles of Islam and other faiths The Hindu ought by all means to cultivate the study of Muslim ideas and institutions and to recognise that at the bottom Islam is no less Hindu in sprit than Hinduism itself —A Yusuf Ali Cultural History of India p 316

बार भारत को ऐसी शक्ति का सामना करना पड़ा जो तटस्थ और दूर थी, जो प्रभावित करना भले ही चाहती हो प्रभावित होना नहीं चाहती थी। इस परिस्थिति में भारतीय जीवन में इस बाहरी शक्ति के कारण आनेवाले परिवर्तन अवश्यम्भावी हो गए थे। पिछली कई शताब्दियों से एक अव्यक्त क्रांति भारत में हो रही थी जिससे समाज का ढांचा बदल रहा था। यह परिवर्तन किसी एक सम्प्रदाय अथवा जीवन के किसी एक रूप से सम्बन्धित नहीं था। सारी पुरानी मान्यताएं और विश्वास खण्डित हो रहे थे। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन आश्चर्यजनक तीव्रता से हो रहे थे। समाज में ऐसे नवीन परिवर्तन हो रहे थे जैसे कभी नहीं हुए थे। धर्म के क्षेत्र में ईसाई धर्म ने क्षेत्र में अपना निश्चित प्रभाव जमाना शुरू किया था। यूरोपीयता ने सब-कुछ अपने अधिकार में ले लिया था और प्रकृति पर मानव की निरंतर विजय ने क्रांतिकारी परिवर्तनों की गति को और तीव्र कर दिया।

शिक्षा की पाश्चात्य पद्धति को अपनाने का निर्णय इस सन्दर्भ में अपना तात्कालिक महत्त्व रखता है। ब्रिटेन ने यह निर्णय अपने राजनीतिक और वाणिज्य सम्बन्धी हितों को देखकर लिया था और उस क्रांति के परिणामों की उन्होंने उपेक्षा कर दी जिसके बीज इस शिक्षा पद्धति के साथ बोए गए थे। मकाले ने सोचा था कि इससे भारतीय जीवन का स्तर बढ़ेगा और कालान्तर में भारतीय व्यवस्था के स्थान पर पाश्चात्य व्यवस्था को स्थान दे दिया जाएगा। पश्चिमी विचारों से पहला परिचय होने पर भारतीय चिंतन प्रभावित हुए थे कि उन्होंने अंग्रेजी की कुछ पुस्तकों की तुलना में पूर्व के सारे ज्ञान को हेय समझा। इस दृष्टिकोण के कारण कुछ ऐसे विचार परिणामस्वरूप सामने आए जो पूर्व और पश्चिम दोनों के लिए आवश्यक थे।[1]

यह नया, पढ़ा लिखा वर्ग, अपने विचार पश्चिम से ग्रहण करता था और उनकी आजीविका का साधन ब्रिटिश ही थे। शिक्षा और आजीविका के इन साधनों के कारण मध्यवर्ग का अत्यधिक विस्तार हो गया था जिसके कारण शिक्षित व्यक्ति अधिक हो गए थे और उनके लिए नौकरी जुटाना कठिन होने लगा था। आजीविका के लिए प्राप्त साधनों को हस्तगत करने के लिए विभिन्न सम्प्रदायों और प्रान्तों में भाषा सम्बन्धी द्वेष पनपने लगे थे। ये शिक्षित सम्प्रदाय अपने देश की प्राचीन परम्पराओं से प्रेरणा नहीं ग्रहण करते थे। उनका दृष्टिकोण पूरी तरह से पाश्चात्य न होकर उसका छद्म रूप है। अपने मूल से अलग होकर ये लोग अव्यवस्थित और अशान्त हो उठे थे और भारतीय जीवन में साम्प्रदायिकता की भावना अनावश्यक रूप से बढ़ने लगी थी। देश के अविकसित समुदाय, विशेषकर कृषक में आज भी जातीय भावना मुखरित होती है। यह अशिक्षित और अन्धविश्वासी वर्ग स्वयं में एक शक्तिशाली तत्त्व का प्रतीक है जो सहिष्णुता की दृष्टि से तो महत्त्वपूर्ण है किन्तु विकास की दृष्टि से

---

1 "Neither Macaulay nor his contemporaries realised that this was not a simple case of imposition of a European mould on Indian mind, but a revivification of the Indian spirit which would in time create new forms of thought valid for east and west alike
—Humayun Kabir Our Heritage, p 86

नहीं। इस प्रकार दो समूह हैं—एक जो स्वयं को अभिव्यक्त नहीं कर पाता है किन्तु उसमें शक्ति है, दूसरी ओर वह बुद्धिजीवी वर्ग है जो उत्सुक है अशान्त है और साथ ही जिज्ञासु है। यह वर्ग केवल भारतीय जीवन से सतही सम्बन्ध रखता है उसकी गहराई में जाने के लिए इसके पास अवकाश नहीं है। प्रगति की इच्छा इस वर्ग में है किन्तु इतनी आन्तरिक शक्ति नहीं है कि कोई बड़ा परिवर्तन ला सके। जहाँ इन दोनों वर्गों में सुदृढ़ सम्बन्ध होना चाहिए वहाँ उनके सम्बन्ध आधुनिक शिक्षा पद्धति के कारण शिथिल होते जा रहे हैं।

राष्ट्रीयता की भावना ने भारतीय चेतना को काफी प्रभावित किया है। इसका अधिकांश प्रभाव युवक वर्ग विशेषतः छात्रवर्ग पर स्पष्ट है। नवीन तत्त्वों से उनका सीधा सम्पर्क था और हर प्रभाव उनकी प्रतिक्रियाओं को स्पष्ट करता था। पश्चिम की गौरव गाथाएँ पढ़ने के कारण उनके मन में यह धारणा बन गई थी कि राष्ट्रीय भावना को स्वीकार करने के कारण ही पश्चिम उतना शक्तिशाली हो सका है। भारत को एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में देखने की कल्पना मात्र उनके सामने अनेक सम्भावनाओं को ला देती थी।

पश्चिमी विचारधारा का एक अन्य प्रभाव लोकतन्त्र पर बल देने के रूप में भी पड़ा। यह कहना उचित नहीं है कि भारत लोकतन्त्र से अपरिचित था। भारत के प्रारम्भिक इतिहास में ग्रामों के गणतन्त्र में ऐसे लोकतन्त्र के उदाहरण मिलते हैं जिनकी तुलना नहीं की जा सकती। धर्म द्वारा समाज में व्यक्ति को उभरकर आने का अवसर मिला, किन्तु जब जन्म से ही कर्तव्य निश्चित कर दिए गए तो वही वर्ण विभाजन का आधार बन गए। भारतीयों ने वर्ण को महत्त्व दिया और व्यक्ति की उपेक्षा कर दी। व्यक्ति की इसी उपेक्षा के कारण उन प्रतिभाशाली व्यक्तियों की भी उपेक्षा कर दी गई जिन्होंने महत्त्वपूर्ण सत्यों की खोज की। व्यक्ति के महत्त्व को अस्वीकार करने से लोकतन्त्र का महत्त्व ही समाप्त हो जाता है सम्भवतः इसी कारण लोकतन्त्र भारत में सीमित क्षेत्र में ही बँधा था। वह ग्रामों में काम कर सकता था जहाँ प्रत्यक्ष सम्बन्ध रूपहीन भाषा के तीखेपन को कम कर जाते थे। प्रत्यक्ष सम्बन्ध के दायरे के बाहर यह केवल एक विचार मात्र था।

भारतीय राष्ट्रीयता अपने अनिश्चित रूप में पश्चिमी ज्ञान और प्राचीन सामाजिक परम्पराओं के बीच झूल रही थी। इस अनिश्चितता ने युवा वर्ग में उथल-पुथल मचा दी थी। यह प्रक्रिया यहीं समाप्त नहीं हुई अपितु विश्व राष्ट्रीयता की स्थिति में भी आगे निकल चुकी थी। भारत के सामने वही घड़ी आई थी यूरोप जिसमें से सफलतापूर्वक गुजर चुका था।

✓ द्वितीय महायुद्ध ने तत्कालीन मान्यताओं का आधार ही हिला दिया था। राष्ट्रीयता और पूँजीवाद के विरोधी तत्त्वों को इस युद्ध ने अनावृत कर सामने रख दिया था। बौद्धिक स्तर से जागृत व्यक्तियों ने पुनः नये विचारों की खोज आरम्भ कर दी। व्यक्ति के स्वीकृत विश्वासों को शक्तिहीन होने की सीमा तक रूस के समाजवादी आन्दोलन ने पहुँचा दिया। पूँजीवादी स्वाधिकार के प्रवर्तन का एक उचित आधार मिल गया था और उसका लक्ष्य व्यक्तिगत लाभ के स्थान पर समाज की सेवा करना हो गया था।

पूँजीवाद की सम्भावनाओं के प्रति विश्वभर के युवकों का मोहभंग हो गया। बेकारी और भुखमरी की समस्या वर्तमान व्यवस्था की असफलता का प्रतीक है। भारत में

पूंजीवाद का पूर्ण विकसित रूप नहीं है फिर भी व्यवस्था ऐसी है जो मध्यवर्ग के सतत विकास में मदद देती है। सुरक्षा और विकास के अभाव में भी यह वर्ग बढ़ता ही जा रहा है। मध्यवर्ग से आनेवाला छात्रवर्ग अपनी शिक्षा के दौरान आगे आने वाली इस अवश्यम्भावी समस्या से विचलित रहता है।

मध्यवर्ग ने यह स्वीकार कर लिया है कि उसका भविष्य कहीं भी निश्चित और सुरक्षित नहीं है, इसी की प्रतिक्रिया आए दिन युवक वर्ग में दिखाई पड़ने वाली अव्यवस्था से स्पष्ट हो जाती है। पश्चिमी सम्पर्क ने बहुत सी नयी सम्भावनाएं भारतीयों के सामने रखीं और भौतिकवादी सभ्यता द्वारा प्राप्त जीवन का एक ऊंचा पश्चिमी स्तर भारतीयों के लिए चुनौती का कारण बन गया। ग्रामों में बढ़ती हुई गरीबी ने उसके सम्पर्क में आनेवाले लोगों के मन को और अधिक कड़वाहट से भर दिया। सम्पर्क के विकसित साधनों और प्राचीन मान्यताओं के उन्मूलन के कारण यह असंतोष और अधिक गम्भीर हो गया तथा उसके प्रभाव में अब तक के अप्रभावित क्षेत्र भी आ गए।

पश्चिम के प्रभाव ने जिस मध्यवर्ग की स्थापना की थी उससे अपेक्षा थी कि ब्रिटिश लाभ में नाम मात्र का हिस्सा लेकर भी यह वर्ग ब्रिटिश वस्तुओं को देश भर में प्रचलित करेगा। पर इस बुर्जुआ वर्ग ने न केवल लाभ में अधिक अंश मांगा अपितु ब्रिटिश राजनीतिक और सांस्कृतिक परम्पराओं में भी हिस्सा बटाना चाहा। सतत विस्तार पाते दायरे से लिये जाने के कारण इस वर्ग ने वस्तुओं के साथ ही विचारों का भी प्रचार किया और कुछ समय बाद इसका दृष्टिकोण भारतीय समाज का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया।

आधुनिक भारत का महत्वपूर्ण तथ्य उस मध्यवर्ग का असंतुलित विकास है जो अशान्त है और व्यक्ति मात्र तथा आलोचना को बहुत महत्व देता है। इसमें अपने को ही महत्व देने की वृत्ति इतनी अधिक है कि हर कोई एक दूसरे से या डरता है या ईर्ष्या करता है। यह वैयक्तिकता अतिशय होकर बीमारी हो जाने की सम्भावना रखती है।

आधुनिकता के सन्दर्भ में, भारत ने पश्चिम को अंग्रेजी दृष्टिकोण से जाना था। इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि अंग्रेजों ने हमारी वेशभूषा, सामाजिक व्यवहार और आदतों तक को बदल दिया है। हमारे बौद्धिक और आध्यात्मिक व्यवहार में बहुत अन्तर आया, पर अंग्रेजों का भारत को सबसे बड़ा उपहार था—अंग्रेजी भाषा और साहित्य।[1]

हर वस्तु को अंग्रेजी दृष्टि से देखने और समझने के प्रयास में हुआ यह कि हम अपने विचारों, दृष्टिकोण और भावनाओं में पूरी तरह से पश्चिमी नियमों को अपना न सकने के कारण नकली अंग्रेज बन गए हैं।

स्वाधीनता की नवीन आकांक्षा और सत्ता के प्रति विद्रोह की भावना नयी पीढ़ी के मन में घर कर चुकी थी। वैयक्तिकता, विद्रोह और बलिदान का स्वर देशभर में मुखरित

---

१ 'It is often said that the greatest gift of England to India has been English language and literature'—Humayun Kabir Our Heritage p 115

हो उठा था और अंग्रेजी काव्य की वैयक्तिक स्वतन्त्रता में विश्वास करने की भावना इस विद्रोह के विरुद्ध नहीं पड़ती थी।

वैयक्तिकता पर दिए जानेवाले बल के कारण सामाजिक बंधन ढीले हो गए। समाज अपने व्यवहार और परम्परा पर ही टिका हुआ रह सकता है और व्यक्ति के समाज के महत्त्व को स्वीकार कर लेने पर ही समाज संगठित रह सकता है और बदलते हुए समाज तथा खंडित होते हुए मानव मूल्यों के फलस्वरूप साहित्य (अथवा कला) में अनेक बहुमुखी नई धाराएं प्रारम्भ हो जाती हैं। अतः भारत में मध्यवर्ग के विकास के साथ ही कला के विभिन्न क्षेत्रों में प्रयोगों की जो बाढ़ आई वह कोई आकस्मिक घटना नहीं थी।

विद्रोह की जिस लहर ने सारे देश को घेर लिया था उसके कई कारण थे। विद्यार्थियों के लिए विनीत होने और आदर करने की परम्परा ने अर्थ खो दिया है। स्त्रियां समानाधिकार के लिए अड़ी हुई है। एक प्रकार से युवा पीढ़ी विकास तो कर रही है किन्तु किसी प्राचीन नियम को स्वीकार नहीं करती। बड़े लोग जो सत्ताधारी हैं उन्हें यह उपेक्षा अपमानजनक और अनुशासनहीन लगती है। इससे खेद तो होता ही है साथ ही भावी भारत की कल्पना भी असम्भव हो जाती है। किन्तु बड़ों के इस दृष्टिकोण को किसी प्रकार से उचित नहीं ठहराया जा सकता। आज जब हर प्राचीन अपना अर्थ खो चुका है जब धर्म तक आश्वासन नहीं दे सकता अनिश्चय शंका और संकोच के अतिरिक्त विचारों और कार्यों में कुछ भी नहीं मिलता। प्राचीन उपलब्धियों के ध्वंस के कारण भारतीय युवा मानस के ऊहापोह के प्रति कोई आश्चर्य नहीं है।

पिछले वर्षों में धर्म के क्षेत्र में पर्याप्त परिवर्तन हुआ था। शहर और गाँव के मध्य बढ़ते हुए सम्पर्कों के साथ ही शहरों का महत्त्व भी बढ़ रहा था। गोदान का गोबर वह शृंखला है जो गांव को शहर से जोड़ती है। यह तो एक प्रतीक मात्र है। वास्तव में औद्योगिकता का प्रसार सारे गांव को शहर में ला रहा था और समाज की गति बहुत तीव्र हो गयी थी।

जिन ऐतिहासिक घटनाओं से भारत का भविष्य बन रहा था उन्होंने शिक्षा और समाज के प्राचीन आधार को चुनौती दी थी। बौद्धिकता के प्रथम प्रवेश के कारण हर क्षेत्र में अतिशयता ने स्थान ले लिया था।

उत्क्रांति की एक लम्बी प्रक्रिया होती है—वह आकस्मिक नहीं होती। सामाजिक आदर्श भले ही बदल रहे हैं किन्तु सामाजिक मान्यताओं के रूप में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। इस समय की भारतीय जनता एक साथ भूत वर्तमान और भविष्य में सोचती है जिसके कारण कोई भी विश्लेषण सफल नहीं हो पाता।

सभ्यता का प्रसार तो विश्व भर में हो रहा है किन्तु उसके ध्वंस की संभावनाएँ भी उतनी ही सबल हैं। पहले इसका अर्थ किसी एक देश के वर्ग का पतन था और यह संभावना थी कि देश के अन्य वर्ग सभ्यता के विकास में सहायक होंगे किन्तु समय और स्थान पर बढ़ता हुआ मानवीय अधिकार युद्ध प्रणाली में क्रांतिकारी परिवर्तन और उपज तथा वितरण के माध्यमों में परिवर्तनों के साथ होनेवाले विश्वव्यापी सामाजिक और आर्थिक सम्बन्धों

के कारण यह असभव सा हो गया है। किन्तु अब एक ससार की सत्ता स्थापित होने की सीमा पर है—एक विश्व का भाग्य भी एक होगा और स्वाधीनता तथा शाति के समान विश्व का विकास भी अखण्डित है।

सघर्ष के बीज भ्रम के कारण उत्पन्न होते हैं—यदि सघर्ष समाप्त नही होना है तो समस्त सभ्यता अनायास ही विनष्ट हो सकती है। गत दोना विश्वयुद्धा की स्मृति इसी खतरे की प्रतीक है। उनसे स्थापित हो चुका है कि हर प्रकार के समझौते के उपरात भी साम्राज्यवाद कोई स्थायी साम्य नही ला सकता।

और इस समानता के लिए उन शक्तियो की आवश्यकता है जो विदेशिया के एक लम्बे शासन के कारण अपनी शक्तियो से अपरिचित हो चुकी है। श्री हुमायू कबीर के अनुसार "भारतीय स्वाधीनता ही इस पुनर्निर्माण के लिए पहला कदम है।"[१]

पराधीन भारत गुलाम तो था ही साथ ही वह अपनी विस्तत मानसिक शक्तिया का उपयोग भी नही कर सकता था। ऊपर से देखने म जो भारतीय अथवा प्रातीय द्वेष दिखाई पडता था वास्तव मे वह जीवित रहने का प्रयास मात्र था। भारत के उद्योग नष्ट हो चुके थे, कृषि उसकी बढती हुई जनसख्या को रोजी और रोटी नही दे सकती थी, इसी कारण जीने क लिए केवल नौकरी करना ही एकमात्र उपाय रह गया था जो सबस अधिक आराम दायक और सुरक्षित था। अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए हर व्यक्ति और वग को जो उपाय सबस पहले मिले उन्हें ही उन्हाने अपने अधिकार म ले लिया।

सदिया से प्राप्त अपनी बहुमुखी सस्कृति के कारण भारत विश्व भर को अनेक बहुमूल्य उपहार दे सकता है पश्चिमी प्रभाव ने उसकी लम्बी खुमारी को समाप्त कर दिया है। उसमें एक नया उत्साह है, उसकी चेतना म नये प्रश्न उभर रहे है और पश्चिम पूव के सघर्ष उसे समाज और धम के नए स्तर पर सोचने को बाध्य करते थे। यहाँ केवल आध्यात्मिक सत्यो की खोज का प्रयास नही था अपितु वर्गों के सामाजिक अत्याचारा से अवकाश पाना भी था। 'सारी उन्नीसवी शताब्दी म एक के बाद एक सुधारक हुए किन्तु उनके उपदेश सतह को छूकर रह गये—राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र म भी यही हुआ'। पुराने मानदण्ड नष्ट तो हुए किन्तु किसी नवीन और सम्पूर्ण निर्माण की सवेदना अभी तक नही आई थी।[२]

---

१ 'Indian Independence is the first step towards such reorientation'
—Humayun Kabir Our Heritage, p 130

२ 'Throughout the nineteenth century one reformer after another appeared on the Indian scene Their influence has however remained on the surface and never penetrated to the depths of Indian life. The same story is repeated in the political and economical fields Tht old patterns have been destroyed, but as yet there is no guarantee of a new and resplendent birth"—Humayun Kabir 'Our Heritage, p 132

भारत भर में फैली हुई खोज और उत्तेजना इसका प्रमाण है कि एक नए विश्व का निर्माण होने जा रहा है।

राजनीतिक परिवेश

परन्तु जिस विश्व का निर्माण हो रहा था उसके लिए बलिदान की आवश्यकता थी। बिना बलि की नींव के किसी भी देश का निर्माण नहीं हुआ। इसी कारण शायद भारत में स्वाधीनता प्राप्ति के कुछ वर्ष पूर्व हर जगह पर एक साथ काम करनेवाले व्यक्ति अब अपने को हिन्दुस्तानी न मानकर हिन्दू और मुसलमान मानने लग थे। मजहब नहीं सिखाता आपस में भेद करना कहनेवाले अब मजहब को ही व्यापक धर्म मानने लगे थे और जो स्वाधीनता बहुत समीप दिखाई पड़ रही थी वही साम्प्रदायिक समस्याओं के कारण असम्भव-सी प्रतीत होने लगी, पर अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में घटनेवाली घटनाओं के कारण भारत के राजनीतिज्ञों का काम सरल हो गया था। इंग्लैंड के पास सन् १९३९ में इतनी शक्ति नहीं थी कि वह अपने उपनिवेशों की सहायता के बिना जर्मनी का मुकाबला कर सके। भारत की सहानुभूति उन पश्चिमी लोकतन्त्रों के साथ थी जो एक एक करके परास्त हो रहे थे। ११ १२ अगस्त १९३९ को वर्धा में कांग्रेस कार्यकारिणी ने एक प्रस्ताव पास किया जिसका मसविदा जवाहरलाल नेहरू ने तैयार किया था और उसमें घोषणा की गई थी कि भारत उन जातियों के साथ सहानुभूति रखता है जो लोकतन्त्र और स्वाधीनता के लिए लड़ रही हैं लेकिन साथ ही वह अपनी स्वाधीनता का भी दावा करता है।[1]

स्वाधीनता-संग्राम में एक और शक्ति काम कर रही थी मुस्लिम लीग की। सन् १९३९ से मोहम्मद अली जिन्ना उसके नियन्ता बने हुए थे और किसी भी शर्त पर संयुक्त भारत के निर्माण पर स्वीकृति देने के लिए प्रस्तुत नहीं थे। १९३९ में जब कांग्रेस ने फिर तपस्या का मार्ग पकड़कर ध्येय तक पहुँचने की शक्ति का संचय करने का प्रयास करना आरंभ कर दिया था तब कांग्रेस मन्त्रिमण्डल को त्यागपत्र देकर शासन से अलग हो जाने का आदेश मिला और यहां से पाकिस्तान की कल्पना साकार होने लगी। द्वितीय विश्वयुद्ध के चलते हुए दबाव के कारण कांग्रेस का विरोध जोर पकड़ता गया और जिन्ना का प्रभाव और सौदा करने की ताकत बढ़ती गई। उन्होंने परिस्थिति का उपयोग करने की पूरी योग्यता दिखाई और लीग की बिखरी हुई शक्तियों को संगठित किया। उनकी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं की प्राप्ति में न केवल देश का विभाजन शामिल था बल्कि कई लाख मानव प्राणियों का बलिदान भी। कटुता का जो दाय वह छोड़ गए उसे मिटाने में अभी वर्षों लगेंगे।[2]

सन् १९४२ की ८ ८ अगस्त को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने अपने बम्बई अधिवेशन में भारत छोड़ो का प्रस्ताव पास किया और सरकार से मांग की कि वह ऐसा अस्थायी मन्त्रिमण्डल स्थापित करे जो भारत का नया संविधान तैयार करने के लिए एक विधान परिषद

१. नेहरू अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० २३५।
२. वही, पृ० २३६।

की योजना बनाए। यह सरकार के लिए खुली चुनौती थी। अपने भाषण में गांधी जी ने कहा—

'प्रत्येक को अहिंसा पालन करते हुए हड़ताल और दूसरे सब साधन बरतने की छूट है। सत्याग्रह मरणव्रती होकर ही निकले। व्यक्ति जब मरने को तैयार होते हैं, देश तभी बचता है। करेंगे या मरेंगे।'[1]

और साधारण जनता ने जो कुछ किया उसमें अहिंसा कहीं नहीं थी—जान माल की बुरी तरह से क्षति हुई। सन् 1945 तक दोनों मुख्य सम्प्रदायों के आपसी सम्बन्ध बिगड़ते जा रहे थे, एक ओर जिन्ना का अहंकार परिस्थिति को बिगाड़ रहा था और दूसरी ओर गांधीजी के दोनों दलों को करीब लाने के सारे प्रयास तनाव को बढ़ाते जा रहे थे। साथ ही मुस्लिम लीग यह महसूस करने लगी थी कि यह समय ब्रिटेन या कांग्रेस से सौदा करने का नहीं था और जिन्ना साहब को तत्काल ही यह निर्णय लेना था कि वह नयी सरकार की स्थापना में योग दें या एक नये राष्ट्र के अधिनायक बनें। 29 जुलाई, 1946 के मुस्लिम लीग के विशेष अधिवेशन में जिन्ना साहब ने घोषित किया—

'आज हमने अपने इतिहास का सबसे ऐतिहासिक निर्णय किया है। लीग के इतिहास में हमने कभी वैधानिक उपायों को छोड़कर दूसरे उपाय नहीं बरते थे। लेकिन आज हम बाध्य हैं। आज हम वैधानिक उपायों को विदा देते हैं।'[2]

शासन में सम्मिलित होने का स्पष्ट और घोषित उद्देश्य यह था कि अखण्ड भारत के खण्डों पर हर सम्भव उपाय से पाकिस्तान का निर्माण किया जाए। लीग के समर्थक पत्र 'डान' ने लिखा कि अब डायरेक्ट एक्शन का वक्त आ गया है और मुसलमानों को अपने अधिकार बलपूर्वक प्राप्त करने होंगे। 16 अगस्त 1946 को 'डायरेक्ट एक्शन डे' मनाने का आह्वान तो किया गया पर उसके परिणाम भयंकर निकले।

यह भारत के इतिहास के सबसे रक्तरंजित और लज्जाजनक अध्यायों में से था। 16 अगस्त को सार्वजनिक छुट्टी घोषित कर दी गई थी। दिन का आरंभ अत्यन्त नृशंसतापूर्ण हत्याओं और छुरेबाजी के साथ हुआ, घरों में आग लगाई गयी और लूटमार हुई। यह क्रम तीन चार दिन तक रहा। लगभग पांच हजार मरे, पन्द्रह हजार घायल हुए। इस सामूहिक हत्या ने हिन्दू और मुसलमान का भेद नहीं किया था। कलकत्ते से उठने वाली अराजकता की ये लपटें देशभर में फैल गईं। नोआखाली और पूर्वी बंगाल के अन्य जिलों में यह भयानक काण्ड दोहराया गया। प्रतिक्रिया में बिहार भड़का और 27 सितम्बर को बेनियाबाद में, मुजफ्फरपुर के निकट पहला बड़ा दंगा हुआ। 25 अक्तूबर तक सारा बिहार इस आग में सुलग रहा था, जिसे प्रांतीय सरकार की दृढ़ता और सैनिक प्रयोग से दबा दिया गया। बिहार में मुसलमानों की ही क्षति अधिक हुई। मर्माहत जवाहरलाल ने बिहार का दौरा किया। पटना में उन्हें एक अत्यन्त असंतुष्ट और उत्तेजित सभा का सामना करना पड़ा—उत्तेजित जनता विवेक और सहिष्णुता

1 नेहरू अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० 237।
2 वही, पृ० 239।

की बात सुनने को तैयार नहीं थी। कलकत्ता की हत्याओं के जो वृत्तान्त लोगों ने सुने थे, उनसे वे पागल हो रहे थे। यहाँ हिंसा से प्रतिहिंसा उत्पन्न हुई थी और अविवेक और व्यक्तिगत पापाकांक्षाओं पर हजारों निर्दोष प्राणियों का बलिदान होना पड़ा था।[१]

गांधीजी ने सदा विभाजन का विरोध किया था। वे जिस हिन्दू मुस्लिम एकता के स्वप्न देखा करते थे, वे इन परिस्थितियों में पूर्णतः असम्भव हो गए थे। यह सामूहिक उन्माद देश पर छा गया था। नोआखाली-काण्ड भले ही कलकत्ता जैसा विनाशक नहीं था, फिर भी देश पर छा रही सामूहिक उन्माद की लहर का सूचक था।

अब तक पंजाब भी अशांति का केन्द्र बन गया था। यहाँ के वीर साहसी और परिश्रमी लोग प्रायः कृषिजीवी थे, दो करोड़ चौरासी लाख प्रजा में एक करोड़ साठ लाख मुसलमान, पचासी लाख हिन्दू और सैंतीस लाख सिख थे। इस पंजाब को बासठ हजार वर्ग मील की एक करोड़ उनसठ लाख वाली आबादी के पश्चिमी पंजाब और सैंतीस हजार वर्गमील और एक करोड़ पचीस लाखवाली आबादी के पूर्वी पंजाब दो खण्डों में बाँट दिया गया। बंगभंग के समय जिस बंगाल का विभाजन नहीं हुआ था, वह अब—उनचास हजार चार सौ वर्ग मील और एक करोड़ इक्यानवें लाख आबादी वाले पूर्वी और अट्ठाइस हजार दो सौ पन्द्रह वर्ग मील तथा दो करोड़ बारह लाख की आबादीवाले पश्चिमी बंगाल में बँट गया। लगभग सवा करोड़ लोग अपने घर छोड़कर नए देश की सरहदों पर पहुँचने को बाध्य हुए। जिस पंजाब की प्रजा में भिन्न धर्म होने पर भी आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध था वहाँ हिंसा का बड़ी ज्वार भाटा आया जिसमें कलकत्ता तबाह हो गया था। पंजाब का गवर्नर जेंकिंस मुसलमानों के पक्ष में था और उसने इस परिस्थिति में संयुक्त मंत्रिमण्डल के लिए कुछ नहीं किया। प्रधानमंत्री खिज्रिहयात खाँ जागीरदार होने के बावजूद स्वयं अपने सम्प्रदाय के विरोध और गवर्नर की तटस्थता के कारण निस्सहाय हो गए।[२]

पंजाब का गृहयुद्ध अगस्त १९४७ तक चला। अप्रैल में ही हिन्दू और मुसलमान नेता समझ गए थे कि हत्याकाण्ड को बन्द कराने के लिए एकमात्र उपाय विभाजन है। परन्तु जनता ने अभी मानवता की बात नहीं छोड़ी थी। 'पाकिस्तान हुआ तो क्या? और हिन्दुस्तान हुआ तो क्या? हम तो लाहौरी हैं।'[३]

'११-१२ अगस्त को लाहौर का रेलवे स्टेशन पिंजरा बन गया था। लाहौर के तीन लाख मुस्लिम परिवारों में से केवल बारह हजार वहाँ थे और महीने के अन्त तक उनकी संख्या उंगलियों पर गिनी जा सकती थी और वे भी निकल आने का मौका देख रहे थे।'[४]

सन् १९४७ के आरम्भ से ही विभाजन की अनिवार्यता को स्वीकार कर लिया गया था। ब्रिटेन भारत की समस्या से पिंड छुड़ाना चाहता था और लार्ड एटली ने फरवरी, १९४७ में

---

१ नेहरू अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० २४०।
२ वही, पृ० २४१।
३ यशपाल, झूठा सच, पृ० २६०।
४ नेहरू अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० २४२।

घोषणा कर दी थी कि जून, १९४८ से पहले सत्ता भारत को सौंप दी जाएगी। पर जिन्ना साहब के हाथों में मुस्लिम लीग की डोर रहने के कारण अखण्ड भारत की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी क्योंकि वर्षों से उनके विषैले प्रचार के कारण लोग मानने लगे थे कि 'केवल साम्प्रदायिक भेद से ही जीवन, संस्कृति और राजनीतिक भविष्य में कोई मौलिक अन्तर आ जाता है।'[1]

"मनुष्यों के देश धर्म के देश बन गए।

"खुदा ने जिन्हें एक बनाया था, रब्ब के बन्दों ने अपने वहम और जुल्म से उसे दो कर दिया।"[2]

कांग्रेस के लम्बे और कडवे अनुभव ने उन्हें यह सिखाया था कि तीसरे दल से छुटकारा पाना सबसे जरूरी है। पिछले बरस से चली आ रही घटनाओं को देखते हुए विभाजन को स्वीकार करने के अतिरिक्त और कोई उपाय भी नहीं था। ३ जून, १९४७ को विभाजन की घोषणा कर दी गई और १४ अगस्त को स्वाधीनता का लम्बा संग्राम समाप्त हो गया। बहुत भारी मूल्य चुकाने के बाद भारत ने स्वतन्त्र भोर देखी। जो दस सदियों से आक्रमणों को आत्मसात करते हुए अपनी अखण्डता को बनाए हुए था, उसी को असम्भव, अव्यावहारिक हिंसा में बाँट दिया गया। निराशा और दुःख का जो पर्दा पड़ा हुआ था वह १४-१५ अगस्त को कुछ देर के लिए उठा जब सारा देश स्वाधीनता का उत्सव मना रहा था। भारतीय जनता ने स्वाधीनता का गर्व अनुभव किया—यह वह स्वतन्त्रता थी जो उन्होंने स्वयं पायी थी।

'१४ अगस्त की रात को बारह बजे स्वाधीनता का घंटा बजा और भारत में एक नया युग आरम्भ हुआ।'[3]

इस स्वाधीनता का एक और बड़ा मूल्य चुकाना अभी जैसे बाकी था। जिस साम्प्रदायिक वैमनस्य ने विभाजन कराया था उसी के कारण गांधी जी पर लोगों की श्रद्धा कम होती जा रही थी। शरणार्थियों में कटुता इतनी अधिक थी कि गांधी जी की बातें सुनकर वे धैर्य खो बैठते थे। क्रोध में आकर वे यही सोच पाते थे कि गांधी जी केवल मुसलमानों की बात सोचते हैं, हिन्दुओं की यन्त्रणाओं को नहीं देखते। और यह आक्रोश पहले २० जनवरी १९४८ को प्रकट हुआ जब प्रार्थना सभा पर बम फेंका गया और फिर ३० जनवरी को ५.४५ साय पर नाथूराम गोडसे ने मंच की ओर जाते हुए गांधी जी पर गोली चला दी और— मानव बंधुत्व और शान्ति का एक और वीर रक्षक गिर गया।[4]

नएपन की माँग

यह बौद्धिक सामाजिक और राजनीति की गत्यात्मक पृष्ठभूमि थी जिसने चिन्तन को नए

---

1 नेहरू अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० २४२।
2 यशपाल झूठा सच पृ० ५१६।
3 नेहरू अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० २४३।
4 वही, पृ० ६४।

आयाम दिए थे, समाज में बदलती हुई दृष्टि दी थी और साथ ही एक ऐसे नये राष्ट्र का निर्माण कर दिया था जो बट गया था जिसके शरीर का एक भाग अलग होकर उसका प्रतिद्वन्द्वी बन गया था। संघर्ष में बढते हुए एक नवीन राष्ट्र के सामने यदि नएपन की माग उठती है तो उसमें अनुचित कुछ नहीं है। वह अपने सन्दर्भ से अलग होकर किसी वस्तु की माग नहीं करता। उसकी हर माग के पीछे प्रतिक्रियाओं का एक लम्बा सिलसिला चलता है जो हर क्षेत्र में परिवर्तन की पृष्ठभूमि तैयार कर देता है और काफी उथल पुथल के बाद उसके सामने हर वस्तु को एक सिरे से आरम्भ करने का प्रश्न उठता है। नये निर्माण का प्रश्न केवल बाहरी घटनाओं से ही नहीं उठता। व्यक्ति के दृष्टिकोण जीवन के बदलते हुए मान दण्डों और दिन पर दिन विकसित होती हुई अन्तरराष्ट्रीयता के कारण भी कुछ नवीन की इच्छा करना स्वाभाविक हो जाता है।

परन्तु यह नया केवल हाल में आए हुए का पर्याय नहीं है हर युग अपने में आधुनिक और नया होता है। नया, समसामयिक भी होता है जो बीतते समय के साथ साथ अपना नयापन खो बैठता है।

और साहित्य क्योंकि परिस्थितियों और वातावरण से ही रचा जाता है इस कारण बदलते हुए समाज विकसित होते हुए राष्ट्र के साहित्य में भी नए का प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है। आज के साहित्य में नया अथवा मॉडर्न एक सकुचित अर्थ में प्रयुक्त होता है जो समसामयिक का पर्याय है। नए का मूल यहां वर्तमान को गहराई तक समझने और समसामयिक स्थिति के एहसास पर ही निर्भर करता है। आज के सामयिक सन्दर्भ में विश्वयुद्ध के बाद विज्ञान की भयानक शक्तियों का विकास महत्वपूर्ण है। स्थान की सीमाओं के साथ ही समय और अंतरिक्ष की सीमाएँ भी तीव्रता से टूट रही हैं। शक्ति के लिए विश्व की दोनों शक्तियों में संघर्ष इतना बढ़ गया है कि किसी भी दिन बारूद पर टिकी यह सृष्टि समाप्त हो सकती है। और इसका परिणाम है कि आज भावना के स्थान पर अनुभवों को अधिक महत्व मिलने लगा है। आज तक के आदर्श और मूल्यों का विघटन आरम्भ हो चुका है—व्यक्ति सोचने लगा है कि केवल वर्तमान क्षण ही सत्य है क्योंकि जीवन के प्रवाह में भूत मिट चुका है और भविष्य को किसी ने देखा नहीं है। "व्यक्ति वर्तमान में रहता है क्योंकि अनुभव केवल क्षण में ही सम्भावित है अनुभव ही एकमात्र सत्य है और अनुभव का भूत या भविष्य नहीं होता—उसका केवल वर्तमान होता है उसके लिए कभी कुछ बीतता नहीं है— जो क्षण में जीता है क्षण को स्वीकार कर लेता है वह कभी चूक होता ही नहीं।"[1]

आज जीवन का सौन्दर्य रुमानी कल्पना नहीं है अपितु कुछ जीवन के अनुभवों का जाल मात्र है जो कठोर है नीरस है और सौन्दर्य का बोध इन दिनों मात्र इन रोमांस विरोधी तत्त्व के प्रति प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो है। सामाजिक स्तर पर जब मानव सम्बन्ध टूट रहे हैं व्यक्ति अपने को अपने परिवार से कटा हुआ पाता है और महसूस करता है कि उसे वनवास दे दिया गया है, यह अजनबी है। समाज में सम्पर्क स्थापित करने का उसका हर

---

१ अज्ञेय नदी के द्वीप, पृ० ४१।

प्रयास असफल हो गया है और आसपास के जीवन से उसका कोई सम्पर्क बाकी नहीं रह गया है। सामाजिक नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों के विघटन के फलस्वरूप एक नवीन दर्शन की उदभावना हो रही है जिसे अस्तित्ववाद का नाम दिया गया है और आज की आधुनिकता के मूल में इसी दर्शन को माना जाता है।

स्वाधीनता के तत्काल बाद हर कटुता और विक्षिप्तता झेलकर देश ने एक नए निर्माण पथ पर कदम रखा था जिसका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ रहा था। साहित्य में आस्था, विश्वास और दृढ़ता का स्थान हो गया था। पहले की दमनजनित कुण्ठाएं और विक्षोभ ऊब—

'क्या ? देख न सकती जजीरो का गहना ?
हथकड़िया क्यों ? यह ब्रिटिश राज का गहना,
कोल्हू की चरक चू ! जीवन की तान,
गिट्टी पर लिखे अगुलियो ने क्या गान ?'[1]

जैसी विद्रोहमयी पीड़ा में नहीं अभिव्यक्त होता था। उनके सामने अब 'गगन तक लहर चक्रधारी तिरंग (पंत) का लक्ष्य था। स्वतन्त्र देश के स्वतन्त्र बालक रात की स्याहियों और खौफनाक वादियों से नहीं डरते थे, उनके कदम्बा बढते ही चलते हैं। (सागर निजामी)। 'चिन्ता' में जो भविष्य के प्रति आशंका है 'हरी घास में क्षण भर' में वह एक विश्वास में परिणत हो चुकी है।

पर स्वतन्त्रता प्राप्ति में कर्तव्य समाप्त नहीं हुए हैं। स्वाधीनता के संग्राम में जिन लोगों ने अपने जीवन के सुन्दरतम वर्ष सीकचों के पीछे काट दिए थे बाद में भी सीकचों के पीछे ही रह गए और उनके कार्यों का फल उन लोगों ने बटोरा जो लीडरी करने की फिराक में जाने कब से सनक बैठे थे। 'झूठा सच' का हर पात्र इस विभीषिका का शिकार है। 'वतन और देश' में उन लोगों के स्वप्न विभाजन के साथ बँट जाते हैं और देश का भविष्य उन लोगों के हाथों में चला जाता है जो विभाजन से पहले मिले हुए भाषण देने के कार्य से मुक्ति पाकर किसी क्लब के वार्षिकोत्सव में सभापति बनते रहे या किसी समाज सेवक संघ के प्रधान बन गए या किसी सौन्दर्य प्रतियोगिता के निर्णायक होने लगे जैसे स्वाधीनता के लिए अनगिनत लोगों ने इसलिए प्राण दिए थे कि बाद में क्लब समाज सेवक संघ और सौन्दर्य प्रतियोगिताएं ही देश का अन्तिम लक्ष्य होगी। सबकी दृष्टियों पर पड़ा भ्रम मिटने लगा और उन्होंने पाया कि वे उखड़े हुए लोग हैं जिनके 'इन्द्रधनु रौंदे हुए थे अपनी रगों में, सांसों में आंखों में ठण्डा लोहा जमाकर बैठ गए हैं। शब्द दंश जो अब तक काफी जहरीले हो चुके थे अप्रस्तुत मन' को सान्त्वना नहीं दे पाते थे

तात्पर्य बस इतना कि
एक सिल की तरह गिरी है स्वतन्त्रता
और पिचक गया है पूरा देश।'[2]

---

१ माखनलाल चतुर्वेदी हिमकिरीटिनी पृ० १४।
२ कैलाश वाजपेयी संक्रान्त—राजधानी।

गुजराती साहित्य मे भी प्रतिक्रियाए प्राय समान ही मिलती हैं। जय जय गरवी गुजरात' गाते हुए कवि क्या अनायास अरविन्द दशन मे जीवन का मूल सोचने लगे? वडता पाणी' का 'पराधीन आक्रोश, छिन्न भिन्न हू मे क्या बदल गया? और कवि को अपने चारो ओर फेन की उठती हुई दीवार क्यो प्रतीत होने लगी? जिस ईश्वर की माया बहुरूपिणी मे तमाम सष्टि पर छायी थी वही ईश्वर आकाश की दीवारो मे क्या छिप गया? उसी ईश्वर के होने न होने के भ्रम को सत्य मानकर जीने का अनुबन्ध क्यो कवि के सामने आया?

इन अनेक प्रश्नचिह्नो का उत्तर सभवत यह हो सकता है कि सब ओर की प्रतिक्रियाओ और सन्दर्भो को देखते हुए साहित्य का जो रूप है वह किसी शून्य से उत्पन्न नही हुआ है अपितु उसके पीछे सुदृढ आधार है जिसका निर्माण सघर्षों ने किया है।

हिन्दी और गुजराती नयी कविता का परिदृश्य

(क) नयी कविता की साहित्यिक पृष्ठभूमि

✓ आधुनिक हिन्दी कविता का आरंभ लगभग सन् १८५० से माना जाता है। भारतेन्दु और द्विवेदी युग में खड़ी बोली का विकास हुआ, जो एक दृष्टि से देश के नवजागरण का इतिहास है। एक प्रकार से उन्नीसवीं शती का काव्य, खड़ी बोली के विकास और देशव्यापी आंदोलनों के इतिहास का पर्याय है। इस समय की कविता विचारों में प्रगतिशील होने पर भी परम्परागत मूल्यों का मोह नहीं छोड़ सकी थी। भारतेन्दु और उनके अन्य सहयोगी कवियों की साहित्यिक श्रेष्ठता असन्दिग्ध होने पर भी इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि जो वैचारिक प्रौढ़ता महावीरप्रसाद द्विवेदी के आगमन से साहित्य में आई थी उसका इन कवियों में अभाव है। आचार्य द्विवेदीजी ने भाषा सम्बन्धी प्रतिमान उपस्थित कर काव्य के बहिरंग में प्रयासपूर्वक परिवर्तन किया। भारतेन्दु-युग में ही श्रीधर पाठक के काव्य में आगे जाकर होनेवाले प्रयोगों का आभास हो जाता है। काव्य निर्माण के इस काल में कविता पर इतने बंधन हो गए थे कि विषय इतिवृत्तात्मक हो गए और रीतिकालीन ह्रास विलास, वासनामूलक प्रेम और निष्प्राण कल्पना के स्थान पर स्वस्थ प्रेम को विश्व से तादात्म्य स्थापित करने का मंत्र माना जाने लगा। राजनीतिक और आर्थिक चेतना के कारण जनसामान्य के प्रति सहानुभूति विकसित हुई। एक आदर्श समाज के निर्माण के लिए विद्यार्थी, कृषक और नारी को शक्ति का स्रोत माना गया। इस समय बुद्धिवाद, आदर्शवाद और जनवाद प्रमुख रूप से प्रेरणादायी रहे हैं। बुद्धिवादी दृष्टिकोण को जीवन की समस्याओं पर किए गए गहन चिन्तन ने और अधिक प्रबल कर दिया। इस समय एक ओर जहाँ ब्रह्म समाज और आर्य समाज ने जीवन के बौद्धिक दृष्टिकोण को प्रश्रय दिया, वहाँ रवीन्द्र और गांधी ने भी अपने ढंग से राष्ट्र को बौद्धिक अध्यात्म का सन्देश दिया। इतना सब होने पर भी, काव्य का विषय-क्षेत्र चींटी से हाथी, भिक्षुक से राजा, आकाश और पृथ्वी तक खुल जाने पर भी, काव्य के मनोरंजक उपदेश प्रधान होने के अनुबंध के कारण कविता मंगलविधायिनी ही अधिक हो गई थी। यह पुनरुत्थान का युग था, भारतीय साहित्य की विशृंखलता इस समय जागृति में परिणत हो गई थी। समष्टि चेतना प्रधान इस युग में कवि की दृष्टि बाह्य निरूपिणी है, बाह्यगत अधिक है, आंतरिक कम।

प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति (१९१८) के साथ ही आधुनिक साहित्य के पूर्वार्द्ध की भी समाप्ति हो जाती है। इस समय यूरोप में जीवन के प्रति दृष्टिकोण में निस्सारता और खोखलापन आ गया था पर भारत में आर्थिक अभाव होते पर भी जीवन में स्पन्दन था और भविष्य के प्रति आस्था थी। पश्चिम के दृष्टिकोण को अपनाने वाले मध्यवर्ग की स्थिति निश्चित हो चुकी थी। यही वर्ग सचेत और शिक्षित था और इसे ही प्राचीन रूढ़ियों से लड़ना पड़ रहा था। देश के प्राचीन गौरव के प्रति उनके मन में श्रद्धा थी, पर देश की वर्तमान स्थिति के प्रति उसके मन में बहुत क्षोभ था। महायुद्ध के विनाशकारी प्रभाव के फलस्वरूप देश और समाज की समस्या के स्थान पर साहित्यकार स्वयं को केन्द्र मानकर रचना करने लगा। इसी कारण द्विवेदी युग के बाद आनेवाली कविता व्यक्तिपरक हो गई है किन्तु ऐसा नहीं है कि अपने चारों ओर होनेवाली क्रांतियों के प्रति सजग न हो। इस युग के साहित्यिक के मन में साहित्य की समस्त प्राचीन परम्पराओं के प्रति विद्रोह जाग्रत होता है जिसमें साहित्यिक के व्यक्तित्व को अभिव्यक्ति का अवसर ही नहीं मिला था।' इस प्रकार इस आनेवाले युग का साहित्यिक अधिक व्यक्तिवादी और अन्तर्मुखी हो उठा, उसने कला को अधिक प्रधानता दी। युग के साहित्य के मूल आधार को अमूर्त लाक्षणिक कल्पनाओं से सजाना आरम्भ किया। और यह छायावाद युग है, जिसके लिए आधुनिक युग के पूर्वार्द्ध में काफी विस्तृत भूमिका तैयार हो चुकी थी।[1]

प्रत्येक आन्दोलन। नूतन परिवर्तन के समान छायावाद की भी पर्याप्त विगर्हणा की गई। अनेक कटु आलोचनाओं की उपेक्षा कर छायावाद ने साहित्य में अपना महत्त्व स्थापित कर लिया। अपनी स्वप्नमयी, कल्पनाप्रधान और वेदनायुक्त अभिव्यक्तियों को सहज रूप देने के लिए द्विवेदीयुगीन बन्धनों को छायावाद ने स्वीकार नहीं किया। विभिन्न पौराणिक कथाओं और ऐतिहासिक आख्यानों के माध्यम से अपनी भावाभिव्यक्ति करने के स्थान पर इस कविता में भावों की स्पष्ट और कुण्ठारहित अभिव्यक्ति को अधिक मान्यता दी गई जिसका स्तर पूर्णतः ऐहिक है।

पंत की उच्छ्वास, निराला की सरोजस्मृति और प्रसाद के आँसू और लहर के शृंगारपरक गीतों में कहीं भी नैतिकता ने बाधा नहीं दी है—

'अधर में वह अधरों की प्यास
नयन में दर्शन का विश्वास
धमनियों में आलिंगनमयी
वेदना लिए व्यथाएँ नयी,

टूटते जिससे सब बन्धन
सरस सीकर से जीवन कन

१ डॉ॰ रघुवंश : साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य, पृ॰ १११।

झिखर भर देते अखिल भुवन
वही पागल अधीर यौवन।[1]

ढिगत विचारधाराओं के विरुद्ध इन पंक्तियों में यौवन की अतृप्त आकांक्षाओं का मुखर चित्र है। यौवन सदा बरसते रहने के इच्छुक घन मण्डल के समान है जो भावनाओं के आवेग में समस्त बाधा नष्ट कर देता है।

नैतिकता के प्रति अवहेलना के साथ ही शृंगार के प्रति तत्कालीन दृष्टिकोण कठोर होने के कारण, प्रिय को (आ)त्म के सिंहासन पर आसीन कर देने की प्रवृत्ति महादेवी की रचनाओं और प्रसाद के आंसू में स्पष्ट है। इस विषय में शुक्लजी का कथन है— इसी विषय में चाहे यह कहें कि इनकी सारी प्रणयानुभूति ससीम से कूदकर असीम पर जा रही है।[2]

छायावाद ने अपने प्रत्यक्ष अनुभव को कल्पनाप्रधान और भावप्रवण ग्रह के संदर्भ में स्वीकार किया है। जीवन की संकुलता और सामाजिकता का तीव्रता से अनुभव कर, सामाजिक रूढ़ियों से होनेवाले संघर्ष में उसने स्वयं को रख दिया है। अपने को अभिव्यक्त करने में प्रकृति एक सबल माध्यम बनी है। प्रकृति के कोमल, स्निग्ध रूपों का चित्रांकन और मानुषी व अमानुषी वनियों से समन्वित करके अथवा प्रेम के वियोग और मिलन पक्षों की निवृत्ति में कल्पना का सौंदर्य स्पष्ट है। 'प्रकृति अपने आप में सुन्दर नहीं है, उसका सौंदर्य मनुष्य के लिए है और मनुष्य युग युग से प्रकृति को सुंदर बनाता जा रहा है। एक ओर मनुष्य के हाथ में निसर्ग का नैसर्गिक सौंदर्य और निखर आया है और दूसरी ओर मनुष्य के मन ने उस वस्तुनिष्ठ सौंदर्य के भी अनेक सूक्ष्म और वस्तुगत सौंदर्य के सूक्ष्म स्तरों का उद्घाटन किया।[3]

एक प्रकार से प्रकृति के सौन्दर्य स्तर की यह खोज मानव के भौतिक और मानसिक विकास की प्रतीक है। सौन्दर्य और प्रकृति के आकर्षण के मूल में जिज्ञासा और विस्मय की भावनाएं हैं। यद्यपि प्रकृति के भयंकर और कोमल दोनों रूपों का चित्रण है किन्तु इनमें 'आत्मीय सम्बन्ध की भावना के स्थान पर बौद्धिक सहानुभूति ही विशेष है।[4]

छायावादी कविता एक सीमा तक अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों से प्रभावित है। उन्मुक्त रूप में वैयक्तिक विचारधारा और संवेदना पर आधृत वर्डस्वर्थ और कालरिज के काव्य संग्रह 'लिरिकल बलेड्स' नियमित और अतिशय आडंबरमय काव्य परम्परा की प्रतिक्रिया के समान आई थी। कविता में भावों का सहज उच्छलन माननेवाले इस काव्य में एक नए युग की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी थी।

रोमांटिक कवि की प्रेरणा का आधार सौंदर्य है जिसमें सौन्दर्य के प्रति जिज्ञासा का भाव निहित रहता है। काव्य के वस्तुतत्व की ओर अधिक सचेष्ट रहने के कारण रोमा-

---

१ जयशंकर प्रसाद लहर, पृ० २१।
२ रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६७८।
३ नामवरसिंह आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ० १०।
४ डॉ० रघुवंश साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य, पृ० १२२।

टिक कवि उसके रूप तत्त्व की अवहेलना करता है। अपने उन्मुक्त और स्वच्छन्द जीवन की अनुभूति को अपने काव्य में साकार करने के प्रयास में स्वच्छन्दतावाद मानवतावाद के समीप आ जाता है।

इसकी विशेषता रूमानी अवसाद (Romantic melancholy) है। अत्यधिक कल्पनाशील, स्वप्नदर्शी और भावुक होने के कारण यथार्थ की कटु वास्तविकता का सामना करने में रोमांटिक कवि अपने को असमर्थ पाते हैं और अपने को एकाकी पाकर उदास हो जाते हैं, किन्तु इस अवसाद के आनन्द के भोग के प्रति वे सजग हैं—

> Tragedy delights by affording a shadow of pleasure which exists in pain The pleasure that is sorrow is sweeter than the pleasure of pleasure itself

✓अपने अहम की पुष्टि के लिए रोमांटिक कवि दैनिक जीवन की कटुताओं से पलायन कर कहीं अलग अपनी व्यथाओं का समाधान खोजता है और यहीं उसकी रचना में रहस्य का समावेश होता है। इस काव्य में रहस्य के मूल में पलायन के साथ ही नए सौंदर्य के प्रति जिज्ञासा है जो नैतिक साहस के अभाव में प्रस्तुत के लिए अप्रस्तुत की योजना द्वारा अभिव्यक्त हुई है।

सामंती कविता की प्रतिक्रिया में जिस प्रकार रोमान्टिक कविता का प्रारम्भ हुआ, उसी प्रकार छायावाद भी द्विवेदी युग की प्रतिक्रियास्वरूप उदित हुआ। कहा जाता है कि हिन्दी में छायावाद बंगला के प्रभाव स्वरूप आया है। बंगला का यह प्रभाव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के भावुक गीतों के माध्यम से आया था। रवीन्द्र ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में भारत की प्रत्येक भाषा के साहित्य को प्रभावित किया था। हिन्दी में यह प्रभाव छायावादी युग में बहुत अधिक मात्रा में है। टैगोर के निबन्ध 'काव्येर उपेक्षिता' से प्रेरणा ले हिन्दी में काव्य की उपेक्षिताओं को विषय बनाया गया। मैथिलीशरण गुप्त और नवीन ने उर्मिला को काव्य विषय बनाया। निराला जिनकी शिक्षा बंगाल में हुई थी इस समय टैगोर की कविताओं का अनुवाद कर रहे थे। इस प्रकार से टैगोर ने तत्कालीन हृदय को आलोड़ित कर दिया था—

> Rabindranath's real contribution thus lies in the soul of the sensitive writers This is the genuine influence which is far deeper than borrowings or lifeless imitation'[1]

किन्तु बंगला काव्य स्वयं मौलिक नहीं है। उसने माध्यम के रूप में योरोप-प्रभावित बंगला कविता का आधार ग्रहण किया हो छायावाद में प्रायः जानकाल सभी तत्त्व अपना सीधा सम्बन्ध आंग्ल रोमांटिक धारा से ही रखते हैं। और यह सम्बन्ध केवल भावपक्ष तक ही सीमित न रहकर अभिव्यंजना क्षेत्र तक विस्तृत है। मूर्त के लिए अमूर्त का विधान, मानवीकरण और विशेषण विपर्यय जैसे प्रयोगों का बाहुल्य इस कविता का जैसे विशेष धर्म बन गया है।

---

१ Indian Literature, Vol II (published by the Viswa Bharati), p 179

'पल्लव' की भूमिका में पंतजी ने कहा है कि कविता के लिए चित्र भाषा की आवश्यकता पड़ती है उसके शब्द सस्वर होने चाहिए जो बोलते हों जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आँखों में खींच सकें, जो झंकार में चित्र चित्र में झंकार हों जिनका भाव संगीत विद्युदधारा के समान रोम रोम में प्रवाहित हो सके।[1]

शब्द चयन में ध्वनि सूक्ष्मता के साथ शब्दों के संस्कार परिष्कार की भावना छाया वादी कवियों में स्पष्ट रूप से मिल जाती है। छायावादी शब्द भण्डार में संस्कृत बंगला और अंग्रेजी के शब्दों से निर्मित नए शब्द प्रचुर मात्रा में है। शतदल स्वप्निल आदि बंगला से सुनहला स्पर्श (Golden Touch) भग्नहृदय (Broken Heart) आदि अंग्रेजी से आए हैं। छायावादी कवि भावों की कठोरता और कोमलता के अनुरूप शब्दचयन करते हैं। भाषा के स्वरूप परिवर्तन का भान नामवरसिंह के इन शब्दों से हो जाता है 'इस प्रकार पतझर की भाषा देखते-देखते कुसुमित शब्दों से लद गई। शब्दों के चयन और निर्माण में छायावादी कवियों ने कितना श्रम किया इसका आभास शब्दनिरपेक्षी पंतजी की 'पल्लव' की भूमिका से हो सकता है।'[2]

छन्दों के क्षेत्र में नवीनता को अपनाया गया है। निराला के मुक्त छन्द के प्रयोग ने खड़ी बोली को नयी लय और नया संगीत प्रदान किया है। डॉ० देवराज के अनुसार "वस्तुत: आधुनिक हिन्दी काव्य को सुंदर शब्दकाय और कोमल मधुर अनुभूतियां छायावाद की ऐतिहासिक देन हैं।'[3]

छायावाद के उत्कर्ष की चरम सीमा सन १९३६ में 'कामायनी' का प्रकाशन है और इसके बाद 'युगान्त' एक प्रकार से उसकी समाप्ति का घोषणा-पत्र। छायावाद की दुर्बलताओं को पंत जी के शब्दों में इस प्रकार समझा जा सकता है "इस युग की वास्तविकता ने जैसा उग्र आकार धारण कर लिया है उससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गए हैं। श्रद्धा अवकाश में पलनेवाली संस्कृति का वातावरण आन्दोलित हो उठा है और काव्य की स्वप्नजडित आत्मा, जीवन के कठोर युग की कविता स्वप्न में नहीं पल सकती। उसकी जड़ों को अपनी पोषण सामग्री धारण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है।"[4]

साहित्य अथवा काव्य के लिए यह आवश्यक है कि वह जिन भावों का प्रतिपादन कर रहा है उनके वास्तविक होने के विषय में सबको आश्वस्त करे, उनकी सत्यता पर किसी प्रकार का संदेह न हो। और यह सत्य काव्य के स्वर में होना है जिसे ऊपर से ग्रहण नहीं किया जा सकता। छायावाद को, अपने युग की ही विशेषता से आकर्षित करनेवाली दृष्टि मिली थी ऐसी ही कोई-न-कोई विशेषता काव्य को प्रत्येक चरण में मिलती है जो उसे एक विशिष्ट स्वर प्रदान कर देती है। बदलते हुए इन स्वरों के बीच वयक्तिक ध्वनि आती है

१ सुमित्रानन्दन पन्त पल्लव' की भूमिका।
२ नामवरसिंह आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ।
३ रमाशंकर तिवारी प्रयोगवादी काव्यधारा, पृ० १२।
४ पंत रूपाभ—वर्ष १, संख्या १, जुलाई, १९३८।

जो बीसवीं शती के तीसरे दशक की अभिव्यक्ति है और छायावाद और नयी कविता के बीच का सेतु भी। भगवतीचरण वर्मा, नरेन्द्र, बच्चन, दिनकर, नवीन और माखनलाल ने वह आरम्भ किया जिसे आलोचकों ने छायावाद का दूसरा दौर कहा है। इस दृष्टि से छायावाद का ह्रास वह संकेत है जो नयी कविता का आरम्भ भी। यह सही है कि यदि इन कवियों को ध्यान से देखें तो छायावाद और नयी कविता के बीच दुर्लंघ्य खाई के बजाय एक क्रमशः विकसित होती हुई परम्परा दिखाई पड़ेगी।[1]

वैयक्तिक कविता में छायावादी मनोभावना की रंगीन आध्यात्मिक कल्पनाशील और राजनैतिक तन्मयता एक प्रकार से खण्डित हो गई। छायावादी दौर में जो प्रवृत्तियाँ अपनी पूरी शक्ति के साथ विकसित हो रही थीं उनकी लहर जैसे किसी चट्टान से टकराई और छितरा गई। तनाव ढीला हो गया और बूँदें बिखर गयीं। इन बिखरी हुई बूँदों में चमकता हुआ इन्द्रधनुष बच्चन, भगवतीचरण, दिनकर, नवीन, सुभद्राकुमारी, नरेन्द्र, अंचल, सुमन आदि की खुमारी और जवानी का काव्य है।[2]

इस कविता में हमें छायावादी दार्शनिक गंभीरता की भंगिमा नहीं मिलती। और जहाँ शायद गंभीरता है वहाँ तीसरा दशक दार्शनिक की तरह सोचता है कवि की तरह नहीं।[3] इसके साथ ही नैतिकता का भी विघटन हो गया। इन कविताओं में शक्ति है पर स्वयं को नैतिक सिद्ध करने का प्रयास गौण पड़ गया है। यथार्थ का चित्रण जिस रूप में इस कविता में हुआ है वह भावना का प्रतिफल है। इस काव्य में हर वस्तु के प्रति एक सस्ती उन्मादकता स्पष्ट है। उन्होंने जीवन का समग्र रूप में न देखकर आंशिक रूप में ही देखा है—वह मस्त जन जीवन का उन्माद निखार देता है वह निश्छल का होता है। इसका परिणाम यह हुआ कि उस सीमित विस्तार में गीतों का सृजन हुआ जो इस सीमा में ही सिमट रहे।

इन कवियों का अनुभव यही रहा है कि बदलते हुए युग के साथ बदलती हुई मान्यताओं और बाहर के वास्तविक यथार्थ में पर्याप्त अन्तर है। छायावाद का सहज ज्ञान उस समय की स्वीकृत मान्यता है। उत्तरछायावादी कविता व्यक्तिवादी और वाभिन्न भावनाओं में सो मुखर है किन्तु गंभीरता का उसमें अभाव है। बच्चन की रुबाइयाँ, दिनकर के गीत, भगवतीचरण वर्मा की लापरवाह मौजमस्ती, नवीन का फक्कड़पन, अंचल का उन्माद, नरेन्द्र शर्मा का रूमानी प्रणय—इन सब में गंभीरता के अभाव की छाया है। कुछ विचारक ऐसा मानते हैं कि अंग्रेजी के कवि लार्ड बायरन के पचासों टुकड़े कर दिये गये हों और उनमें से कुछ टुकड़े तमाम कवियों की जवानी में अलग अलग जड़ कर दिये गये हों।[4]

काव्य की भावभूमि के निर्माण में तत्कालीन प्रवृत्तियों का महत्त्वपूर्ण योग रहता है। वैयक्तिक कविता मनोमय की अभिव्यक्ति होने के साथ ही बदलते हुए इतिहास का उद्घाटन करती थी।[5] इसी में दो प्रेम का स्वर इस समय रह रहकर मुखर हो उठता है। राष्ट्रीयता का आह्वान करनेवाली यह कविता सामाजिक यथार्थवाद की कविता भी थी

१ नया कवित—अंक ४ ५ पृ० ११।
२ वही पृ० ८०।
३ वही, पृ० ८०।
४ वही पृ० १०३।

गई है।

माखनलाल सुभद्राकुमारी चौहान और दिनकर की रचनाओं में राष्ट्र की हुँकार सुनाई पड़ती है। किन्तु यह राष्ट्रीयता अंधी है इसमें सवेग की ही प्रबलता है बुद्धि का संयम नहीं। किन्तु इस आवेग में भी सात्विक गर्व और ओज है। खोए हुए स्वातन्त्र्य और गौरव को प्राप्त कर जब देश की धरती और आकाश अपना होगा—उस समय की कल्पना के कारण कविताओं में ध्वंस के स्थान पर निर्माण के भव्य चित्र है, जो बलि में विश्वास रखते है—

"बलि के कम्पन में जा आती
भटकी हुई मिठास,
यौवन में बाजीगर—करता हूँ उस पर विश्वास।[1]

" बयालीस के आंदोलन आजाद हिन्द सेना' और बंगाल के अकाल को विषय बनाने वाली सामयिक महत्त्व की कविताएँ, लोग गलियों में गाते फिरते थे, पर उनका महत्व स्थिर न रह सका क्योंकि वे केवल वाणी का उच्चार थी प्राणों की अभिव्यक्ति नहीं थी।[2]

इन भावनाओं के साथ वर्ग वैषम्य की भावना निर्माण की सजग चेतना से अभिभूत है। इस कविता में मार्क्सवाद के प्रभाव से एक ऐसी धारा प्रवाहित हुई जो सामाजिक आर्थिक वैषम्य और उनसे उत्पन्न असंतोष और अशान्ति को चित्रित करने में अधिक विश्वास रखती थी। आरम्भ से यथार्थ के स्तर पर आता हुआ युवक जीवन की इन विडम्बनाओं को समझने लगा था। सम्पत्ति के वितरण का भार पूँजीवादी वर्ग पर था। पूँजीवादियों और श्रमिकों के संघर्ष को इस कविता ने स्वर दिया, अतः यह कविता शोषित पीड़ित बहुल समाज का पक्ष लेकर खड़ी हुई। मानववाद के सहारे सामाजिक विसंगतियों को दूर करने का स्वप्न देखा और संस्कृति के नवीन रूप में श्रम और समानता की स्थापना की। हर समस्या का नग्न चित्र प्रस्तुत कर भावनाओं को उत्तेजित करने का प्रयास इस कविता में है—

बाग के बाहर के झापड़े
दूर से जो दिख रहे थे अधगड़े
जगह गन्दी रुका सड़ता हुआ पानी
मोरियों में जिन्दगी की लन्तरानी
बिलबिलाते कीड़े बिखरी हड्डियाँ
सल्हरों के परों की थीं गड्डियाँ
कहीं मुर्गी कहीं अण्डे
धूप खाते गए कण्डे।[3]

इस प्रकार वैयक्तिक कविता आदर्शवादी और यथार्थवादी विचारधाराओं के बीच का

१ माखनलाल चतुर्वेदी हिमकिरीटिनी।
२ डॉ० नगेन्द्र आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृ० ३६।
३ निराला कुकुरमुत्ता पृ० १५।

सतु है। इसमें प्रकार व्यक्तिवाद और स्थूल व मूर्त के प्रति आग्रह है और परम्परा व अध्यात्म के सूक्ष्म आदर्शों के प्रति अनास्था। वास्तव में छायावाद के मूल से आविर्भूत इस धारा ने प्रगतिवाद के लिए पथ प्रशस्त किया। इस प्रकार यह प्रवृत्ति प्रगतिवाद की अग्रजा और छायावाद की अनुजा है।'[१]

वैयक्तिक कविता के अंतर्गत मार्क्सवाद के जो बीज प्रभावस्वरूप मिलते हैं उन्हीं का विकास प्रगतिवादी कविता में हुआ है।

प्रगतिवाद का आरम्भ पेरिस में स्थापित प्रगतिशील लेखक संघ के अंतर्राष्ट्रीय प्रभाव स्वरूप हुआ था। डा० मुल्कराज आनन्द, सज्जाद ज़हीर और भवानी भट्टाचार्य ने लंदन में सन १९३६ में भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की थी जिसके घोषणा पत्र में स्पष्ट कर दिया था—'हमारा समाज जो नया रूप धारण कर रहा है—उसको साहित्य में प्रतिबिम्बित करना और वैज्ञानिक बुद्धिवाद को साहित्य में प्रतिष्ठा करना प्रगतिशील विचारधारा को वेगवती करना—यही हमारे लेखकों का कर्तव्य है।'[२]

'भारत में प्रगतिवाद का आरम्भ तब हुआ था जब पश्चिम में वह समाप्त हो चुका था। वैसे भी जनजीवन के समीप होने का उसका दावा कम से कम अपने देश की सांस्कृतिक दृष्टि से सामंजस्य नहीं कर सका। हिंदुस्तान की यह बदकिस्मती रही है कि यहां प्रगतिवाद का प्रवेश तब हुआ जब विदेशों में उसका दिवाला निकल चुका था। विदेशों की इस उतरन को हमने बड़े चाव से पहना जबकि हमारे अपने साहित्य में किसी भी प्रगतिवाद से सौ गुना शक्तिशाली प्रवृत्तियां पनप रही थी।'[३]

प्रगतिवाद युग की आवश्यकताओं को जानने का एक प्रयास है जिसमें छायावादी सूक्ष्म भावनाओं के स्थान पर ठोस धरातल मिलता है। प्रगतिवाद की परिभाषा करते हुए डा० केसरीनारायण शुक्ल ने कहा है कि 'युग की आकांक्षाओं और आवश्यकताओं को जानने वाले एक नवीन समुदाय का साहित्य में आविर्भाव हुआ जिसने अपने आपको प्रगतिवादी कहा और जिसकी रचना प्रगतिशील कहलाई।'[४]

प्रगतिवाद और प्रगतिशील साहित्य में अंतर करते हुए प्रगतिवादी साहित्य को संकीर्ण और साम्प्रदायिक तथा प्रगतिशील साहित्य को व्यापक और उदार माना गया है। इस अन्तर की भ्रांति को डा० नामवरसिंह ने स्पष्ट किया है 'जिस तरह छायावाद और छायावादी कविता भिन्न नहीं है उसी प्रकार प्रगतिवाद और प्रगतिशील साहित्य भी भिन्न नहीं है।'[५]

प्रगतिवाद से प्रायः मार्क्स के साहित्य सिद्धान्तों पर रचे गए साहित्य का अर्थ लिया जाता है किन्तु शिवदानसिंह चौहान के अनुसार 'प्रगतिशील कविता का जब प्रश्न उठता है

१ डॉ० नगेन्द्र : हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृ० ६१।
२ डॉ० हरेन्द्र मुखर्जी : प्रगतिशील आन्दोलन का प्रारम्भ, नया साहित्य, पृ० १६५।
३ धर्मवीर भारती : प्रगतिवाद : एक समीक्षा, पृ० १४।
४ केसरीनारायण शुक्ल : हिन्दी काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत, पृ० १६६।
५ डॉ० नामवरसिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ० ५७।

ता उसके पीछे किसी विशेष 'वाद' की मान्यता का आग्रह नहीं किया जा सकता। एक प्रगतिशील कवि गांधीवादी भी हो सकता है मार्क्सवादी भी और द्वैत अद्वैतवादी भी।'[1]

'व्यापक अर्थों में प्रगतिवाद साहित्य की उस विशेष दिशा का कहना जिसमें चलकर साहित्य मानव सभ्यता और संस्कृति के विकास में सहयोग देता है, इन अर्थों में प्रगतिवाद साहित्य की उस दिशा विशेष को कहते हैं जो मार्क्सवादी जीवन दर्शन के अनुसार साहित्य के लिए निर्दिशित की गई है।[2]

मार्क्सवाद का आधारभूत सिद्धांत 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' है। इसके अनुसार जगत का एकमात्र सत्य भौतिक जीवन है। हमारी इन्द्रियाँ ग्राह्य घटनाओं को ग्रहण करती हैं और प्रतिक्रियास्वरूप हमारा मस्तिष्क, जो सूक्ष्मतम और सबसे विकसित अवयव है इस कम्पन का अनुभव करता है। आत्मा की स्वतंत्र सत्ता नहीं है और यदि है तो वह मस्तिष्क से किंचित सूक्ष्म है और पदार्थ की ही उद्भूति है। इसके संरक्षण अथवा नाश के लिए ब्रह्म से प्रार्थना करना आवश्यक नहीं है। पदार्थ से ही इस संसार का निर्माण हुआ है किसी प्रकार की आधिदैविक या आध्यात्मिक शक्ति के सहयोग की उसके लिए आवश्यकता नहीं है। अतः जीवन का उपयोग छोड़कर किसी काल्पनिक सुख की तलाश में घूमना व्यर्थ है। जीवन के दो ही अर्थ हैं—अर्थ और काम। धर्म अथवा मोक्ष का इस दर्शन में कोई महत्त्व नहीं है। सृष्टि स्वयं संचालित है जीवंत तत्त्वों से उसका विकास होता है और मरणशील तत्त्वों से ह्रास। स्थापना (Thesis), प्रतिस्थापना (Antithesis) और समन्वय (Synthesis) के इस चक्र को मार्क्स शाश्वत चक्र मानते हैं जो सदा विकासोन्मुख ही होता है। इस प्रकार द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, वस्तु के तात्त्विक और आंतरिक संघर्षों का अध्ययन है जिसके अनुसार विरोधों के संघर्ष से ही भौतिक तत्त्वों का विकास होता है। मार्क्सवाद के अनुसार धर्म, राजनीति आदि सभी शास्त्रों में युग के परिवर्तन और आर्थिक परिवर्तन के साथ ही परिवर्तन होता है। साहित्य इससे पृथक नहीं है। उत्पादन के विकास के साथ ही सामाजिक सम्बन्ध और वैयक्तिक आचार विचार बदलते रहते हैं। संभवतः इसीलिए काडवेल ने कविता का मूलाधार जातीय अथवा दैशगत न मानकर आर्थिक माना है—

'Poetry is regarded then not of something racial national or specific in its essence but as something economical'[3]

काव्यकला का जन्म समाज से होता है। उसका उद्देश्य शृंखलाबद्ध सूक्ष्म विचारों की अभिव्यक्ति नहीं अपितु सामूहिक भावों की व्यंजना द्वारा समाज को गति देना है—

'If dynamic role in society—its content of collective emotion is therefore poetry's truth'[4]

और कलाकार को मजदूर नेता का काम करना चाहिए—

---

१ शिवदानसिंह चौहान साहित्य की समस्याएं, पृ० ६१।
२ धर्मवीर भारती प्रगतिवाद एक समीक्षा, विषय प्रवेश।
३ C Caudwell Illusion and Reality, p 240
४ वही, पृ० २६।

"It is a demand that you an artist, become a proletarian leader in the field of art"[1]

काडवेल ने कलाकार से कला के क्षेत्र में जो मजदूर नेता होने की अपेक्षा की थी डा० रामविलास शर्मा के शब्दों में काफी सीमा तक वही फलीभूत होती दिखाई देती है— 'प्रगतिशील लेखक इस बात का एलान कर चुके हैं कि वे एक वर्ग के साथ हैं, हिन्दुस्तान के लड़ाकू मजदूर वर्ग के साथ जो हिम्मत और दिलेरी के साथ बर्बर दमन के खिलाफ जनतंत्र के लिए संघर्ष में तमाम मेहनतकश जनता का नेतृत्व कर रहा है।'[2]

इस प्रकार प्रगतिवाद साहित्य को आत्माभिव्यक्ति न मानकर समाज सापेक्ष्य मानता है और साहित्य का निर्माण प्रगतिवाद में विराट समाज चेतना से ही हो सकता है। 'मनुष्य का असली काम है सुन्दर सुन्दर वस्तुओं का निर्माण करना, प्रकृति पर विजय प्राप्त कर सृष्टि के रहस्यों को खोजना। इसमें मनुष्य को आगे बढ़ने से कौन रोकता है? पेट की चिन्ता जिसके कारण बहुत-सा समय जीवन बिताने की चिन्ता में ही समाप्त हो जाता है। यदि आर्थिक और राजनीतिक व सामाजिक व्यवस्था ऐसी हो जाए जिसमें मनुष्य मजबूर होकर अपनी शक्तियों का नाश न करे, तो निश्चय ही वह समानता का आनन्द प्राप्त करता हुआ अपने अंधविश्वासों का त्याग करके अपने महान् उद्देश्य को प्राप्त कर सकेगा।'[3]

इस समाजवादी भावना के कारण साहित्य में प्रचलित परम्परागत मूल्यों का विरोध कर प्रगतिवाद ने धीरोदात्त नायकों के स्थान पर किसान, मजदूर और श्रमिक वर्ग को ही महत्त्व दिया है। 'प्रगतिवादी साहित्यिक सर्वहारा वर्ग के युद्ध में कलम का मोर्चा संभाल, और अपने हृदय के रक्त से उन अनजान शहीदों के गीत लिखने लगे जिनके जवान रक्त से तेलंगाना की सड़कों या कालकोठरियों के फर्शों पर नयी जिन्दगी का इतिहास लिखा जा रहा है।'[4]

भूख की मार से पीड़ित, धन के अभाव में अत्याचार सहनेवाले श्रमिक को वह अपने से भिन्न नहीं मानता—

> जिस समाज का तू सपना है
> जिस समाज का तू सपना है
> मैं भी उसी समाज का जन हूँ।[5]

आजीवन का समीप से दर्शन करने वाले कवि की दृष्टि से ऊँचे नगरों की चिमनियों पर टिकते धुएँ और वहाँ के फौलादी आरामों का दर्शन कभी प्रेरित नहीं करता क्योंकि यह सारी नगर सभ्यता उस व्यक्ति की हड्डी पर टिकी है जिसे सभ्य आदमी ने दबा कर दिया है। इस पीड़ित व्यक्ति को उसका अधिकार पूँजीवादी व्यवस्था के पूर्ण उन्मूलन से मिल

१ C Caudwell Illusion and Reality, p 240
२ रामविलास शर्मा : नयी कविता, पृ० ६५।
३ रांगेय राघव : प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड, पृ० ३१।
४ धनंजय वर्मा : प्रगतिवाद : एक समीक्षा, पृ० ८।
५ [illegible] वही, पृ० ११।

सक्ता है और यह परिवतन केवल क्राति के द्वारा सम्भव है। 'वतमान अवस्था मे आमूल परिवतन होन पर ही यह वपम्य मिट सक्ता है। इसलिए मार्क्सवादी लोग पीडितो के लिए अधिकारियो और धनिको का हृदय परिवतन भी नही चाहते क्योकि उनकी दृष्टि मे धनिको क उपकार और दया दीन जनो के असतोष को दबाने का साधन मात्र है।"[1]

मार्क्सवाद केवल क्राति तक ही सीमित नही रह जाता। वगहीन समाज की स्थापना मे अगर राज्यसत्ता भी उसे हस्तगत करनी पडे तो वह भी स्वीकार है। पाश्चात्य प्रगतिवादियो की दृष्टि म समाज क ही समान काव्य का आधार भी आर्थिक है। काव्य शोषको के मध्य विकसित होकर समाज से पृथक हो गया है, अत आवश्यक है कि वह समाज क बीच खडा हो। काव्य को समाज के सबसे दुखी अग—श्रमिक वग के सुख साधन म सहयोग देना चाहिए उसम कम प्रेरणा जगानी चाहिए।"[2]

सामूहिक सत्य को महत्त्व देने के साथ ही प्रगतिवाद म प्रेम का वह रूप उभरा है जिसम वासना, शारीरिक भूख और रूपलिप्सा के स्थान पर एक गहरे साहचय से उदित सम्बन्धो की स्वीकृति है। भले ही इसकी रागजन्यता एक विराट सामाजिक ध्येय से अनुप्राणित है किन्तु इस कविता म मुख्यत क्षयग्रस्त और विकृत शृगार की ही अभिव्यक्ति हुई है। युग की सामयिकता साहित्य म अपने ययाथ और प्राजल रूप म प्रतिबिम्बित होती है। इसी सामयिकता के कारण प्रगतिवाद को अस्थायी और क्षणजीवी समझा जाता है पर प्रगतिवादी आलोचक के अनुसार उसम सगति नही है क्योकि इसकी वदना का स्तर उसके कलात्मक गुण और सामाजिक चेतना पर अवलम्बित रहत हैं। फिर भी सामाजिक चेतना पर अवलम्बित यह वेदना ऊपरी सतह का ही छू पाती है।

वास्तव म साहित्य से भावना का निष्कासन करना साहित्य के प्रति अन्याय है क्योकि साहित्य भयप्रधान या बुद्धिप्रधान नही होता। और हिन्दी कवियो का दृष्टिकोण भावप्रधान है आत्मा क प्रति उसमे मोह है। सामाजिक चेतना इसम इतनी प्रबल नही हुई है कि व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओ की उपेक्षा कर दी जाए।[3]

पश्चिम म प्रगतिवाद को 'पार्टी लिटरेचर' कहा जाता है, अर्थात वह किसी विशेष राजनीतिक विचारधारा का उच्चार है। भारत म मुख्यत मार्क्सवादी सिद्धातो का प्रसार करना ही प्रगतिवाद का लक्ष्य रहा है—इस आक्षेप का निराकरण रागेय राघव क शब्द कर देत हैं— 'प्रगतिशील साहित्य केवल राजनीति म समाप्त नही हो जाता। वह इतना सकीण नही है जितना समझा जाता है। सौंदय के समाज पक्ष को मानते हुए भी वह उसके व्यक्ति पक्ष का विरोधी नहीं है परन्तु वह सौन्दय को युगनिरपेक्ष नही मानता।'[4] इतना सब होने पर भी यह नही अस्वीकार किया जा सकता कि प्रगतिवाद म साहित्य क चिरन्तन तत्त्वो का अभाव है। पत नरेन्द्र शर्मा और अचल आदि प्रगतिशील कवि उस जीवन से बहुत दूर हैं

१ शिवशकर शुक्ल हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद, पृ० ७५।
२ वही, पृ० ७५।
३ डॉ० नगेन्द्र आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृ० १०२।
४ रागेय राघव प्रगतिशील साहित्य क मानदण्ड पृ० ३४०।

जो उनकी प्रेरणा का मूलस्रोत है। उनकी यह सहानुभूति केवल बौद्धिक है जो पीड़ा उनके काव्य का विषय है उसे उन्होंने भोगा नहीं है। केवल बौद्धिक सहानुभूति के बल पर शोषितों की पीड़ा को मुखर करनेवाले या हजारों मील दूर पर लड़नेवाली लाल सेना के अभियान गीत लिखनेवाले इन लेखकों की रचनाएं स्वभावतः ही कैसे प्राणवान हो सकती हैं।[1]

'एक प्रकार से प्रगतिवादियों की हालत उस पाण्डु रोगी जैसी है जो 'स्वयं सभी चीज़ों को पीला देखता है और सारी दुनिया को मजबूर करना चाहता है कि वह भी पीले रंग के अलावा किसी और रंग में विश्वास न करे।'[2] संसार की तमाम वस्तुओं को एक ही दृष्टि से देखने के लिए कवियों ने बार बार केवल कुछ राजनैतिक नारों को दोहराया और अधिकांश 'प्रगतिवादी' आलोचना साहित्य चेतना के सरोवर-तट पर राजनीतिक प्रचार के झण्डे गाड़े ऊपर ही ऊपर पाँव मारकर भागों में तरंग का आनन्द लूटते रहे हैं और छिछले स्थलों से कीचड़ उछालते हुए काव्य की आत्मा को तोड़ मरोड़ कर नव दीक्षितों को दिग्भ्रान्त करते रहे हैं।[3]

किन्तु नवदीक्षितों को साहित्य के नाम पर पीटे जानेवाले कनस्तर आकृष्ट नहीं कर सके। विश्वयुद्ध के बाद अनास्था और अविश्वास की फैलती लहर को बेकारी और भूख की समस्या से अधिक बल मिल रहा था। इस समय में विभिन्न प्रकार की व्यक्तिवादी प्रवृत्तियाँ (जो छायावाद में ही स्पष्ट हो गई थीं) अपने विकसित रूप में सामने आईं। समाज दर्शन और राजनीति सबसे अलग हटकर इस आत्मनिरीक्षण प्रधान परम्परा ने अपनी घोर अन्तर्मुखी भावनाओं के कारण समस्त साहित्यिक आन्दोलनों को जकड़ लिया।

काव्य की अन्तर्मुखी विशेषता के पीछे तत्कालीन जीवन में अन्तर्वर्तिनी सत्य और बाह्य सत्य की पूर्ण भिन्नता थी। कल्पित सत्य को जब बाहर कहीं आश्रय अथवा प्रोत्साहन नहीं मिला तो बाह्य सत्य को झुठलाने के भ्रम में अन्दर की गहरी वीथियों में उसने त्राण पाया। सत्य के प्रति जिज्ञासा होने पर भी उसके समाधान के लिए बनी रहती इस समय के काव्य में नहीं मिलती। आज की नयी कविता में जो मननशील व्यक्ति दिखाई देता है वह उसी परम्परा से उद्भूत है जिसने तीसरे दशक की कविता का निर्माण किया था। मानव सत्य की खोज ने कवि को अन्वेषी बनाया था—जिसका आभास तारसप्तक में हो जाता है। विभिन्न कविता के कवि जो किसी एक बिन्दु पर नहीं मिलते तारसप्तक में राहों के अन्वेषी कहे गए हैं—

तारसप्तक में सात कवि संगृहीत हैं। उनके एकत्र होने का एक कारण यही है कि वे किसी मंजिल पर पहुँचे हुए नहीं हैं अभी राही हैं—राही नहीं राहों के अन्वेषी। राहों के अन्वेषी हर अर्थ में प्रयोग के पथ में हैं। काव्य के प्रति अन्वेषी का दृष्टिकोण उन्हें एक सूत्र में बाँधता है। किन्तु उसका तात्पर्य यह नहीं है कि संग्रह की सब कविताएं प्रयोगशीलता के नमूने हैं, या कि इन कवियों की रचनाएं रूढ़ि से अछूती हैं

१ डॉ० नगेन्द्र : हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ पृ० १०३।
२ धर्मवीर भारती : प्रगतिवाद : एक समीक्षा पृ० ११५।
३ वही पृ० ११५।

य,कि केवल ये कवि प्रयोगशील है बाकी सब घास छीलनेवाले। ऐसा दावा यहाँ हर्गिज़ नहीं है।[1]

कवि जो कुछ अनुभूत करता है अपनी रचना के माध्यम से उसे ही समष्टि तक पहुँचाने का प्रयास करता है। इसके लिए केवल भाव की ही नहीं एक ऐसे माध्यम की आवश्यकता होती है जो संप्रेषण के इस दायित्व को निभा सके। और यही समस्या है जो "प्रयोगशीलता को ललकारती है।"

ऐसा नहीं है कि प्रयोग केवल इसी कविता में किया गया हो। वास्तव में प्रत्येक युग की कविता अपने में प्रयोग होती है। "प्रयोग सभी काल के कवियों ने किया है—यद्यपि किसी एक काल के किसी विशेष दिशा में प्रयोग करने की प्रवृत्ति स्वाभाविक है किंतु कवि क्रमशः अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए है अब उनसे आगे बढ़कर उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हें अभी तक नहीं छुआ गया।[2]

किन्तु इस धारा को प्रयोगवाद नाम अनजाने ही दे दिया गया है। संभवतः काव्य में होनेवाले नए प्रयत्नों के कारण दिया गया है। अपने में अपूर्ण और निरर्थक होते हुए भी आज आलोचना के क्षेत्र में यह शब्द स्थापित हो गया है। प्रयोगवाद शब्द से अब, "एक निश्चित प्रवृत्ति का बोध होता है, प्रचलन से इसमें पर्याप्त अर्थवत्ता आ गई है।[3]

आलोचकों ने प्रयोगवाद का कुछ भी अर्थ लिया हो, कवियों में यह शब्द स्वीकृत नहीं है। 'दूसरा सप्तक' की भूमिका में अज्ञेय का कथन है— प्रयोग का कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे, प्रयोग न अपने आपमें इष्ट या साध्य है। ठीक इसी तरह कविता का कोई वाद नहीं है। अतः हम प्रयोगवादी कहना अब उतना ही सार्थक या निरर्थक है जितना हम कवितावादी कहना।[4] शमशेरबहादुरसिंह प्रयोगवाद शब्द को ही गलत मानते हैं।

इस प्रकार बिना किसी अनुग्रह को स्वीकार किए इस प्रयोगशील काव्य में जीवन की यथार्थता का चित्रण हुआ। 'किन्तु, इसमें केवल प्रगति की जड़ता नहीं थी, प्रयोग की आक्रमणशीलता भी थी। इस आक्रमणशीलता का परिणाम इस काव्य दर्शन के परिवेशों पर भी पड़ा और इस धारा का प्रत्येक क्षेत्र सौंदर्य दृष्टियों से पूरित हो गया।[5]

नए यथार्थ से उत्पन्न नवीन सत्य इस काव्य में नए संस्कारों के रूप में स्पष्ट हुए हैं। प्रयोगशील साहित्य न केवल बदलती हुई भावना के मानदण्ड का प्रतीक है, वह सौन्दर्य बोध के नए आयामों का भी परिचय देता है।

जीवन से संघर्ष करने पर सब मोर्चों पर अपने को एकाकी पानेवाला कवि यदि अपनी वैयक्तिक शक्तियों पर अधिक विश्वास कर अपने अहं को अभिव्यक्ति देने लगता है तो भी समष्टि का एकदम अस्वीकार उसने नहीं किया। इसके पीछे संभवतः यही विश्वास है

---

१ अज्ञेय तारसप्तक, पृ० ७५।
२ अज्ञेय तारसप्तक अज्ञेय का वक्तव्य, पृ० ७७।
३ शमशेरसिंह आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ पृ० १२।
४ दूसरा सप्तक भूमिका।
५ आलोचना पूर्णांक ३३, पृ० ८४।

कि समाज के प्रति समर्पण करने पर भी अपनी स्थिति का स्पष्ट करने की शक्ति उसमें है—

'हम नदी के द्वीप हैं स्थिर समर्पण हमारा।
फिर छनेंगे हम कहां फिर पर टेरगे
यही फिर भी रहा, ऐसा नए व्यक्तित्व का आकार।'[1]

घोर व्यक्तिवादी बनने के पीछे परिस्थितियां का कितना हाथ है यह वाक्य में स्पष्ट अनास्था बता देती है। बिना आशा बिना प्रेम और बिना विश्वास के किसी का बचना रहना क्योंकि आशा प्रेम और विश्वास सभी प्रतीक्षा में है—निराशा और अनास्था की चरम सीमा है—

'ऐसा लगता है आज कि मेरा जीवन सारा नष्ट
ऐसा लगा आज कि मेरी सभी साधना भ्रष्ट
मैंने हरदम घोटा अपना सपना का दम।'[2]

इसी अनास्था का एक रूप में क्षण का विश्राम है। क्षण जो अभी है अभी नहीं होगा—उसमें महासागर से भी अधिक गहराई है—

होने के अस्तित्व का अजस्र अद्वितीय क्षण
होने के सत्य का सत्य के साक्षात का साक्षात के क्षण का
आज हम आचमन करते हैं।[3]

✓व्यक्ति को कुंठित यौन भावनाओं का पुंज माननेवाला कवि प्रत्यक्ष भाव को उसके प्राकृत रूप में पाना चाहता है। इसका परिणाम यह हुआ कि 'छायावाद' का छुईमुई प्रेम अब मांसल रूप में प्रकट होने लगा। जहां पहले सिद्धान्त था—सौन्दर्य केवल देखने की वस्तु है—छूने की नहीं—वहां प्रयोगवादी कवि ने उसे एकदम छूने की परिधि में खींच लिया है।[4]

प्रयोगवादी कवि अपने परिवेश के प्रति इतना अधिक सतर्क हो गया है कि हर जगह बौद्धिकता के रागात्मक कवच का वह अभ्यासी हो गया है।

✓इस काव्यधारा में शिल्पगत प्रयोग भी अधिक हुआ है। छन्दों के बन्धनों को स्वीकार न करके एक निर्बाध शैली का प्रयोग यहां हुआ है जिसमें आड़ी तिरछी लकीरों प्रश्न चिह्न ब्रैकेट आदि अभिव्यक्ति के अनेकानेक माध्यमों का स्थान मिला है। छन्द और शब्द की लय से मुक्त होकर इस काव्य में अर्थ की एक लय है। हर ओर बिखरती हुई इस अनुशासनहीनता से आलोचक अवश्य त्रस्त हो उठे थे। नामवरसिंह के विचार से 'उसे (कविता को) ऊपरी साजसिंगार की नहीं अपितु आन्तरिक सुधार की आवश्यकता है। दवा का में तमाम सुइयां और व्यायाम के तरीके काव्य की भाषा को तदुरुस्त और खूबसूरत नहीं बना सकेंगे, उसके लिए ठीक निदान की आवश्यकता है। विचार स्थायी किताबी भाव और चित्र कल्पना

---

१ अज्ञेय नदी के द्वीप, इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये।
२ धर्मवीर भारती ठण्डा लोहा पृ० ६३।
३ अज्ञेय नयी कविता एक सम्भाव्य भूमिका।
४ नामवरसिंह आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां पृ० ११७।

य सब अनुभव मे अधिक कल्पना पर आधत हैं। कवि के भाव के साथ जब पाठक समाज का घनिष्ठ सम्बन्ध बन जाता है तभी भाषा की साथकता होती है, केवल शब्दों के सपात से इस प्रकार का अभीष्ट नही प्राप्त किया जा सकता। छ दो को इन लोगो ने बिगाडा है। जन-भाषा के गीत लिखने की शैली म व व ताता लिखा ह जिसस भाषा सहज गभीर न बनकर अजायबघर बन गइ है।[1]

प्रयोगवाद भाव और व्यजना का स्थापत्य ह जिसका प्रारम्भ स्वतत्रता स पूर्व सन १६४ म तारसप्तक के प्रकाशन से माना जाता है। मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा नामवरबहादुरसिंह, गिरिजाकुमार माथुर नेमिचन्द्र जन भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचव और स्वय अज्ञेय की कविताओ म काव्य के जिस नवीन रूप का परिचय हुआ था स्वतत्रता प्राप्ति के बाद सन १६५१ म दूसरा सप्तक प्रकाशित हान तक वह पूणरुपण स्थापित हो चुका था।

प्रयोगवाद का यही विद्रोह अनास्था और स्वीकार का स्वर आज की नयी कविता की भावभूमि है। आसपास के हर भग्न उपकरण को आज भी व्याख्या दी जाती है। इस प्रकार भाव और अभिव्यक्ति दोनो ही क्षेत्रो म होनेवाले परिवतनो न आज की कविता के लिए पृष्ठभूमि का निर्माण किया। वास्तव म नयी कविता स्वय को साहित्य म आरोपित नही करती, यह तो एक ऐतिहासिक अनिवायता थी जो कालातर म फलीभूत हुई। आलोचना के क्षेत्र म प्रयोग का वाद चाहे किसी रूप म गठित हो गया हो और उसकी कुछ भी प्रवत्तिया दिखाई पडी हो किन्तु दूसरे सप्तक के बाद उस काव्यभूमि के दशन हुए जो एक ओर प्रगतिवाद की सामाजिक चतना क आग्रह से सयुक्त तो थी—लेकिन दुराग्रहो स दूर दूसरी ओर तथाकथित प्रयोगवाद की व्यक्ति मर्यादा और शिल्पगत उपलब्धियो से मडित थी किन्तु इनके ही अतिवाद से दूर। 'तीसरा सप्तक' इस नवीनतम काव्यभूमि को उसकी समग्र विशेषताओ के साथ उपस्थित करता है। बस इस काव्यादोलन का सुदढ और प्रशस्त भूमिका प्रदान करने का श्रेय नयी कविता को दिया जाएगा।[2]

नयी कविता को प्रयोगवाद का ही विकास माननेवाले कई आलोचको का उसके 'नए विशेषण पर इसलिए आपत्ति है कि नए स अनुभूत होनेवाली ताजगी नयी कविता में नही है और हर युग की कविता अपने समय की नयी कविता है। किन्तु वास्तव म यथाथ यह है कि नयी कविता का नयापन मन ही पूरे समाज का नयापन न बन पाया हो उसस प्रभावित सब हैं।[3]

साहित्य की इस पृष्ठभमि म आज की 'नयी कविता का विकास हुआ है।

गुजराती कविता की नूतनम प्रवृत्ति, हिन्दी के समान ही नयी कविता कहलाती है। हिंदी और गुजराती 'नयी कविता के तुलनात्मक विश्लेषण के लिए यह आवश्यक है कि दोनो की पृष्ठभूमि म विद्यमान परम्पराओं का अध्ययन किया जाए।

---

१ नामवरसिंह आधुनिक साहित्य की प्रवत्तियाँ, पृ० १०३।

२ नयी कविता अक ५ ६, पृ० ६०।

३ डॉ० दवीशकर अवस्थी आलोचना और आलोचना, पृ० ११५।

गुजराती साहित्य में 'आधुनिकता' का समावेश दयाराम की मृत्यु (सन् १८५२) के बाद होना आरम्भ हुआ, जब भक्तिधारा का आवेग कम हो गया था। पश्चिम से प्रभावित होते हुए समाज में दो व्यक्तित्व ऐसे उभरे जिन पर काव्य निर्माण का दायित्व था। दलपतराम और नर्मद, इस समय की दो प्रतिकूल धाराओं के प्रतीक हैं। प्राचीन और नवीन दोनों को स्वीकार करनेवाले दलपतराम ने काव्य को जहाँ मनोरंजन के आचरण के उपदेश का माध्यम माना, वहाँ नर्मद ने प्राचीन का पूर्णत खण्डन किया और ब्रह्म व ईश्वर से अलग इस धरती की वास्तविकता और स्वानुभूत प्रणय को प्रथम बार काव्य का विषय बनाया किन्तु यह खण्डनात्मक प्रवृत्ति अधिक पनप नहीं सकी और यह स्पष्ट हो चुका था कि सनातन धर्म का उच्छेदन अनावश्यक है। नर्मद की नवीनप्रियता अपने अन्तिम दिनों में प्राचीन का संरक्षण देने लगी थी—

'सांसारिक अर्थ कामना में तुम्हारा कल्याण नहीं है प्रवृत्ति की अशान्ति में नहीं है बस निवृत्ति की शान्ति में ही परम कल्याण है।'[1]

नर्मद की अतिमुखर आत्मलक्षिता और दलपतराम की मनोरंजक चातुर्यप्रियता का मिला जुला रूप नवलराम की कविताओं में मिलता है। विषय की दृष्टि से इस समय क्रान्तियाँ अवश्य हो रही थीं किन्तु इनकी सीमा वैयक्तिक प्रणयानुभूति और संसार के नव निर्माण तक ही सीमित थी।

इस युग का एक विधायक तत्त्व उस पर अंग्रेजी संस्कृत और ब्रजभाषा का प्रभाव है, इसी के साथ ही काव्य शिल्प के क्षेत्र में जो परिवर्तन इस समय हुए आगामी कविता की रूप विधि के निर्माण में उनका महत्त्वपूर्ण योग रहा है। एक छन्द और लावनी व सवैया के संयोजन से बने मेघ छन्द की सृष्टि इस समय हुई थी। मेघ छन्द में नवलराम ने कालिदास के 'मेघदूत' का अनुवाद किया है। बदलती हुई मान्यताओं के साथ इस समय कविता के प्रति कवि का दृष्टिकोण भी परिवर्तित हो रहा था—

'शब्दों में ध्वनि कविता नहीं राग है। कविता तो अर्थ में रहती है। जो अर्थ हमारे मन में बिम्ब उपस्थित कर हर प्रकार से प्रभावित करते हैं वही कविता है प्रकृति अथवा माया के स्वरूप का पूर्ण चित्र ही कविता है।'[2]

यह आरंभिक युग, जो गुजराती कविता में सुधारक युग कहलाता है आनेवाली कविताओं के लिए भूमि का निर्माण कर रहा था और उसे चमत्कार से हटाकर जीवन के समीप लाने के लिए सजग था।

सुधार की यह प्रवृत्ति सन १८८६ तक प्रबल रही जिस बीच विश्वविद्यालयों से शिक्षा प्राप्त युवक वर्ग अपनी संस्कृति से गहरा परिचय पा चुका था और पूर्व और पश्चिम संस्कृतियों के समन्वय की भावना की पुष्टि कर रहा था।

समन्वय (सन १८८६ १९१४)

जीवन के हृदयस्पर्शी क्षणों को काव्यबद्ध करने वाली प्रवृत्ति के उदय के साथ ही,

१ गद्य विभाग नर्मद का मंदिर, पृ० ५२४ २५।
२ न० परीख नवल ग्रंथावलि, पृ० १८५ ८६।

सुधार का क्रियात्मक रूप विचारात्मक रूप मात्र रह गया था। क्रियापरायण नेताओं के बढ़ते हुए पुरुषार्थों के कारण कविता सूक्ष्म विचार क्षेत्र का विषय अधिक होती जा रही थी।

इस समय की कविताओं में नैतिकता का हर आवरण भेद कर एक मुखर कवि मन जाग उठा था जो जीवन के सत्यों का यथातथ्य रूप में स्वीकार करता था। मणिलाल बाला-शंकर और कलापी की रचनाओं में प्रणय की जैसी ददभरी सिहरन मिलती है वह जीवन का चरम लक्ष्य पाने की पीड़ा है।

प्रकृति और मनुष्य के बीच का अंतर कम हो गया था। सुंदरियों का गरवा विषय में 'हृदय वीणा' में नरसिंह राव ने कहा है 'ऊपरी दृष्टि से देखने पर मनुष्य और प्रकृति दोनों, एक दूसरे से स्वतंत्र असम्बद्ध और पारस्परिक प्रभाव से पृथक् जान पडते हैं किन्तु वास्तव में दोनों में गूढ़ और करीब का सम्बन्ध है। प्रकृति मनुष्य की घटनाओं का मूल है, आत्मा हृदय सभी पर वह अपनी सूक्ष्म छाया डालती है—आज का काव्य यही स्पष्ट करने का प्रयास करता है।'[1]

मध्यकाल का ईश्वर आधुनिक कवि के लिए पिता और मित्र के समान है। ब्रह्म को सत्य और जगत को मिथ्या मानने वाले विचारों का विरोध कर ब्रह्म के साथ जगत की भी सत्यता की स्थापना की गई। जगत मनुष्य का धर्मक्षेत्र है कुरुक्षेत्र है। इससे छूटने का प्रयास करना मानव धर्म नहीं है। परमात्मा समय तत्व है—यह ठीक है, किन्तु पुरुषार्थ तो जीवात्मा का करना है। अतः अपने कर्तव्यों का उत्तरदायित्व परमात्मा पर छोड़ देने से, निष्क्रिय रहने से पूरा नहीं हो सकता। यह समझ कर ही इस युग का कवि परमात्मा से प्रार्थना करता है। परमात्मा भले ही अधर्मोद्धारक सर्वशक्तिमान हो भक्त कदापि अकिं-चन और अन्न नहीं है। यही कई कवियों में भव्य विषयों को ही काव्य में लेने की प्रवृत्ति मिल जाती है। इनकी धर्म और ईश्वर में असाधारण श्रद्धा है। काव्य में भव्य विषयों को लेने की प्रवृत्ति नरसिंह राव में है और वे, 'कविता विषय में नहीं, कवि की दृष्टि में है, उसके रहस्यानुरूप निरूपण में है' इस विचार से सहमत नहीं प्रतीत होते। परिणामतः भव्य विषय भी भव्यता का अनुभव नहीं करा सकते—इनकी कविता के संकुचित विषयफलक में ही बँधे रह जाते हैं।

ईश्वर के प्रति यह दृष्टि परिवर्तन शिक्षा के प्रसार द्वारा पाश्चात्य तत्वदर्शन और क्रिस्तान धर्म भावना व वेदान्त के प्रभाव के कारण हुआ। प्रारंभवादी व्यक्ति पुरुषार्थी हो गया और चमत्कार अंधविश्वासों पर से उसकी श्रद्धा उठ गई थी।

इस समय के कवि को प्राचीन संस्कृति के प्रति मोह भी है और उज्ज्वल भावना के प्रति श्रद्धा भी। न्हानालाल की प्रसिद्ध कविता पितृ तर्पण में बरगद की छाया के समान हर किसी का संताप हरने वाले हृदय में हिमालय का तप और अंतर में देवी ज्ञान की

---

१ "उपर उपर बोना मनुष्य अने प्रकृति ओ बे एकबीजा थी स्वतंत्र असम्बद्ध अेक ना बीजा उपर काई असर नहि होवा जणाय छे, परन्तु वास्तविक रीते बोन ओ बन्ने गूढ़ अने निकट सम्बन्ध मा जोडायोलां छे प्रकृति मनुष्य नी सब घटना नु मूल छे।" अर्वाचीन काव्य साहित्य ना वहणो रामनारायण पाठक पृष्ठ १२१।

दीपमाला जलाने वाले, प्राचीन के प्रति विद्रोही का आत्मभान, और पश्चात्ताप का उल्लेख है जिसमें कवि के हृदय की समस्त विद्रोहजनित भावनाएं श्रद्धा के पावन स्वरूप में परिणत हो जाती हैं—

छाया तो वडला जेवी, मवि ता नह ना राम
देवोना धाम न जवू हेडू जाणे हिमालय
बुद्धि वमव ग्रने मास्या श्राणा रस उदारता
मे देवी दीपमालाना ग्रतरे तेज राजता[१]

समन्वय युग में न्हानालाल का व्यक्तित्व अत्यन्त सबल है। मैथ्यू आर्नल्ड की भांति न्हानालाल भी साहित्य को जीवन की आलोचना मानते हैं। ये भावना के कवि हैं। उनकी साहित्यिक देन का उल्लेख करते हुए जयंत पाठक ने कहा है— "ऐसी मर्यादाएं प्रेमानन्द के बाद न्हानालाल को ही महान कवि बनाती हैं। लगभग आधी शताब्दी तक छाई इनके द्वारा प्रचलित काव्य विधाएँ गुजराती कविता को समृद्ध करती रही। गुजरात का सौन्दर्य उसकी रुपाली बावडिया इसकी ग्रमराइया से उठती मोर और कोयल की पुकार, इसके पवन और इसका विस्तृत अशांत सागर—सबको स्वतंत्र व्यक्तित्व दे न्हानालाल ने काव्य में ग्रमर कर लिया है। इन्हाने 'विलास की सीमा' क्षमा करने वाला और 'केसर मीना व्रत' जैसी भावमयी और रसात्मक कविताएँ राजराजेन्द्र जाज को 'गुजरात का तपस्वी' और 'पितृतर्पण' जैसी श्रद्धांजलिया, 'प्राणेश्वरी' और 'कुलयोगिनी' सी प्रेममयी रचनाओं के साथ ही 'जयाजयन्त' आदि भावनात्मक नाटकों की सर्जना की है। न्हानालाल के नाम और अनेक ऐतिहासिक और पौराणिक विषयों पर आधृत रचनाएँ भी हैं, जिनमें 'हरिसंहिता' गुजराती साहित्य के लिए अविस्मरणीय है।

न्हानालाल के सर्वव्यापी व्यक्तित्व के साथ ही तत्कालीन गीति परम्परा से हट कर कविता करने वाले कान्त का भी उदय हुआ। केवल कांत ने ही सहदेव की विषम परिस्थिति पर 'अभिमान' पाण्डु की मृत्यु पर 'वसन्त विजय' आदि कथानकों का एक नया प्रकार आरंभ किया। कांत की कविता का सुस्पष्ट शिल्प और भाषा व छन्द का निर्दोष सौन्दर्य तुरन्त मन पर छा जाता है उनकी कला जीवन की अतल करुणता में भी सहज प्रवेश करती है।"[२]

प्रत्येक युग का अपना सामाजिक संदर्भ होता है। कवि भी मननशील व्यक्ति होने के कारण अपने आसपास होने वाले परिवर्तनों, आंदोलनों और बदलती हुई युगचेतना के प्रति सचेत रहता है। सन १९२० तक काव्य में जिन सुधारों की प्रमुखता है, वे केवल सामाजिक सुधार नहीं हैं। प्राचीन गीतों के साथ शौर्य और स्वतंत्रता के काव्यों का नवीन रूप इसी समय विकसित हुआ। राष्ट्रवादी कविता का वास्तविक आरंभ इसी युग में होता है। ऐसा नहीं है कि पहले देश के लिए प्रेम नहीं था, पर उस ममता का अधिकारी देश का स्वामी होता था। देश की महानता उसके शासक अथवा स्वामी पर नहीं अपितु उसकी जनता पर

१ बलवन्त ठाकोर 'आपणी कविता समृद्धि' पृष्ठ ५१।
२ 'आनन्द' कविता अंक वर्ष, १९५३ पृष्ठ ५३।

निभर करती है इस तथ्य को इसी युग म स्वीकार किया गया था । एक प्रकार से कहा जाए तो इस युग मे रचित महत्वपूण साहित्यिक कृतियो की भूमिका देश प्रेम ही है ।

गुजराती के साथ ही कुछ पारसी कविया ने पारसी गुजराती म काव्य रचना कर गुजराती साहित्य को समृद्ध करने मे योग दिया है । अंग्रेजी काव्य के विशिष्ट लक्षणो से युक्त गुजराती कविता की रचना इन्ही कविया द्वारा हुई है जिनमे प्राय प्रकति और देश प्रेम को विषय बनाया गया है । किन्तु भारतीय सस्कृति से विशेष परिचय न होने के कारण इनकी रचनाएँ अन्य सामयिक कवियो की तुलना म निस्तेज लगती हैं । कालान्तर मे इन कवियो का आग्रह शुद्ध गुजराती की ओर होने पर गुजराती कविता को मलबारी और रुस्तम दार जसे कवि मिले ।

शिल्प के क्षेत्र मे एक ओर बालाशकर मणिलाल और कलापी की फारसी से प्रभावित गजल शली मे लिखी रचनाए मिलती हैं, दूसरी ओर खण्डकाव्यो के क्षेत्र मे कात ने विशेष योगदान दिया है । जिस समय गीति काव्यो को ही उत्तम माना जा रहा था और नरसिंह राव, रमणभाई आदि काव्य रसिक कविता के पक्षपातियो मे प्रमुख थे उस समय कात का परलक्षी और चिंतन प्रधान कविताओ की रचना करना उनकी प्रतिभा की मौलिकता का द्योतक है । स्पष्ट काव्य सौष्ठव, शब्द और अथ का पूण सामजस्य, भाषा और भाव का अतुल्य माधुय और चारुत्व कात की कविता को गुजरात के तत्कालीन और सवकालीन मुख्य कविया मे स्थान दे देती है । भावो और विचार के उतार चढाव के अनुसार ही विवेक-पूवक वत्तो का प्रयोग किया गया है । मराठी के 'अजनी' छन्द का सवप्रथम प्रयोग कात ने किया जिसमे अनेक करुण और गभीर कृतियो की रचना हुई ।

गीतिकाव्यो मे पहली अंग्रेजी धारा से प्रभावित कति नरसिंह राव की 'कुसुममाला' है । इसमे प्रकृति के माध्यम से परमात्मा तक पहुँचने का प्रयास है । विषय की नीरसता को ही लक्ष्य कर सभवत मणिलाल नभुभाई ने 'कुसुममाला' को 'रूप रस गधहीन' कहा है ।

काव्य विकास म न्हानालाल का आगमन एक महत्वपूण कदम है । इनकी कविताओ मे जीवन का प्रतिबिम्ब जितना स्पष्ट है उतना शायद ही किसी अन्य कवि की रचनाओ म होगा । अभिव्यक्ति क्षेत्र म इनका अपद्यागद्य का प्रयोग और डोलन शली का शोध है । डोलन शली के प्रारभ के मूल मे महाछन्द के शोध का प्रयास है 'मन म स्फुरित रस का सचालन गेय अपना छन्दबद्ध नहा है अत गेयत्व ही कविता का लक्षण नही बन सकता वाणी की लय (डोलन), देह के सौन्दय म उतर कर हृदय की धडकन म समा कविता के साथ ही अभिव्यक्त होनी है सौन्य और कला का नियम अप्रमाणता का है, एक ही अग की पुनरुक्ति का नही ।[1]

इन कवियो पर पश्चिम के कवियो का प्रभाव है । उदाहरणत न्हानालाल ने अपनी रचना पर गोवधनराम, टेनीसन, वक और शैली का प्रभाव स्वीकार किया है । उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि दलपत के काव्य ने मुझे उसी प्रकार प्रेरणा दी है जसे 'दि हाई मोरल पेपस' के द्वारा मिल्टन ने बाद म टेनीसन को दी ।"[2]

१ साहित्य मथन पृ० ३४।
२ रामनारायण पाठक आधुनिक कविता प्रवाह, पृ० २१।

इस समय की कविता में अनुवाद की प्रवृत्ति का भी विकास मिलता है। नरसिंहराव की 'स्मरण संहिता' उनकी प्रतिभा का पूर्ण परिचय देती है। पुत्र की मृत्यु से संत्रस्त कवि हृदय की प्रतिक्रियाओं पर आधृत यह रचना टेनीसन की इन मेमोरियम का छायानुवाद सी प्रतीत होने पर भी, अपने वास्तविक और आंतरिक क्षोभ से प्रकट होने के कारण मौलिक ही आभासित होती है। यह कृति गुजराती साहित्य के उत्तम शोक गीतों में स्थान रखती है। नरसिंहराव की अनुकरणप्रियता ने गुजराती को जो अनुवाद दिए हैं उनमें एडविन आर्नल्ड रचित दि लाइट आफ एशिया पर आधृत बुद्धचरित उल्लेखनीय है।

इन तमाम आन्दोलनों के साथ दृष्टिगत होने वाली एकरसता और समरूपता का नाश सन् १९१४ में हुए प्रथम विश्वयुद्ध ने किया। परिणामतः धरती का नक्शा ही बदल गया, जीवन के प्रति दृष्टिकोण बदल गया और मानव स्वातन्त्र्य और व्यक्ति स्वातन्त्र्य का एक नवीन युग आया। इस अव्यवस्था में व्यवस्था की आशा लिए सन् १९१५ में गांधी जी दक्षिण अफ्रीका से लौट आए। असहयोग आंदोलन की एक लहर सी भारत भर में दौड़ गई, कल्पना के पर अब तक धरती पर आ चुके थे और जीवन से उसका सम्पर्क अधिक घनिष्ठ हो गया था। प्रयोगशीलता और साहसवृत्ति का जीवन में महत्त्व देने वाले तत्त्वों के आगमन के साथ ही साहित्य का वह महत्त्वपूर्ण युग आरम्भ हुआ जिसे गांधीयुग कहा जाता है। किंतु पंडित युग और गांधी युग के मध्य एक संक्रांति काल भी था जिसमें इन दोनों युगों के मूल्यों के मिलन और संघर्ष का चित्रण है। इस समय का ऐतिहासिक काव्य बलवंतराय ठाकोर का मकरंद है। अपने पहले की भावना भक्ति भीनी और सौंदर्य गान करती कविता का कुछ ही अंश प्रत्याघात रूप में प्रो० ठाकोर की ठोस (विचार प्रधान) यथार्थ और अभिव्यक्ति में विलक्षण रचनाओं में प्रकट होती है जो कालांतर में इसी शताब्दी के चौथे दशक में अनुसरण का विषय बनी। ठाकोर के अनुसार अर्थ प्रधान परलक्षी कविताएँ ही द्विजोत्तम जाति की कविताएँ होती हैं—

'कृति मा तमारा व्यक्तित्व नी छाया जेम ओछी रहे तेम तमारी कला वधारे विजयी क्षणिक प्रसंग पण भले आलेखो, तुच्छ मनाता विषय उपर पण भले लखो। परंतु पलु खाबोचियु गगन नु प्रतिबिम्ब बनी रहे छे, एज कल्पना कीमिया नो खरो आदर्श छे तुच्छ लघु के सखा क्षणिक ना निरूप मा अनंतता अने अजवता साथे साथ जीवे बतावे तेज कल्पना नेत्र नवु संगीन बने विगत, विगत संगीन अने नवु उपजावे ते साहसिक सौन्दर्य सेवक ज कवि।'[1]

अर्थात् कृति में तुम्हारी अपनी छाया जितनी कम रहे तुम्हारी कला उतनी ही विजयी होगी। भले ही क्षणिक प्रसंगों का उल्लेख करो अथवा तुच्छ विषय पर लिखो। जो नवीन और यथार्थ लिखता हो वही साहसिक कवि है। कवि हृदय के एकांतिक भावों का गान करने वाले आत्मलक्षी कविता को महान कविता नहीं मानते। प्रकृति और संस्कृति को देश और काल की दृष्टि से तीसरे नेत्र से देखे सौन्दर्य के वेश में उसका चित्रण करे, वही उनकी दृष्टि में सच्चा कवि है—

१ बलवन्तराय ठाकोर आपणी कविता समृद्धि, पृ० ३२ ३३।

न वस्तु कदी शोक काव्यतणु आत्म चितातरे,
विशाल जनता विलोक, ममता थी सम्मान थी
विसार निज रूप शोक, भुली जा उपाधि मथी।
वधा सुर मिलावजे मनुज चित्त सारगी ना,
रखे विसरता क्षणे भजन एक सौंदय नु।[1]

ठाकोर के साथ के अन्य कवियो म कविता के प्रति एसा भक्तिभाव और कला के सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रयपवा की ओर ऐसा विवेक नहीं मिलता है। अपनी अभिनव काव्य दृष्टि के कारण ठाकोर के ये मत गुजराती कविता में महत्त्वपूण स्थान बनाए हुए हैं।

पहली दृष्टि से देखने पर ठाकोर के काव्य म प्रकृति की ओर उपेक्षा दिखाई देती है, किंतु मानव भाव का पोषण करने वाली और उद्धार करने वाली प्रकृति का जसा वस्तुनिष्ठ और चित्रात्मक आलेखन ठाकोर के काव्य मे मिलता है, वैसा अन्य कही मिलना कठिन है।

ठाकोर की काव्य भावना और उच्च कलाग्रह काव्यरुचि को गढ़ने म साधक हुआ है। पथ्वी और अन्य सस्कृत छन्दा के आधार पर वत्तो का सृजन कर पद्य लेखन को कई दिशाए ठाकोर ने ही दी। ठाकोर का काव्य को सबसे बडा दान उसे जडता और परम्परा से मुक्त करना है। उन्होने आने वाले कवियो के लिए एक विशाल विषय क्षेत्र निर्मित किया था।

कविता और गांधीवाद

सन १९२० से ३० तक काव्य क्षेत्र म कोई विशेष प्रयोग नही हुआ। शेष, मेघाणी, चन्द्रवदन मेहता आदि के काव्या म कालान्तर म पडित युग और आने वाले युग के लक्षण सम्मिलित हो गए थे। कविता म, अब तक, अगेयता अथप्रधानता, और चिन्तनात्मकता का प्रसार होने लगा था। गाधी जी के प्रभाव स आने वाली जागति का स्वर कविता म सुनाई देने लगा। लोकजीवन और लोकसाहित्य के प्रति कवि जागरूक हुआ और काव्य की प्रेरणा जनसाधारण का जीवन बन गया। मेघाणी और सुन्दरम की रचनाओ मे अब तक समाज द्वारा तिरस्कृत 'नीच स्तर' के लोगो के सुख दु ख तथा उनके प्रश्नो को विषय बनाया गया है।

कविता म परिवतन सन् १९२६ के बाद आया। राष्ट्रीय चेतना की लहरो के ऊपर कवि उठ रहे थे। भावना और आदशवादिता की एक उमग सी जगी थी। पिछले दशक के अकुर इस समय की कविता म पूण रूप से विकसित हो चुके थे। इस समय नई कविता और जनता के बीच का अन्तर कम हो गया। एक ओर काव्य को ठाकोर न दिशा दी और राजनतिक क्षेत्र म स्वातन्त्र्य की चिंगारी फलाने वाले गाधी जी ने जीवन के अन्य क्षेत्र खोल दिए। श्री उमाशकर जोशी के अनुसार, "दो भिन्न भिन्न क्षेत्रो के व्यक्तियो से आज की कविता की देह और आत्मा को पोषण मिला। आज की कविता का रूप सुधारने का श्रेय प्रयोगशील कवि प्रो० ठाकोर को है और कविता मे प्राणसचार हुआ गाधी जी की सवतोमुखी प्रवृत्तियो के

---

[1] प्रो० बलवन्तराव ठाकोर कवि नु कतव्य।

प्रताप से। दोनों प्रवृत्तियों का साथ गुजराती कविता के गद्यभाग में एक ही समय प्रकट हुआ। एक ने जीवन के अर्थ-व्यापार पर आघात किया दूसरे ने काव्य में शब्दों के आडम्बर पर वज्र प्रहार किया। एक ने जीवन की और भावना की वास्तविकता के लिए विद्रोह किया दूसरे ने कविता में विषय और विचार की नवीनता को लाने पर जोर दिया। एक ने जीवन में दया के बदले न्याय की प्रतिष्ठा के लिए तमन्ना जगाई दूसरे ने कविता में जो पण्डितों की बोलचाल की हानि थी उसके स्थान पर चिरजीव शब्द की मांग की।[1]

महात्मा गांधी द्वारा निर्दिष्ट विचारों का समावेश इस समय की रचनाओं में स्पष्ट है। ये कवि केवल बात करने में विश्वास नहीं रखते अपितु उसे व्यवहार रूप भी देते हैं। मानव जीवन से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए गांव-गांव जाकर ज्ञान का प्रसार करना और गांधी जी के असहयोग आन्दोलन में भाग लेकर दण्ड पाना भी इनका लक्ष्य रहा है। मानव जीवन के प्रति इनकी बहुत आस्था है। गांधी जी की व्यापक धर्म भावना का अनुकरण और मानव मात्र के प्रति सम्मान और सेवा भाव रखना इन कवियों का मूल मन्त्र है।

देश में व्याप्त आन्दोलनों ने कविता में स्वातन्त्र्य भावना भरी है। गांधी जी के नेतृत्व के कारण सत्य और अहिंसा का आदर्श इस समय के समस्त साहित्य में पृष्ठभूमि रूप में मिल जाता है। सागर की एक-दूसरे पर चढ़ती आती लहरों के समान जनता में मर मिटने का उत्साह सुन्दरम् की काव्य मालाओं में स्पष्ट होता है—

> वीणा ना गान थभे निज निज व्यवहारो तजी विश्व देश
> भाग्या आश्चर्यघेरी समय गतिनय, निंदा ज विराम
> सूतेला आज जागे नयन थी निरखी जागता सोर दोडे,
> दोडेला त्यां झूमे अडग मरण त्यां झूमता सिद्धि पाम।[2]

वीणा चुप हो गई और तन्द्रा भंग होने पर लोग बलि होने के लिए अडिग हैं—जब तक उन्हें सिद्धि न मिल जाए। समस्त विश्व बलिदानियों की यह भावना देखकर चकित है। पूरा देश एक बंधन में परिणत हो गया था। जलियांवाला बाग बारदोली आदि की बीभत्स घटनाओं ने जनता और गांधी जी दोनों का ही विश्वास ब्रिटिश सरकार से तोड़ दिया था। दासता की यातना और स्वातन्त्र्य के प्रति उत्साह का स्वर कवियों में सुनाई देता है। 'मृत्यु नो यात्री' जैसी कविता में भावोद्रेक और हृदयस्पर्शी प्रसंगों का चित्रण किया गया है। कई पत्नियों के स्वामीहीन होने पर ही जन्मभूमि का बंधन टूट सकेगा—

> 'अर्चिता गांधी ना मुख थी राष्ट्र नुं सरो पन्था
> अनायासे, बाई! तुम सम कई हिन्द रमणी
> थय स्वामीहीणी, जननी जन्मभूमि त्यारे ज छूटश।'[3]

गांधी जी के प्रयत्नों ने जनता के व्यामोह को दूर कर दिया था। अंग्रेज राज्य को सुखों का भण्डार मानने वाले व्यक्ति मोहनिद्रा से जाग उठे थे और विदेशी सरकार का साथ

---

१ 'आजकल' कविता विशेषांक, वर्ष १९५३, पृष्ठ ४४।
२ सुन्दरम् काव्य मंगला, पृष्ठ २७।
३ उमाशंकर जोशी गंगोत्री, पृष्ठ १२४।

न देने का सकल्प कर चुके थे। राष्ट्रीयता प्रात और देश की सीमा पार कर मानवतावाद और विश्वबधुत्व का पर्याय हो गई थी। कवि की वाणी जनमानस मे छिपी पृथ्वी का भार वहन करने की शक्ति का आह्वान करती है—

'कगाल तू ? कोण कहे ? समृद्धि
प्रसुप्त तारे उर सप्त सिंधु नी
न पगु तु, दुबल ना, न हीन
पृथ्वी तणी धारणा शक्ति ने वडो
हिमाचलो नी अचलाकृति य
त्हारे पिडे। हा! उठ कालमदेन।'[१]

अहिंसा के प्रभाव वश काव्य म 'बुद्ध' को महत्त्व मिला, प्राचीन को नवीन दृष्टि से देखने का प्रयास यहा स्पष्ट हो जाता है। सुन्दरम की त्रिमूर्ति और 'बुद्ध ना चक्षु, उमाशकर जोशी का 'वारणे धारणे वद्ध' और 'बुद्ध और आनद' और रामनारायण पाठक की 'कुशीनार' इस विषय की मुख्य रचनाए हैं।

आदश और यथाथ दोना साथ-साथ विकसित हो रहे थे। ठाकोर द्वारा प्रवर्तित खिलाना, सजक कवि और लोकप्रियता', 'निद्रा के प्रति', प्लैटानिक लव, 'वन्दा नी लोरी' (मेरी बकवास) आदि विषयों का प्रसार सुन्दरम् उमाशकर, वेदाई आदि के काव्यो मे हुआ जिन्होंने टूटी चप्पल', 'दीवार की छिपकली', 'बूटपालिश वाला आदि पर रचनाएँ की। आरम्भ मे केवल नवीनता के लिए ही नवीनता की उपासना हो रही थी जो स्वाभाविक ही था। जीवन की जो नवीनता और ताजगी दिखाई देती है दलित और दीनो के प्रति जो सवेदना और सहानुभूति उमड रही थी उनके प्रति ध्यान जाना अनिवाय ही था। परमात्मा, प्रकृति और प्रेम, कविता के सनातन विषय हैं किन्तु इस समय का कवि, गीताजलि के प्रभाव के कारण परमात्मा स ऐहिक वस्तुओ क स्थान पर पौरुष, पाप से प्राण और पराक्रम करने की सामथ्य मागने लगता था। मनुष्य सत और असत को पहचानता ता है पर असत से अपनी शक्ति की मर्यादा को नही बचा सकता—

माणस सत असत समजी शके छे छता पोतानी शक्ति नी मर्यादा ने लीधे असत थी बची सकतो नथी, अेटले जीवन ना तुमुल तोफान मा ते ईश्वर पासे थी शक्ति माग छे। आम थवा मा पणीधार अपणां नवा काव्योन एक आगल पडतु लक्षण चिन्तन ते पण जणाय छे।'[२]

ईश्वर सम्बन्धी विचारो के साथ मत्यु सम्बन्धी विचारो का जीवन्त चित्रण हुआ है। ईश्वर की नवीन भव्य कल्पना से मत्यु के अनिष्टकारी होने का विचार नष्ट हो गया। मत्यु नवजीवन का प्रवेश द्वार है। कलापी की व्हाली बहेन बाबाने म यह भावना पहली बार मिलती है। मत्यु के प्रति हमारी दृष्टि बदली और जगत का दुख का आघात निरथक नही लगा—

---

१ पोनाशरदास सोनी आपणी कविता समृद्धि उदबोधन पृष्ठ ६२।
२ रामनारायण पाठक अर्वाचीन काव्य साहित्य ना वहेणो, पृष्ठ ११५।

'गुणडो तरतो रे डो छे
दु खडो पाछण र ऊडा छे
माजी ना ऊडा ग्डा सदेग
दु ख सुख माव रे ते रहेजो ॥'[1]

संसार के अन्याय और पाप मिटाने के लिए केवल प्रलय ही पर्याप्त है—

'छुटे मवी गुरु अनल सरसा विन्य परता
फरे झभायनो फरी फरी वपुये जग सीझे
छूटे ए वायु तो हृन्य भरमा दाह दमना
निसा सामाधीय प्रलय पूर ता एक ग्रह ज ।'[2]

यही प्रकृति और मनुष्य म चले आ रहे अब तक के विरोधो का निराकरण हो जाता है। प्रकृति मुक्त है स्वतन्त्र है सुखी है। उसकी तुलना मे मनुष्य अपना बन्धनग्रस्त और दु खी है। किन्तु यह सत्य, कि व्यक्ति के जीवन की पीडा प्रकृति को बेसुरा बनाती है मिट गया। इस समय की काव्य रचनाओ म मानव और प्रकृति के पारस्परिक सम्बन्ध पर बल मिलता है।

बदलते हुए काव्य विषयो के लिए श्री रामनारायण पाठक का कथन है, काव्य म दाम्पत्य प्रेम के स्थूल भोगो का वणन निकल गया। सूक्ष्म सौन्दर्य बोध की दृष्टि ही प्रधानता पाने लगी। दूसरी ओर पारस्परिक मान्य और परिपक्व मत्री स जन्मी समानता की भावना भी काव्यो म प्रकट हुई।[3]

संक्षेप म यह कविता सवतोमुखी है। इसने समस्त ससार को अपने आश्रय म ले लिया है और उसके श्रेष्ठतम तत्वो को प्राप्त करने उसके गूढतम सौन्दर्य और रस को अधिगत करने का प्रयत्न किया है।

साम्यवाद और कविता

गाधीवादी विचारधारा के समानान्तर ही साम्यवाद भी कविता म स्थान पा रहा था। विभिन्न आन्दोलनो के दौरान लेनिन मार्क्स के प्रभाव मे आए और जीवन को समझने का एक नया दृष्टिकोण उन्ह मिला। मार्क्सवादी समाजशास्त्री का यह लक्ष्य है कि वह विश्व सस्कृति की समग्र प्रगति के इतिहास मे श्रमजीवी क्राति और समाजवादी विचारधारा की ओर प्रगति करने वाले जनान्दोलन के विकास क्रम को खोज निकाले, जो दबे पिसे वर्गों के जीवन की परिस्थितियो को प्रतिबिम्बित करता है साथ ही सस्कृति के उन समस्त प्रगतिशील और जनवादी तत्वो से प्रतिक्रियावादी तत्वो को अलग करता है।[4]

गाधी जी के सत्य और अहिंसा के सिद्धातो को स्वीकार करते हुए मानव के लिए न्याय और समानता के प्रति भी कवि का आग्रह बना। परिणाम यह हुआ कि समाजवादी

१ रामनारायण पाठक अर्वाचीन काव्य साहित्य ना वहेणो, पृष्ठ ११६।
२ चन्द्रवदन मेहता विसर्जन।
३ मनसुखलाल झवेरी नयो कविता पृष्ठ ७।
४ डॉ० रघुवश साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य, पृष्ठ ५५।

भावना को व्यक्त करने वाली कविता में, क्रांति का पोषण करने वाली कविता में भी सत्य और अहिंसा की प्रतिष्ठा की गई है। मध्यकालीन काव्य में जो स्थान ईश्वर का था वह मनुष्य को मिल गया। मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ है, उससे परे कोई और शक्ति नहीं है।

इसी विचारधारा के उन्मेष रूप में इस दशक में प्रगतिशील साहित्य का आंदोलन आरंभ हुआ। ग्रासर स्ट्रीट, लंदन में १९३५ में रोपे गए प्रगतिवाद के बीज १९४५ में भारत में विकसित हुए। इस प्रवृत्ति का बल लगभग पांच वर्षों तक रहा।

जो प्राचीन है और सड़ गया है और उसे तोड़ फेंकना पुरुषार्थ है, दूसरी ओर उच्च सिद्धांतों और आदर्शों की जीवन में स्थापना भी पुरुषार्थ है। अपनी जनता के सुख-दुःख, दरिद्रता, अंधविश्वास आदि के प्रति इन कवियों की दृष्टि सहानुभूति पूर्ण है। औद्योगिक क्रांति के कारण उजड़ते हुए गांव, बसते हुए शहर अनिष्ट का कारण हैं, शोषण का मूल है। व्यक्ति के बीच कितनी खाइयां खुद गई है यह महलों की छाया में बनी झोंपड़ियां बता देती हैं—

'अमदावाद ना शहर मां भाई
शेठिया लोक नी मंडली भाई सो सो मिल चलावे,
भारत केरा गामडा मां भाई
राम ना राज मां माणस ने भाई चीथरं हाथ न आवे।'[1]

सुन्दरम् की कविता '१३७ की लोकल' निर्धनता का प्रतीक है। इस कविता के माध्यम से उन्होंने इस युग की विषमताओं का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है।

अत्याचार पीड़ित व्यक्ति जब धर्म और ईश्वर को जाने बिना उनकी दुहाई देता है, अपनी परिस्थितियों के लिए ईश्वर को दोषी ठहराता है—इसे देखकर कवि ईश्वर को विदा कर देने पर तुल जाता है—

'हवे हरि वैकुण्ठ जाओ रे
देशे देश तने दीधी जकारो
आहा काए न उठाडयो
रडियाए, टर्वीए हाकी काढयो तने
पपाडी हिंदे सुवाड्या।'[2]

मूर्तिपूजा पर से कवि की आस्था उठ गई है—इस सीमा तक कि ईश्वर केवल रनिवासों तक सीमित रह गया है। राम के मंदिर में बजने वाले घण्टे सेठ के महल की प्रसन्नता पर ही जैसे बजते हैं—

'शेठ इस बेठा आठमे माले, राम रमे रणवास
राम ने मंदिर झालर वाजे, शेठ ने महल हुलास,
माकोर नी मूरछाटाणे रे, धणी ना मोत ना गाजे रे
मोकाला एक बाग कडेडे निसास।'[3]

---

१ सुन्दरम् कोया भगत ना कन्वा वाणी पृष्ठ ७७।
२ वही, पृष्ठ १०।
३ सुन्दरम् अर्घ्य पानेसी।

समाज में शोषित वर्ग की हीनता स्वाभाविक नहीं है, वह बाह्य परिस्थिति का परिणाम है। उनके प्रति समाज ने अन्याय किया है—यह मानने वाले व्यक्तियों में मूल घृणा का प्रत्याघात इस सीमा तक पहुँचा है कि सौंदर्य रसिकता भी अन्यायी और मनुष्य में अनुभूति के अभाव के लक्षण रूप में आई है—

घरती ने पटे पगले पगले
मूठी धान बिना नाना बाल मरे
प्रभु हीन आकाशे घी आग झरे।'[1]

पहले प्रकृति और मानव में गूढ सम्बन्ध माना गया था, पर दिव्य और गूढ का सम्बन्ध कहाँ तक हो सकता है। क्या यहाँ तक जहाँ आकाश भी प्रभुहीन है? किन्तु इस अविश्वास और अनास्था में ईश्वर का नहीं जीवन के दंभ, असत्य और मिथ्या का हुंकार है। ईश्वर से विदा लेने को कहने का तात्पर्य मनुष्य की हार्दिक दुर्बलता से है। सुन्दरम् ने स्वयं स्वीकार किया है कि— "कोया भगते भगवान ने अने भक्तो ने, तथा जेन जन वाणी समझावी छे ते बधाने माटे अेने प्रेम छे, पण अने परती माणस अने भगवान बधा ने माटे अेने माया छे वाणी तो खीजवायला जीवन ना उक्डाट जवी छे सत चित आनन्द नो रस्तो थयो तो साफ साफ कही छे के आ तो खरु नथी ज, साचु वधु अेनी बात पछी, आ नरो आखें ऊघु देखाए छे तेटलु तो जोई लो।"[2]

मानवता के प्रति प्रेम व्यवहार की दृष्टि से व्यक्ति के प्रति प्रेम और दलितों के प्रति सहानुभूति में अभिव्यक्त होता है। हर प्रकार की यथार्थप्रियता, अनगढ़ और भेदभाव के प्रति आग्रह के उपरान्त भी यह कविता कुछ सीमा तक रोमानी है। प्रणय क्षेत्र में असफल होने पर भी प्रेमी अपनी प्रेयसी का ऋणी है क्योंकि व्यक्ति में निहित उसकी चेतना समष्टि में व्याप्त हो चुकी है। यहाँ प्रिया केवल भोग्या नहीं है वह शक्ति रूपिणी है। जीवन के प्रत्येक सन्दर्भ में किसी-न-किसी सीमा तक प्रेम का योगदान मानने वाले कवियों में उमाशंकर प्रमुख हैं जिनके काव्य में सुन्दरम की कविता की तरह निराश प्रेम की पीड़ा और अवसाद नहीं है—

"सुन्दरम् नी कविता मा सागर नी भरती ओट ने अेनी क्षुब्धता छे उमाशंकर नी प्रणय कविता मा शान्त ऊंडो सरोवर जल नी प्रसन्नता छे।"[3]

इस युग का वातावरण वीर और करुण के लिए अनुकूल था। इसमें मेघाणी और स्नेहरश्मि का नाम उल्लेखनीय है। मेघाणी की रचनाएं जहां उत्साहित करती हैं वहीं उनमें अन्तर में भीतर पैठ जाने वाला दर्द भी है। एक ओर वे दरिया गहनवन और पहाड़ियों पर चलने को कहते हैं—

मारा कदम दरियाव नी छाती परे
निर्जन रजे, गाढा अरण्य, डुंगरे

1 मेघाणी कवि तने।
2 कोया भगत ना कडवी वाणी—भूमिका, पृष्ठ ६।
3 [illegible] पाठक आधुनिक कविता प्रवाह, पृष्ठ १०६।

पथे भले घन घूघवे के ल ऋरे
आगे कदम। आगे कदम। आगे कदम।[1]

वहीं बढते हुए कदमो को रोक देने के लिए क्रन्दन है सिसकियां हैं—

केसरिया बाधा करी जीवन जुद्ध चडे
रोकणहारु कौण छे। कोण नन रडे।[2]

सपर्यों, क्रान्तियों और कष्टों का माग एक स्वर्ण लोक तक जाता है। उसी सुनहरे देश का सृजन उस समय कवि करना चाहता है, जहां एक नई सुबह सबका समान रूप से स्वागत करेगी, जहां सब बराबर होंगे। निर्बंध, निस्सकोच व्यक्ति अपने समस्त सुख स्वप्नों की पूर्ति देखेगा—

भेते सो एक धन्य दिन
नीरव तारु हृदय बीन,
ऊठते गाजो लज्जाहीन—
(ते) दाद तारें तारे।[3]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद आने वाली सभावित परिस्थितियों के प्रति कवि सचेत है। देश पर आए अनिष्टों और प्रतिकूल वातावरण पर वह इन शब्दों में विचार प्रकट करता है—

आज तो मुज देशे
मारा दश कोटि भाई ब्हेन—
एक रक्त, एक सस्कार वहे जेनी नसे,
ते छे बटा थई विमुख आ मुक्ति प्रति।[4]

मानवतावाद का पोषण करने वाली इस कविता में धर्म और दर्शन का भी प्रमुख स्थान है। साधारण धर्म में प्रयुक्त धर्म का इसमें घोर विरोध है, किन्तु बुद्धि प्रधान मानस धर्म में आ गए अनिष्टकारक तत्वों का निवारण शोधना है।

अरविन्द पुनरुत्थानवादी विचारक थे। प्राचीन भारतीय एकातिक साधनाओं को जीवन का मुख्य ध्येय स्वीकार कर और योरूप की भौतिक उन्नति की प्रवृत्ति को स्वीकार कर उन्होंने समन्वय का प्रयास किया, जिसमें एकातिक साधना के अंश पर अधिक बल दिया गया है।

धर्म के आचार विचारों में कई श्रद्धा को चुके कवि जिनके समक्ष ईश्वर स्वय समस्या बनकर आता है इसमें दीक्षित हो गए हैं। जीवन के अनेक सदर्भों में धर्म और ईश्वर के स्थान को समझने में कविता पर्याप्त चिन्तन प्रधान हो गई थी—इन सबको अरविन्द दर्शन में आश्रय मिला। अरविन्द ने जगत को नकारा नहीं किन्तु उसी रूप में स्वीकार भी नहीं

---

१ मेघाणी युगवन्दना, पृष्ठ ८८।
२ वही, पृष्ठ ३१।
३ स्नेह रश्मि अर्ध्य, पृष्ठ ५।
४, स्नेहरश्मि पनघट, पृष्ठ ८६।

किया। ज्ञान और भक्ति का अपूर्व सम्मिलन इसमें हुआ है। अनास्था और अश्रद्धा के इस युग मे अरविन्द दर्शन ने हताश जीवन को शक्ति प्रदान की।

अरविन्द दर्शन से प्रभावित इन कवियों में ऊर्ध्व जीवन की इच्छा, दिव्य की प्राप्ति के लिए संघर्ष और परमात्मा तत्त्व के लिए आर्त भक्तिभाव ही काव्य का विषय बने हैं। ये कवि केवल काव्य तक ही सीमित नहीं हैं, इस दर्शन को इन्होंने व्यावहारिक जीवन में भी उतारा है। सुन्दरम् एक नव दीक्षित शिष्य के रूप में अपने गुरु की वाणी को इस प्रकार प्रकट करते हैं—

'जे तु चाह छे, पोतानी मनुजता ना आगवी पूजी
अपण करीने, भगवान नो आ प्रकाश मय अमृत लईजा।'[1]

साधक कवि के जीवन में बाहरी और भीतरी दोनों ही शुद्धि आवश्यक है, इस जीवन की समस्त मलिनता का निवारण और पवित्रता की स्थापना आवश्यक है—

सरु सतत दूर दुखद मलातला स्पर्श थी
परास्त करु पाप नाम दलतजा दुरावेग ने[2]

यह भक्तिभाव साम्प्रदायिकता से परे है। किसी विराट तत्त्व के पास पहुँचकर जीवन सफल बनाने की भावना पूजालाल के 'मरजीविया' और 'अभीप्सु यौवन' सानेटों में मिलती है—

हवे हु मदराज, मलन मर्या ननया जोवनो
जुवाड घुघवेत धाऊ, अनिरुद्ध आवेग थी
शिलाखडक तोडतो तरु उखेडतो टेक थी
टटार, पडछद भानु तट-बध ना भोमतो[3]

इस प्रकार इस कविता में गांधीयुग की प्रधान भावनाएँ—दीनों के प्रति प्रेम, साम्यवाद, विश्वबंधुत्व और युद्धविरोध सभी मूर्त हुई हैं। किन्तु उनमें मिश्रण विचित्र वस्तुओं का हुआ है। हरिदर्शन और हरिसंहिता में नानालाल ने जहाँ आधुनिक भक्ति काव्य दिए है, वहाँ पूजालाल और सुन्दरम् अरविन्द की छाया में गहरी आत्माभिव्यक्ति करते हैं। मेघाणी और प्रह्लाद पारीख श्रीधर रवीन्द्र के अगम्यवाद की छाया गुजराती साहित्य में फैलाते हैं। टैगोर की रचनाओं का अनुवाद मेघाणी ने 'रवीन्द्रवीणा' नाम से किया है। वही साम्यवादी बंधु ऐहिकता परिश्रम की महिमा गाते है।

भावपक्ष के क्षेत्र में नए आयाम और नए विषय खोजने वाले इस काव्य में कलापक्ष ने भी क्रान्तिकारी परिवर्तन देखे हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से लिए गए प्रतीकों ने परम्परागत प्रतीकों का स्थान ले लिया था। स्वप्नलोक, पूर्ण चन्द्र, नदी और पर्वत इनके स्थान पर पूर्णतः नवीन प्रतीकों को स्थान मिला है। पुष्पों की सुगंध और वंशी की ध्वनि सुनने को इच्छुक कवि को अपने चारों तरफ हींग, लहसुन और दुर्गन्ध मिलती है—

---

१ सुन्दरम्, श्री अरविन्द।
२ पूजालाल, पारिजात, पृष्ठ ११।
३ पूजालाल, अभीप्सु यौवन, पृष्ठ २०।

'ल्हने पत्रन शु कहु ? करु जिहा शुरू साधना
वहे मुक गयानजी । लखु छु पद्य ज्या हेत ना
कुमोडम वहावतो ड्रुमन्नि हीग वे लसण ना ।"[1]

विषय के अनुरूप प्रतीको को नवीन रूप दिया है। उमाशकर जोशी के काव्य कराल कवि' म हम नए प्रतीक मिलते है—

हुप हूप करी मूकें मुज अह मावडु"[2]

इस कविता म भावाभिव्यक्ति का माध्यम उन वस्तुओ को बनाया गया है जो दिन दिन जीवन म मिलते है।

भाषा क्षेत्र म, प्राचीन परम्परानिष्ठ सस्कृत बहुल काव्य जो केवल एक शिक्षित वर्ग तक ही सीमित था, भाषा के समस्त बधन तोडकर जनता के बहुत समीप आ गया। रचना को स्वाभाविक और अनुभूति का प्रतिरूप बनाने मे शब्दावली मे सस्कृत के साथ अरबी, फारसी और अग्रेजी शब्दो का प्रयोग किया गया है—

'रजा त्यारे हवे दिलबर। अमारी रात थई पूरी
मसालो साव बूझी, तेल खुट्यु वात थई पूरी ।
अमारी रात थइ पूरी।'[3]

छन्दो म बलवतराय ठाकोर ने गेयता के स्थान पर अगेयत्व को महत्व दिया। सस्कृत छन्दो की रीति पर सानेटो की रचना हुई किन्तु उनम यति छद के स्थान पर अर्थ के अनुसार है। पादात यति का भी विरोध किया गया। पृथ्वी छद के साथ ही सस्कृत के नाराच छद मे १६ अक्षरो की अनिवार्यता का विरोध किया। नवीन और प्राचीन छदो के मिश्रण से नवीन छदो का निर्माण किया गया। विशाल फलक पर व्याप्त होने वाली सुदीर्घ छद रचना द्वारा कवि की शक्ति का भान होना अभी शेष है।

अग्रेजी साहित्य के परिचय के कारण काव्यरूपो के क्षेत्र मे नए प्रयोग हुए। एक ओर सानेट, लिरिक और 'ओड' म रचित अथगभीर शब्दो के प्रति मोह बढ रहा था, दूसरी ओर महाकाव्यो मे प्रयुक्त होने योग्य ब्लकवर्स (मुक्त छन्द) का गुजराती मे आगमन हुआ। वीरवृत्त, डोलन, पृथ्वी छद के साथ केशवलाल ने ब्लकवर्स म अपनी भावनाओ के आलेखन का प्रयास किया। लय के प्रश्न पर बगला बाउल गान, प्राचीन लोकगीत और भजनो के स्वर सुनाई देते हैं।

सन १९४० के बाद की कविता मे प्रकृति का सौंदर्य, हृदय के तरल भाव और भावुकता के पीछे कवि का कौतुक प्रिय मन ही है। दूसरा महायुद्ध आरभ हो चुका था, देश म '४८ का आन्दोलन चल रहा था, बगाल की शस्यश्यामल भूमि अकालग्रस्त थी, हिरोशिमा नागासाकी के ध्वस ने बाहरी वृत्तियो को इतना हावी कर रखा था कि अपने मन के परिवतनो और भावनाओ के प्रति किसी का भी ध्यान जाना कठिन था। इन पाच छ वर्षों म कविता का

१ बलवन्त ठाकोर आर्तिका।
२ नाथालाल दवे रात थई पूरी (नयी कविता—स० झवेरी), पृष्ठ ६१।
३ वही।

वेग धीमा पड गया, कुछ छिटपुट रचनाओ को छोडकर कोई भी उल्लेखनीय रचना नही हुई—उमाशकर जोशी का 'प्राचीन' इसका अपवाद है।

दो ही वर्षों के पश्चात् इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना घटी। दो सदियो के परतत्रता के बधन को १५ अगस्त १६४७ की स्वतत्रता ने तोड दिया। किन्तु यह स्वातन्त्र्य अपने साथ विभाजन और साम्प्रदायिकता की वह कडवाहट लाया था जिसमे महात्मा गाधी ने अपने प्राणो की आहुति दे दी थी। इन परिस्थितियो म कुछ देर के लिए कविता समाजाभिमुख अवश्य हुई है और सन १३० की सामाजिकता की बौद्धिक सहानुभूति के स्थान पर अनुभव पर अधिक आधृत है।

अब तक गाधी युग के कवि किसी न किसी रूप म कार्यरत थे। प्रह्लाद पारीख की 'खिडकी मे बाहर' कविता म नए सौदर्य का अभिनिवेश नवीनतर कविता के एक लक्षण के रूप म स्फुटित हो रहा था पर प्रौढ लेखको की रुचि अब तक धार्मिक खोजो और मानव जीवन म रहस्यो के अनावरण म थी। एक नयी पीढी अपना दाय सभाल चुकी थी और सन १६५० तक आते आते गाधीवादी कविता के अवशेषो पर 'नयी कविता' के फूल निकल आये थे।

गाधी युगीन कविता मे सत्य और शिव तत्त्वो का विशिष्ट महत्व था पर १६५० की कविता आकार निर्माण मात्र रह गई थी। काव्य का वक्तव्य गौण हो गया और कुत्सित, दुगम और जुगुप्सोत्पादक आलेखन म रुचि बढ़ गई। शृगार का अर्थ केवल स्थूल सम्बन्ध के रूप म आया है। इस काव्य म विपुल वासनाओ की अनुवृत्ति के रूप म आया है।

गाधी युग की कविता म विचार और चिन्तन का प्राधान्य है लय और नाद माधुर्य का नियोजन है। राष्ट्र के चिंतन पर बल है किन्तु आज राष्ट्र अथवा विश्व म जो कुछ हो रहा है सम्भवत उससे कवि की चेतना को प्रोत्साहन नही मिल रहा है इसीसे आत्मा की उलझना म कवि उलझता चला जा रहा है।

गाधीयुग म बाद कुछ नवीन, अपूर्व और विशिष्ट की ओर मोह दृष्टिगत होता है। विश्व के सिमट जाने और सभी साहित्यो म सुलभ होने के कारण पश्चिम की अब तक की भव्य भावनाओ और प्रवृत्तियो का यह कविता प्रतिध्वनित करती है। इस कविता ने समस्त स्थापित मान्यताओ और व्यवस्थाओ को अस्वीकार कर स्वय को अपने आप म घर म बन्द कर लिया है।

प्रतिष्ठित और परम्परागत मान्यताओ जा हर नए को नए और अनुभवहीन होने के कारण स्वीकार नहीं करते है इस प्रवृत्ति की काव्यधारा का विरोध करते हैं। आज की इस कविता की पृष्ठभूमि और उसके साहित्यिक परिवेश का समापन करते हुए श्री गुणवन्त भरो भरो म [illegible] म कहा जा सकता है—

'आज का नवीन कल का प्राचीन है और कल का नवीन आज का प्राचीन है। एक समय कविता गेय थी—गाधीयुग म यह बन्धन टूट गया और आज कविता म छन्द और नियमित लयबद्धता नहीं रह गई है। एक समय वक्तव्य का नग्न अभिव्यक्ति की शैली का,

अंतरग का नहीं बहिरग का प्राधान्य था पर आज की कविता अनग बन गई है।'[1]

हर द्विविधा के बावजूद इस काव्यधारा का प्रवाह अक्षुण्ण रहा है जिसमे कई वस्तुएँ किनारे हो गई है। आज तक का यह इतिहास है, आगे क्या होगा ?[2]

श्री मनसुखलाल भवेरी को नयी कविता के भविष्य के विषय म जो भी सन्देह हो किन्तु सत्य यह है कि विभिन्न परिवेश और सदम म विकसित होन के साथ ही हिंदी और गुजराती की 'नई कविता' के मूल म प्राय भिन्न ही परम्पराएँ दृष्टिगत होती हैं।

गुजराती की आधुनिक कविता घोर भक्ति के विरोध को लेकर आरभ होती है। ईश्वर, भाग्य और अदृष्ट को लेकर चलने वाली काव्यधारा, नमद के आगमन के साथ पूणत इस लोक की कविता बन गई थी। किन्तु यौवन का यह आवेग अनुभव और परिपक्वता के साथ ही धीमा पडने लगा और स्वय नमद सनातन धम के उच्छेदन के स्थान पर उसकी स्थापना पर बल देने लगे। हिंदी की भारतेन्दुयुगीन कविता म भक्ति और रीतिकालीन मान्यताओं को ही प्रधानता मिली थी। वास्तव म यह समय काव्य विषय की दृष्टि से महत्वपूण न होकर काव्य भाषा की दृष्टि से महत्व का है। देश के आदोलनो की ओर जनता की रुचि अधिक थी प्राचीन मान्यताओ और परम्पराओ को स्वर देन वाली कविता साथ ही बदलती हुई मनोवृत्ति को विषय बना रही थी। किन्तु इस कविता मे समस्या बदलती हुई भाषा की थी। ब्रजभाषा म इतनी शक्ति नही थी कि वह रीतिकालीन शृगारिक भावनाओ के स्थान पर देश मे व्याप्त नए आवेग को उसी उत्तेजना से व्यक्त कर सके। गुजराती कविता म इसी समय सभवत पाश्चात्य शिक्षा के शीघ्र प्रभाव के कारण स्वानुभूत प्रणय को विषय बना लिया गया था, पर हिन्दी कविता तत्कालीन जनान्दोलनो और आज के आदोलन का पर्याय थी। विभिन्न विषयो का वणन तो किया गया था पर उनम अनुभूति की वास्तविकता नही थी। नमद न जिस स्वानुभूत प्रणय को विषय बनाया था हिन्दी काव्य म वह छायावादी कविता म स्पष्ट रूप म व्यक्त हुआ है। ससार का नवनिर्माण, समाज से त्रुटियो का परिहार—हिन्दी और गुजराती दोना काव्यों म समान रूप से मिलता है। इन काव्यो की भाषा पर अग्रेजी, सस्कृत और ब्रजभाषा दोना का समान रूप से प्रभाव है जो एक प्रकार से आने वाले युग की कविता के लिए भाव और शिल्पभूमि का निर्माण करती है।

द्विवेदी युग हिन्दी कविता के लिए अनेक बन्धन लेकर आया था। विषयो का प्रसार होने पर भी अभिव्यक्ति के प्रति जो नतिक दृष्टिकोण था उससे कवि की दृष्टि बाह्यनिरूपणी ही अधिक रही है वयक्तिक कम। किन्तु गुजराती कविता के समन्वय युग मे वयक्तिक अनुभूतियो का काव्य म प्रमुख स्थान है। द्विवेदी युग म जो प्रवृत्ति अपना स्वतन्त्र महत्व लिए है, और जनजीवन से असम्बद्ध है वही प्रवृत्ति समन्वय युग मे मनुष्य के जीवन म घटने वाली घटनाओ के मूल रूप म अभिव्यक्त हुई है। ईश्वरीय सत्ता के प्रति एक अविश्वास जो आज की नयी कविता म मुखर है गुजराती म आरम्भ से दृष्टिगत होता है। यह ठीक है कि ईश्वर कुछ है पर मनुष्य के ऊपर की सत्ता वह कदापि नही है। हिन्दी कविता म यह अविश्वास नही है अपितु यहा कवि भक्ति से गदगद है और अपनी

१ मनसुखलाल भवेरी परिम, गुजराती सभा, शताब्दी अक, पृष्ठ ३०४।
२ वही।

प्राचीन परम्पराओं तथा पौराणिक मान्यताओं को युग की आवश्यकताओं के अनुकूल ढाल कर, अतीत की गौरव गाथाएं दोहरा कर जागरण लाने की चेष्टा करता है।

किन्तु एक समानता जो दोनों काव्यों के मूल में है वह है अनुवादों की परम्परा। अंग्रेजी और संस्कृत से रचनाओं का अपनी भाषा में अनुवाद कर साहित्य को समृद्ध करने का प्रयास दोनों में है।

गांधी जी का प्रभाव समस्त देश पर एक सा ही पड़ा था किन्तु गुजरात पर कुछ अधिक। उनके विचारों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होने के कारण उनका रचना क्षेत्र गुजराती होने के कारण गुजराती कविता में गांधीयुग अपने में स्वतन्त्र युग है। हिन्दी क्या देश की किसी भी भाषा का साहित्य गांधी जी के प्रभाव को अस्वीकार नहीं करता है पर हिन्दी की कविता उस सीमा तक 'गांधीवादी' नहीं हो पाई जिस सीमा तक गुजराती कविता। वास्तव में सन १९२० से ३० और उसके आसपास का समय हिन्दी क्षेत्र में छायावादी युग था। काव्य क्षेत्र में पहली बार व्यक्ति की भावनाओं को अभिव्यक्ति मिली थी। और स्थूल यथार्थ को अस्वीकार कर सूक्ष्म कल्पना में तृप्ति खोजने का प्रयास छायावाद के प्रारम्भिक चरण में ही स्पष्ट हो जाता है जिसमें जीवन की सामान्य और शिष्ट वास्तविकता के प्रति उपेक्षा और विमुखता का भाव मिलता है। गुजराती कवि ने जहां गांधी जी के सिद्धान्तों को काव्य का विषय ही बनाकर उन्हें जीवन में व्यावहारिक रूप भी दिया था वहां हिन्दी की राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता के अन्तर्गत गांधी जी के विभिन्न आन्दोलनों और सत्याग्रह अभियानों को विषय बनाकर कवि तत्कालीन नव जागरण के प्रति सचेत होने का प्रमाण दे रहा था। बारदोली, जलियांवाला बाग और ४२ के आंदोलन आदि को हिन्दी कविता का एक विशिष्ट वर्ग स्वर दे रहा था, जिसका प्रमुख लक्ष्य जनता की प्रतिक्रियाओं को मुखर करना था किन्तु गुजराती कविता के अन्तर्गत आन्दोलनों के प्रति हुई प्रतिक्रियाओं ने एक नवीन प्रवृत्ति का सूत्रपात किया था। इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि गुजराती कविता में केवल गांधी जी के सिद्धान्तों को विषय बनाया गया था, जीवन के शाश्वत सत्यों को मानव मन की सूक्ष्म भावनाओं को अभिव्यक्त किया गया था। प्रकृति मानव मन की विभिन्न स्थितियों की परिचायिका सी थी। प्रकृति के माध्यम से अपना हर्ष विषाद स्पष्ट करना हिन्दी और गुजराती दोनों ही काव्यों में स्पष्ट हैं। रामनारायण पाठक ने गुजराती कविता के लिए जो कहा है उस समय की हिन्दी कविता के लिए भी वही पूरा उतरता है। "काव्य से दाम्पत्य प्रेम के स्थूल भोगों का वर्णन निकल गया। सूक्ष्म सौंदर्यबोध की दृष्टि ही प्रधानता पाने लगी। दूसरी ओर पारस्परिक आदर और परिपक्व मैत्री से जन्मी समानता की भावना भी काव्यों में प्रकट हुई है।"[1]

गुजराती कविता में (भले हो वह किसी युग की हो) अभिव्यंजना पक्ष की ओर झुकाव स्पष्टतः दृष्टिगत होता है। काव्य क्षेत्र में प्रयोग कहीं भी नए नहीं होते हैं। पर गुजराती काव्य विकास में न्हानालाल द्वारा किए गए अपद्यागद्य का प्रयोग और डोलन शैली का शोध महत्वपूर्ण है। बलवंतराय ठाकोर ने पृथ्वी और अन्य संस्कृत छंदों के आधार पर

१ रामनारायण पाठक : अर्वाचीन काव्य साहित्य ना वहेणो पृष्ठ ११७।

नवीन छन्दो का सृजन कर पद्य लेखन को नयी दिशा दी। पृथ्वी छन्द संस्कृत का वह छन्द है जो मुक्तछन्द के सबसे करीब है। इस प्रकार आज के मुक्तछन्द का आरंभ हम बलवतराय ठाकोर द्वारा किए गए पृथ्वी छन्द से मान सकते है। छन्दो की दिशा मे यह परिवर्तन का आभास निराला की 'जुही की कली' के समान ही महत्वपूर्ण है।

ऐसा माना जाता है कि छायावाद के सूक्ष्म वायवी सौंदय के स्थान पर पृथ्वी की आवश्यकताओ को स्वीकार करने की भावना के कारण, जिसके पीछे समाजवाद का उदय भी था, प्रगतिवाद का आरंभ हुआ था। 'कामायनी' से अपने चरम और 'युगान्त' से समाप्ति की घोषणा करने वाला छायावाद समाप्त होने पर ही प्रगतिवाद आरंभ हुआ था, पर गुजराती कविता मे प्रगतिशील तत्त्व किसी अन्य स्वतंत्र धारा के अन्तर्गत नही, गाधीवादी कविता के समानान्तर ही मिलते हैं। समाजवाद क प्रभाव मे आने पर विभिन्न कवियो ने जीवन को एक नवीन दृष्टिकोण स समझने का प्रयास किया। इस कविता म एक ओर जहा गाधीजी के सत्य और अहिंसा की प्रतिष्ठा है वहीं क्रांति का प्रतिपादन किया गया है समाजवादी भावना को अभिव्यक्ति मिली है। मध्यकाल म जो स्थान ईश्वर का था वही अब मनुष्य का हो गया था। ईश्वर के प्रति यह अविश्वास और जनता जनार्दन के प्रति सहानुभूति हिन्दी काव्य मे उतनी ही प्रखर है। 'अचल' जहा ईश्वर का 'घृणा की धूल से सत्कार' करने को प्रस्तुत रहत हैं वहीं सुन्दरम् ईश्वर को वापिस स्वर्ग भेजने को आतुर हैं। 'कोया भगत नी कडवी वाणी' धर्म और ईश्वर के प्रति अनास्था का सशक्त प्रमाण है। गाधीजी के अनुसार जो ईश्वर गाव की कुटिया मे बसा करता था वह अब केवल रनिवासो का ईश्वर है। शोषितो को अस्वाभाविक हीनता का सामना करना पड रहा है, वह बाह्य परिस्थिति का परिणाम है। प्रगतिवादी कवि अथवा गुजराती के समाजवाद से प्रभावित कवि इस अस्वाभाविक अन्तर को मिटाने के लिए सजग हैं। एक तथ्य फिर भी द्रष्टव्य है प्रगतिवाद के नाम पर होने वाली दलबन्दी और नारेबाजी हमे गुजराती कविता मे नही मिलती है। यह कविता हर प्रकार की यथार्थप्रियता, अनगढ और भदेस के प्रति आग्रह होन पर भी कुछ सीमा तक रोमानी है। प्रगतिवादी कवि ने नारी को केवल भोग की वस्तु न मानकर उसे सगिनी, शक्तिरूपिणी माना था, यही भाव गुजराती काव्य म भी है। प्रणय क्षेत्र म असफल होने पर भी कवि प्रिया के प्रति कठोर नही है अपितु ऋणी है क्योंकि व्यष्टि मे निहित उसकी चेतना समष्टि म व्याप्त हो चुकी है।

गाधीवाद, मार्क्सवाद के साथ ही गुजराती कविता पर अरविन्द का बहुत प्रभाव पडा है। हिन्दी कविता दर्शन स प्रभावित हुई है पर गुजराती कविता के समान प्रभाव की चरम सीमा उसम नही मिलती है। पन्त की स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि और अतिमा म अरविन्द दर्शन की स्थापना भले ही है किन्तु इसके प्रभाव के कारण स्वय को अरविन्द के सिद्धातो को समर्पित कर पाडिचेरी म ऊर्ध्व जीवन की खोज म नही लगाया है। दूसरी ओर सुन्दरम् और पूजालाल भगवान का प्रकाशमय अमृत लेकर मनुष्यता की समस्त पूजी प्राप्त करन का प्रयास करत हैं।

अरविन्द का प्रभाव जहा दोनो कविताओ पर दर्शन के रूप मे पडा है वही एक अन्य व्यक्तित्व है, जिसकी छाप दोनो काव्यो पर मिल जाती है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के प्रभाव को

गुजराती कविता अस्वीकारती नहीं है। श्री उमाशंकर जोशी इस प्रभाव को प्रेरणा का प्रबल स्रोत मानते हैं जो आंधी की तरह अस्थायी न होकर हिमालय के शिखर की भाँति सार्वकालिक है।[1]

करसन माणक नगीनदास पारेख, गिरधारी कृपलानी और गुजरात विद्यापीठ के अनेक सदस्यों ने टैगोर की रचनाओं का अनुवाद किया जिनमें महादेव भाई देसाई और नरहरि भाई पारेख द्वारा किया गया चित्रांगदा और विदाया अभिशाप का अनुवाद उल्लेखनीय है। काका साहब कालेलकर टैगोर की रचनाओं के मुख्य व्याख्याकारों में से हैं।

गुजराती और हिन्दी दोनों ही साहित्यों में गद्यगीत लिखने की गुरुप्रभात गीतांजलि के गद्यगीतों के आधार पर हुई है। हिन्दी के युवा साहित्यकारों को टैगोर ने साहस और आत्मनिर्भरता दी जिसके कारण अपने अग्रजों की भांति यह पीढ़ी काल्पनिक हीन भावना से ग्रस्त नहीं होने पाई है।[2] गुजराती में इस प्रभाव को कन्हैयालाल मुंशी ने 'शांतिनिकेतनीय संस्कृति' कहा है किन्तु वे यह भी स्वीकार करते हैं कि गुजराती कविता में टैगोर की भावनाओं की सी कोमलता नहीं आने पाई है।[3]

बीसवीं शती का चौथा दशक राजनीतिक परिवर्तनों के लिए समस्त भारत के लिए महत्त्वपूर्ण था किन्तु हिन्दी साहित्य की काव्यधारा के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण था। प्रगतिशील आंदोलन उफान की तरह ही उतर गया था और इस समय की महत्त्वपूर्ण घटना तारसप्तक का प्रकाशन है, तारसप्तक—जो प्रयोगवाद का आरंभिक चरण है। काव्य के भाव भाषा और अभिव्यक्ति के सभी क्षेत्रों में नए प्रयोग हो रहे थे। अज्ञेय और उनके अन्य सहयोगी कवि काव्य के नए आयाम खोज रहे थे। स्वतंत्रता से पहले के चार-पाँच वर्ष गुजराती कविता को कोई महत्त्वपूर्ण कृति नहीं दे सके जबकि हिन्दी काव्य के लिए यह क्रांति का समय था। 'बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाने' का सिद्धांत काव्य के बासी पड़ गए प्रतीकों, बिम्बों आदि पर भी पूरा उतारा जा रहा था। 'चिन्ता' में एक प्रकार से भविष्य के प्रति अनास्था मिलती थी जो तारसप्तक के प्रकाशन के बाद भविष्य के प्रति आस्था में परिणत होती जा रही थी।

---

1 'For them he was more an abiding source of inspiration than a temporary influence, more like a Himalayan peak than a passing storm'—Indian Literature, Published by the Vishwa Bharati p 40

2 'His powerful and prodigally generous personality has instilled courage and self reliance in the younger generations of Hindi literatures they are not haunted by feelings of an imaginary inferiority complex which obsessed their predecessors —Indian Literature Vol II, Published by the Vishwa Bharati p 180

3 'It may be said that the emotion and the delicacy of touch of Gurudeva did not influence Gujrati literature as sufficiently as it did in other states —Indian Literature Vol I, Vishwa Bharati p 50

यह आस्था वतमान के प्रति दृढ विश्वास से उत्पन्न हुई थी किन्तु प्रयोगवाद ने अपने विकास काल म एक परिवतनशील घटना देखी जो स्वतन्त्रता प्राप्ति थी। युगा का स्वप्न पन्द्रह अगस्त १९४७ को पूरा हुआ था। स्वतन्त्रता के इस यज्ञ मे भारतीयो को अमूल्य आहुति देनी पडी थी—गाधीजी की। विभाजन और गाधीजी की निमम हत्या की घटना ने स्वतन्त्रता प्राप्ति का उत्साह समाप्तप्राय कर दिया था। गुजराती कविता इस समय कुछ देर के लिए समाजाभिमुख हुई है किन्तु इसम केवल बौद्धिक सहानुभूति के स्थान पर अनुभूति की कडवाहट है। प्रह्लाद पारेख की 'खिडकी के बाहर' कविता मे जहा नए सौंदय का अभिनिवेश नवीनतर कविता के नए लक्षण के रूप म हो रहा था वही प्रसिद्ध और प्रौढ कवियो की रुचि मानव-जीवन के रहस्यो के अनावरण और धार्मिक खोजा के प्रति अधिक थी। जसे तारसप्तक से हम आज की नयी कविता का प्रारभ मानते हैं उसी प्रकार मानव-जीवन के रहस्यो और धार्मिक खोजा से अलग गुजराती कविता के क्षेत्र म भी एक नयी पीढी अपना दाय सभाल चुकी थी। हिन्दी म १९५१ मे दूसरा सप्तक के प्रकाशन के साथ प्रयोगवाद साहित्य की नवीन काव्य धारा के रूप म मान्य हो चुका था जबकि सन् १९५० के आते आते गुजराती म गाधीवादी कविता के अवशेषा पर नयी कविता के फूल निकल आए थे।

गाधीयुगीन कविता मे सत्य और शिव तत्त्वा का महत्त्व था पर १९५० की कविता आकार पर बल देती थी—यह समानता वैसी ही है जो प्रयोगवादी कविता म हर परम्परा के अस्वीकार के रूप मे स्पष्ट हुई है। श्री मनसुखलाल झवेरी इस नयी कविता को कुत्सित-द्युमग मानते हैं। उनकी दृष्टि मे विप्रलभ वासनाओ की अतृप्ति के रूप म आया है पर तत्कालीन हिन्दी कविता में हृदय को अस्वीकृत करने पर भी, अपने को वीतराग मानने पर भी, अतीत के कोमल क्षण हैं जो उद्वेलित कर जाते हैं।

तीव्रता से बदलते हुए विश्व के प्रति सचेत होने के कारण आज की कविता, वह गुजराती हो या हिन्दी, आत्म की उलझना म अधिक उलझती चली जा रही है। अपने को अह के घेरे मे कद करने का प्रयास जहा विश्व के इस रेतवन म मैं अह का भेप हू' मे स्पष्ट है वही 'हुप-हुप करे छे मुज अह मामडु' मे भी स्पष्ट है। जीवन के विभिन्न स्वरूपो के अनुसार अनेक जिन्दगिया जीने वाला व्यक्ति अपने को बँटा हुआ पाता है। स्वतन्त्रता के बाद से लगभग एक सी ही मानसिक प्रतिक्रियाओ से वतमान युवा वग गुजर रहा है। उमाशकर जोशी की 'छिन्न भिन्न छु' मे जीवन की यही अनेकरूपता है जिससे व्यक्ति भरसक प्रयास करने पर भी समझौता नही कर पा रहा है।

स्वतन्त्रता के बाद विकसित होने वाली काव्यधारा मध्यवग के त्रस्त जीवन का काव्य है। तारो से कटा हुआ आकाश, लोहे मे जकडी सभ्यता और हर पल अनिश्चितता जिस काव्य म है, जो काव्यकार अपने व्यस्त जीवन के कारण अपने घर को केवल नम्बर के कारण पहचान सकता है उसके काव्य म कल्पना के सौंदय के स्थान पर घोर भौतिकता को स्थान मिलना स्वाभाविक है।

भिन्न परम्पराओ म विकसित होन पर भी स्वतन्त्रता के बाद की हिन्दी और गुजराती कविता मे मूल अन्तर एकदम नही है (अगर भाषा को व्यावतक धम न माना जाए तो)। हिन्दी का कवि जहा राजधानी म आए दिन होने वाली अथहीन, अथमय और सामान्य भीड

भरी पार्टियो सडको और जिन्दगी से परेशान है जहा केवल पाँचसाला योजनाओ के पलस्तर चढते है, सत्ताधारी साँप सीढी का खेल खेलते हैं वहा गुजराती कवि ब्रह्मन्यावाद की हर रात चिमनियो पर सिर पटकते हुए मे होने वाली मृत्यु से सन्त्रस्त है।

केवल प्रतीति के क्षेत्र म ही नही दर्शन म नयी पीढी ने एक समान ही अस्तित्व वादी दर्शन को अपना दर्शन माना है। कामू सात्र और काफ्का का नकारात्मक दृष्टिकोण उन्हें स्वीकार है। बादलेयर और मालार्मे की अभिव्यक्तियो को उन्होने अपनी अभिव्यक्ति बनाया है। ईलियट और एज़रा पाउण्ड से प्रभाव ग्रहण करने वाली यह कविता न केवल भावना के क्षेत्र मे अपितु अभिव्यक्ति क्षेत्र म भी समान है। परम्परावादी आलोचको के आक्षेप दोनों कविताओ ने सहे हैं किन्तु यह काव्यधारा अपना महत्त्व बनाए है। इसे अनुकरण नही कह सकते क्योकि पूरी-की पूरी कोई भी पीढी अनुकरण नही कर सकती।

आधुनिकतम (नयी) कविता को अकाव्य मानने वाले आलोचक सभवत काव्य के उस रूप पर बल देते है जिसमे छन्द अनिवार्य है और विषय राष्ट्र अथवा समाज निर्माण से सम्बन्धित होता है। आज का काव्य निषेध म ही निर्माण का प्रयास करता है। कठोर प्रतिक्रिया के फलस्वरूप सभव है जीवन म मिलने वाला यह दु ख-दर्द बाटने को कोई मिले।

सक्षेप मे यही कहा जा सकता है कि पर्याप्त साम्य रखने पर और वर्तमान स्वरूप एक ही सा होने पर भी, गुजराती और हिन्दी नयी कविता के मूल म कुछ भिन्न परम्पराए हैं जिनका कारण उनका भिन्न परिवेश था।

नयी कविता ऐतिहासिक क्रम विकास

(क) हिन्दी कविता ऐतिहासिक क्रम विकास

नयी कविता की व्यवस्था मे केवल तीन सप्तक ही भागी नही हैं—ये तो उसके विकास के तीन चरण हैं जिनके माध्यम से हम नयी कविता के ऐतिहासिक क्रम का अनुमान कर सकते हैं। तारसप्तक ('४३) और दूसरा सप्तक ('५१) के मध्य के आठ वर्षों मे नयी कविता की सीमाओ का प्रसार हुआ। एक प्रश्न यहा उठ सकता है कि प्रयोगवादी कविताओ के सग्रहो को नयी कविता के विकास का आधार कसे माना जा सकता है ? उत्तर है कि वह काव्य जिसे आलोचको ने उपहासवश प्रयोगवाद कहा था, वास्तव मे केवल रूपाकार मे ही नयी प्रतिष्ठा नही कर रहा था—उसम स्त्री, प्रकृति और प्रेम का वह परम्परागत रूप हमे नही मिलता जहाँ प्रेमिका के चरणो मे आँसू का अर्घ्य चढाया जाना ही महान उपलब्धि समझा जाता हो या विरह-वेदना मे विहारी की नायिका-सी स्थिति ही साध्य हो। तार सप्तक मे सकलित कवियों के माध्यम से होने वाले प्रयोगो की ओर सकेत किया गया था जिसके 'प्रयोग शब्द को पकड कर आलोचको ने उसे 'प्रयोगवाद नाम दे दिया। प्रयोगवाद से प्राय सभी यह समझते हैं कि इन कवियो ने प्रयोग को साध्य मानकर एक वाद चला दिया—जोकि सवथा भ्रामक है। अज्ञेय ने दूसरा सप्तक म प्रयोग शब्द को स्पष्ट किया और बताया कि उनकी दृष्टि म प्रयोग अपने आपम इष्ट नही है, वह साधन है, दोहरा साधन—एक तो उस सत्य को जानने का जिसे कवि प्रेषित करता है और दूसरे उस प्रेषण किया और उसके साधनो को जानने का साधन। नाम म क्या है वह तो चलाने से चल पडता है।

नयी कविता, प्रयोगवाद का नया नाम नही है पर प्रयोगवाद की अधिकाश विशेषताओ का उसमे सामजस्य अवश्य है वह प्रयोगवाद क पर्याप्त समीप भी है किन्तु दोनों के अन्तरो को देखत हुए उन्हें एक नही कहा जा सकता। नयी कविता के ही कवि प्रयोगवाद के भी कवि हैं और दोनो धाराओं की सामान्य विशेषताए भी इनम मिलती है, अत नयी कविता और प्रयोगवाद को सम्बद्ध करके ही देखना चाहिए। स्वाधीनता के बाद सामने आए कवियो म प्रयोगवादी कविता की प्रक्रिया, शिल्प और यथार्थवादी दृष्टि का प्रसार मिलता है।

वास्तव म, अगर वाद म कविता को बाँटे बिना, उसके सहज और क्रमिक विकास का अध्ययन किया जाए तो अधिक श्रेयस्कर होगा। यदि हम प्रयोगवाद का नयी कविता का

आरम्भिक रूप मान लें जिसमे लाल झण्डे, मजदूर और किसानो के हितो के साथ ही अपने व्यक्ति को भी अभिव्यक्ति देने का प्रयास है और परम्परित नियमबद्ध रूपाकार के स्थान पर नए माध्यमो की खोज है, तो नयी कविता इन्ही अभिव्यक्तियों और माध्यमो का व्यवस्थित रूप है।[1]

'नयी कविता अपनी अभिव्यक्ति प्रेषणीयता और उपलब्धि की दृष्टि से प्रयोगशील कविता से आगे की स्थिति है। दोनो म घनिष्ठ सम्बन्ध है पर ऐतिहासिक दृष्टि से एक दूसरे का विकास है। दोनो मे समान तत्त्व भी मिल जाएगे पर दोनो की भावभूमि म पर्याप्त अन्तर है। प्रयोगशील कविता ने परम्परा से विद्रोह के रूप मे प्रयोग तथा अन्वेषण का माग स्वीकार किया था, पर नयी कविता के सदभ म वे उसकी प्रकृति के सूचक हैं, प्रयोग युग के कवि के मन मे अपने माग के विषय म अनेक सशय और द्विविधाए थी। मर्यादा और मूल्यो के सघष के बीच आज के कवि मे सक्रातिकालीन सशय और द्विविधाए भी देखी जा सकती हैं। परन्तु जब प्रयोग-युग का कवि अपने सघष के प्रति निश्चित नहीं था, आज का कवि अपनी सारी शकाओ के बीच आस्थावान है और उसम सघष का विश्वास उभर रहा है।'[1]

नयी कविता म सवेदना को जो नया रूप मिला है उसके पीछे एक व्यापक परिवर्तन है। छायावादी रूपाकार और सवेदना दृष्टि सही अर्थो म चुक गई थी। युग की ठोस वास्त विकता के सामने उसकी स्वप्न देखते रहने की कल्पनाशीलता और आसुओ मे बह निकलने वाली भावुकता व्यग्य लगने लगती थी लेकिन साहित्य के साथ पत्र पत्रिकाओ मे भी इसी रूमानी प्रणय की प्रधानता थी। 'तत्कालीन नए कवि को हर ओर से प्रतिरोधो का सामना करना पड रहा था। परिवर्तित भाव-बोध की अभिव्यक्ति के लिए न उपकरण थे और न ही सकेत दिशाओ का कोई आभास था। भाषा, उपमान छन्द प्रतीक सब बेहद रूढ हो चुके थे।

सन् १९३६ मे कामायनी के प्रकाशन के साथ ही छायावाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया आरम्भ हो गयी थी। उन्ही दिनो पतजी के सम्पादन म 'रूपाभ' का प्रकाशन हुआ जो नवीन काव्य चेतना की अभिव्यक्ति का कदाचित् पहला माध्यम बना। रूपाभ म भाव प्रवण छायावादी रचनाए नही छपती थी। ' पतजी के नाम से आकृष्ट होकर छायावाद से प्रभावित जो कवि अपनी रचना भेजते थे, उनसे अत्यन्त शिष्ट भाषा म—पतजी और नरेन्द्रजी की अपनी मीठी भाषा म क्षमा माँग ली जाती थी।'[2]

रूपाभ शब्द केवल नाम से ही नही था—नवीन चेतना का प्रतीक भी था, उसम यह व्यजना स्पष्ट थी कि छायावादी 'आभा' नवीन युग म सौंदयबोध को अभिव्यक्त करन म असमर्थ हो चुकी है—नया युग केवल आभा नही उसके साथ रूप की भी माग कर रहा है। अत छायावाद के अमूत सौंदय के स्थान पर मूत सौंदय काव्य का विषय बना—भाव के तारल्य के स्थान पर वस्तु की दृढ रेखा प्रतिमान बनी।

सन १९४२ म अज्ञेय के काव्य सग्रह 'चिन्ता' और भारतभूषण अग्रवाल के 'छवि के बन्धन' के अतिरिक्त प्रभाकर माचवे मुक्तिबोध, केदारनाथ अग्रवाल और रामविलास शर्मा

---

१ डा० रघुवश साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य पृष्ठ १६० ।
२ डा० नगेन्द्र लोकप्रिय कवि गिरिजाकुमार माथुर, पृष्ठ २३ ।

का काव्य प्रकाश म आ चुका था जिसमे छायावादी कविता के प्रभावा का अवशेष भले ही था किन्तु विश्व के नए निर्माण का, एव नए समाज का और व्यक्तिगत स्वातत्र्य का स्वर, जो छायावादी काव्य मे अपरिचित ही रहा, उनके काव्य मे सुनाई पडा। अभिव्यजना के क्षेत्र मे जो परिवतन हुए उनमे बालकृष्ण राव के सॉनेटस की बौद्धिक अनुभूति, केदारनाथ अग्रवाल के 'लैण्डस्केप और प्रभाकर माचवे की कविताओ का नवीन गीति तत्त्व और नवरो मान की प्रवत्तिया मुखर थी। 'कमवीर' पहला ऐसा पत्र था जिसम नयी कविताओ और नयी प्रतिभाओ के लिए सदा अवकाश रहता था।

नयी कविता का एतिहासिक क्रम आरभ होने से पहली साहित्य की अपनी मौलिक प्रकृति के अनुकूल ही साहित्यिक अभियान या नेतत्व के प्रति किसी प्रकार की सजगता नही थी। प्रयागवाद के प्रारभिक दिनो मे रचनात्मक साहसिकता का भाव ही अधिक था, योजना का कम। तारसप्तक के आरभिक वक्तव्य म भी यही ध्वनित होता है कि इस सकलन का आयोजन अज्ञेय के द्वारा जो हुआ तो उसके पीछे सैद्धातिक पृष्ठभूमि तो थी ही पर व्याव हारिक कारण भी कम नही थे।

छायावादोत्तर काल की बहुत कुछ निर्वातिक स्थिति और प्रगतिवाद से रचनात्मक स्तर पर असतोष के बीच 'तारसप्तक' का प्रकाशन आयोजित होता है। पृष्ठभूमि मे अग्रेजी मे प्रकाशित नए साहित्य के कुछ इस प्रकार के सहयोगी प्रयास, उदाहरणत जार्जियन पोयट्री, भी हो सकते है। पर तारसप्तक के छपने के जो कारण थे वे अपने आपमे निश्चय ही बड़े यथाथ थे। छायावाद और प्रगतिवाद से भिन्न रचनात्मक प्रक्रिया की खोज इन कवियो के एक साथ आने मे मुख्य सैद्धातिक वैचारिक भूमि थी, और कुछ व्यावहारिक कठिनाइयो के कारणो ने तारसप्तक की सहकारी योजना को प्रेरणा दी।

तारसप्तक म वक्तव्य सहित कविताएँ प्रकाशित हुइ जिनके कारण कवि की विचारक और समीक्षक के रूप मे प्रतिष्ठा ने कविता और साहित्य चिंतन के क्षेत्रो म एक व्यापक बौद्धिक उत्तेजना उत्पन्न की। कविता की रचना प्रक्रिया, उसकी सगति और समाज मे स्थिति आदि कइ मौलिक प्रश्न कवियो और समीक्षको के सतुष्ट मानस को उद्वेलित करने लगे। तार सप्तक का प्रकाशन एक ऐतिहासिक उपलब्धि है जिसमे समाजवादी दृष्टिकोण स्पष्टत दिखाई पडता है, जिससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि माध्यमो पर प्रयोग करने वाले कवियो ने घोर विरोध के बावजूद रूपागत प्रयोगो के साथ नवीन वस्तुस्थिति और यथाथ समस्याओ का सामजस्य किया है। इन तमाम प्रयोगो को 'वाद' कहा गया जो प्रगतिशील आलोचको की कृपादृष्टि का परिणाम था।

तारसप्तक मे तीन स्वर स्पष्ट हैं। पहले के अन्तगत मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा, प्रभाकर माचवे और भारतभूषण अग्रवाल की रचनाओ का समाजवादी स्वर है, जिनमे भारत के भविष्य के लिए एकमात्र आशा साम्यवाद को माना गया है। मुक्तिबोध की रचनाओं मे इस सामाजिक यथाथवाद के साथ व्यक्ति प्रधान, अवमुखी दाशनिकता और निराशा के स्वर मिल जाते हैं। नेमिचन्द्र जन ने भी अपने को कम्यूनिस्ट ही कहा है पर उनकी कविताओ म रूमानी रूपासक्ति और व्यक्ति तथा समाज का अन्तद्वद्व स्पष्ट हो जाता है। कवि गाता है—बिके हुए टुकडाखार कवि जो उन लोगो की प्रशस्ति से मन भरा करते

हैं, जिनके बडे बडे प्रासादो के निर्माण म सकडो झोपडियो ककाल मात्र भी नही बची। वह अपनी कविता को तो बेच देता है पर उसकी आत्मा उन प्रासादो के स्थान पर फिर से झोपडियो को खडा देखना चाहती है। 'अनजाने चुपचाप', 'उन्मुक्त' और 'धूल भरी दोपहरी' का कवि अपने मन स छायावादी सस्कारो को नही हटा पाया है। दूसरा स्वर उस व्यक्तिवाद का है जिसके आधार पर नयी कविता को कुण्ठित, गलित और यौन वर्जनाओ का समवेत रूप कहा जाने लगा। वसे यह प्रवत्ति व्यक्ति के अह के विस्फोट की है। अह—भले ही उसे कुण्ठा या फस्ट्रेशन कहा जाए वह अह ही रहेगा। अज्ञेय का काव्य ऐसा ही अपवादग्रस्त अह वादी काव्य है—विषय की दृष्टि से जो छायावादी भावना स अधिक दूर नही पडता, अन्तर केवल अभिव्यक्ति का है जो छायावादी सामती सस्कार को नहो अपितु नए विशिष्ट प्रयोगो को सामने लाई है। तीसरा स्वर मध्यवर्गीय मनोद्वन्द्व, मानसिक तृष्णा स्थूल ऐन्द्रियता और भौतिक जीवन क प्रति लालसा और मोह का है जो गिरिजाकुमार माथुर की कविताओ म मिलता है। यहा प्रवत्तिया आग चलकर क्रमश प्रगतिवाद, सूक्ष्म बौद्धिकता और नयी सौंदय सष्टि में परिवर्तित हुइ और सामाजिक यथाथ क साथ ही व्यक्ति-सत्य की भी स्थापना हुई।

सप्तको के क्रम का दूसरा सप्तक प्रकाशित होने से पहले सन १९४६ मे अज्ञेय का तीसरा काव्य सग्रह 'इत्यलम' प्रकाशित हुआ जो अपने आपमे एक प्रकार की इति को सूचित करता है। सन १९४६ म ही गिरिजाकुमार माथुर का 'नाश और निर्माण' भी प्रकाशित हुआ जिसने कवि को हिन्दी क श्रेष्ठ अधुनातन शिल्पियो म स्थान दिला दिया। 'नाश और निर्माण' म गीतो क साथ-साथ प्रयोगशील कविताएँ भी थी, पर उसकी अधिकाश कविताओ मे अन्तमुख भावुक मन की गीतात्मक अभिव्यजनाए हैं और मुक्तछन्द के साहसिक प्रयोग मिलते हैं—प्रयोग जितने हैं सब सफल हैं किन्तु उनमे वविध्य नही मिलता। नाश और निर्माण मे गिरिजाकुमार की चित्राकन म सहज क्षमता के उत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं। परम्परागत उपादानो को छोडकर कवि ने युग जीवन की ओर अपने मन की प्रेरणा क अनुरूप सौंदय का अलकृत रूप म देखा पहचाना और अपनी कविता के छवि पट पर उसे अकित किया।[1]

सन् १९४७ म भारतभूषण अग्रवाल का 'मुक्तिमार्ग' प्रकाशित हुआ, इसम भी 'छवि के बधन' की भाँति ही छायावादी भावो का मोह स्पष्ट है।

"इस वचारिक प्रक्रिया को दिशा मिली सन् '४७ मे प्रकाशित 'प्रतीक' से। इलाहाबाद से प्रकाशित प्रतीक '५१ म बन्द भी हो गया पर अपनी पाच छ वप की प्रकाशन अवधि म प्रतीक ने निश्चय ही साहित्य को एक नयी उन्मुखता प्रदान की। ऐसा नही था कि प्रतीक म प्रकाशित होने वाली सभी सामग्री नयी थी अपितु नया साहित्य उस समस्त आयोजन का केन्द्र था और नए साहित्य की प्रमुखता उत्तरोतर बढती ही चली गई और दूसरा तथा तीसरा सप्तक के कवि प्रतीक क माध्यम से ही प्रकाशन म आए। और जो बात ध्यानाकर्षित करती है वह यह कि मथिलीशरण गुप्त, नवीन सुमन, वृन्दावनलाल वर्मा जस मूलत राष्ट्रीय भावधारा के लेखकों के साथ शमशेर माचवे गिरिजाकुमार माथुर भारतभूषण अग्रवाल, मुक्तिबोध धमवीर भारती और कुवर नारायण जसे नए रचनाकारो का सम्पर्क प्रतीक

1. देवशकर अवस्थी विवेक क रग, पृष्ठ ३७।

के तत्त्वावधान म ही सभव हो सका है।"[1]

"अज्ञेय की सन् '४६ म प्रकाशित 'हरी घास पर क्षण भर म' जिस उन्मुक्त सहजता और खुलेपन का आभास मिलता है वह इत्यलम की अपेक्षाकृत 'कुण्ठित' रचनाओ से अलग है। कहना न होगा कि 'हरी घास पर क्षण भर नयी कविता का पहला सगृहीत रूप है। इस संग्रह म आकर उनकी (अज्ञेय की) कविता हरी घास पर क्षण भर रुक गई है—शवनम की तरह नहीं जो दूसरे क्षण म ढुलक जाएगी, वल्कि 'अतीत के शरणार्थी' की भाँति जीवन के अनुभव का प्रत्यावलोकन करने, आत्ममथन रत होकर। अनुभूतियो म अन्तर्निहित मूल व्यथा, एक घुटा-सा दद कुण्ठित पीडा होने पर भी वह भावुकता का प्रदशन नही करता, उसकी स्याही म आसुओ का पानी नही है।"[2]

नयी कविता से सम्बन्धित पत्रिकाओ का प्रकाशन सन '५० के आसपास होना आरम्भ हुआ है। कारण बहुत स्पष्ट है, तारसप्तक के प्रकाशन से जिस प्रयोगवादी काव्यधारा का प्रणयन हुआ था वह अपनी छायावादी कल्पना से मुक्ति नही पा रही थी—'प्रतीक' और 'ज्ञानोदय' दोनो ही समकालीन पत्रिकाए हैं—ज्ञानोदय का प्रकाशन सन् '४६ से और प्रतीक का सन '४७ से आरम्भ हुआ। ज्ञानोदय ने नए स्वर की रचनाओ को मान्यता दी पर प्रतीक का सहयोग उससे अधिक सक्रिय रहा।

सन '४६ म 'कल्पना' का प्रकाशन आरम्भ हुआ। 'कल्पना' ने केवल नयी कविता का ही नहीं, कहानी, नाटक और समालोचना का भी प्रतिनिधित्व किया। भारतभूषण अग्रवाल, नेमिचन्द्र जैन, नरेश मेहता, भवानीप्रसाद मिश्र तथा और भी अनेक साहित्यकारो की प्रारम्भिक रचनाओ का स्वरूप कल्पना म प्राप्त हो जाता है। कल्पना का जो अत्यधिक महत्वपूण आकपण रहा, वह उसकी पुस्तक समालोचना थी। नयी पुस्तको की समीक्षा स्वस्थ होने के साथ-साथ उत्साहवर्द्धक भी थी।

सन '५१ मे प्रकाशित दूसरा सप्तक' म 'तारसप्तक' का मूल स्वर समाजवाद नहीं अपितु प्रसरित होते हुए व्यक्ति का एक नया रूप दिखाई पडता है। तारसप्तक' म तो फिर भी कई कवियो म साम्य मिलता है पर 'दूसरा सप्तक मे भवानीप्रसाद मिश्र से लेकर धमवीर भारती तक कहा कोई साम्य नही मिलता। भवानीप्रसाद मिश्र की कविताओ म जहा सामाजिक यथाथ की कडवाहट है (गीतफरोश) वही प्रकृति का सुरम्य रूप ('एक बूद टपकी नभ से' और 'सतपुडा के जगल') भी है और काव्यकथा के आधार पर लिखा गया 'सन्नाटा' भी अपना अलग स्वर लिए है। शकुन्त माथुर की कविताओ म व्यग्य भले ही साथक रहा हो पर उनकी कविताए अपरिपक्व लगती है। हरिनारायण व्यास की कविताए 'नेहरू के प्रति' यह प्रमाणित करती हैं कि कवि केवल वशी और वीणा मे ही अपना कवित्व साथक नहीं करता, प्रतिक्रियाए भी उसके मन म होती हैं। साता कवियो म केवल इनम ही मधुर शब्दो के चयन के प्रति झुकाव लक्षित होता है। शमशेर ने तो जैसे शब्द को उसकी समूची व्यजना से अभिव्यक्त कर डालना चाहा है। अतियथाथवादी धारा की शली का प्रभाव और अपन मन

---

१ डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, पृष्ठ १७।

२ डॉ० देवीशकर अवस्थी विवेक के रंग पृष्ठ १४।

के संवेदना जाल को अभिव्यक्त करने की आतुरता उनमें दिखाई पड़ती है। सामाजिक भय यहीं बहुत मुखर है और यही उनके व्यक्तिगत द्वन्द्व के कारण मलिन भी हो जाता है।

नरेश महता का काव्य प्रकृति का काव्य अधिक है। वह और स्मृतियों के साथ ही अपनी रूमानियत को वे कम नहीं कर पाए हैं। उपयुक्त के प्रति उत्तर यह मोह आज के युग से मेल नहीं खाता। समय देवता में यह रूमान कम है और पर्यवेक्षण के अन्दाज में ही संसार भर के इतिहास और भूगोल के प्रति मार्मिक अभिव्यक्तियाँ मिलती हैं—इतिहास नहीं, उच्छ्वास घटता हुआ।

रघुवीर सहाय ने अपने वक्तव्य में कहा है कि 'कोशिश तो यही रही है कि सामाजिक यथार्थ के प्रति अधिक-से अधिक जागरूक रहा जाए और वैज्ञानिक तरीके से समाज को समझा जाए।

वैज्ञानिक तरीके से समझने और जागरूक रहने का अर्थ रघुवीर सहाय की रचनाओं में पूरी तरह लागू होता है। 'दूसरा सप्तक' में रघुवीर सहाय अपनी वैयक्तिक अभिव्यक्तियों में निश्छल हैं, कविता में उन्होंने अपने को खोल देने का प्रयास किया है किन्तु पूर्ण अभिव्यक्ति की इच्छा और उसका विराट स्वप्न जो लघु अनुभूति में समा नहीं पाता—एक संशय जाग्रत करता है। छायावादी प्रभाव से वह छुटकारा नहीं पा सके हैं पर सजग हैं कि किसी प्रकार की अतिशय भावुकता उनके कथ्य को शिथिल न कर दे।

संग्रह की सबसे किशोर और भावुक कविताएँ धर्मवीर भारती की हैं जिनमें अंधायुग या कनुप्रिया की आगामी गहराई का आभास नहीं मिलता। 'सप्तक' के भारती में उर्दू के कवियों का सा तरन्नुम और किस्सागोई की भावना अधिक मिलती है। सुभाष की मृत्यु पर उनके प्रगतिशील विचारों की प्रतीक है किन्तु अन्य कविताओं में वे देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच, 'बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है' के एकदम विरुद्ध उन्हीं कूच कर गए देवताओं की प्रतिष्ठा में लीन लगते हैं।

उपलब्धि की दृष्टि से 'दूसरा सप्तक' पर कोई प्रश्नचिह्न नहीं लगाया जा सकता। तारसप्तक जहाँ अलग अलग विचारों को प्रस्तुत कर पाया था, वहाँ उनसे गीतात्मकता, भावुकता और छायावादी शब्दावली का बहिष्कार नहीं कर सका। 'दूसरा सप्तक' का महत्व इसलिए है कि इसकी रचनाएँ 'तारसप्तक' की रचनाओं से अधिक ईमानदार हैं जिनमें काव्य का वास्तविक गुण—उसका हृदयपक्ष प्रधान है। भवानीप्रसाद मिश्र और शकुन्त माथुर को छोड़कर अन्य पाँच कवि साम्यवाद से प्रेरणा ग्रहण करते हैं पर इनमें (शमशेर को छोड़ कर) तारसप्तक की तरह बुजुआ भावों की गुमठी को काट कर गाने का कोई प्रयास नहीं मिलता।

केवल नयी कविता की समीक्षा से सम्बन्धित पत्रिकाओं में 'नयी कविता' (त्रैमासिक) का महत्वपूर्ण योगदान है जिसका प्रकाशन सन् '५६ से आरम्भ हुआ। नयी कविता—या वह नये साहित्य—को प्रोत्साहन देने वाली पत्रिकाओं में जो पत्रिका कम और संकलन अधिक है सन् '५२ में प्रकाशित 'नये पत्ते' और सन् '५५ में प्रकाशित 'निकष' (अर्द्ध वार्षिक) का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये तीन नाम सही अर्थों में नए साहित्य के संवर्द्धन से सम्बन्धित हैं। एकदम ताजा कवियों को प्रकाश में लाने, उनकी कविताओं की आलोचना प्रस्तुत कर कविता

को एक व्यवस्थित दिशा देने के पीछे इन पत्रिकाओं का अनुपम योगदान रहा है।

'कविता' नाम से सन '५४ मे अजितकुमार और देवीशकर अवस्थी के सम्पादन मे वष की श्रेष्ठ कविताओं का सयोजन हुआ। नयी और पुरानी, दोना ही पीढियो को एक साथ प्रस्तुत करने का स्तुत्य प्रयास किया गया। इसमे किसी प्रकार की आलोचना अथवा किसी प्रकार के पक्षपात का प्रश्न ही नही उठता, कविता के शुद्ध सकलन होने के कारण बहुत सी ऐसी रचनाएँ जो अप्राप्य थी, सुलभ हो गइ। सन '६३ से यह योजना फिर आरम्भ हुई और इस बार अजितकुमार को विश्वनाथ त्रिपाठी का सहयोग मिला।

इन पत्रिकाओं के अतिरिक्त पाटल, अवतिका, अजन्ता और भारती पत्रिकाओं का सहयोग भी पर्याप्त रहा। सन '५८ के आसपास प्रकाशित 'लहर' मे विदेशी कविताओं की समकालीन धाराओं पर विचारोत्तेजक लेख निकले। कहानी और कविता दोनो को सतुलित स्थान देने वाली इस पत्रिका म नए कवियो को उपेक्षा नही मिली।

दूसरा और तीसरा सप्तक के मध्य की पहली कडी सन '५२ मे प्रकाशित धर्मवीर भारती की 'ठण्डा लोहा' है। भारती की कविताओं का आरम्भिक कोमल और भावप्रवण रूप ही हम इसमे मिलता है जिसमे दूसरा सप्तक में सकलित कविताए भी सम्मिलित हैं।

सन ५४ मे अज्ञेय की 'बावरा अहेरी' प्रकाशित हुई। सन् '५५ मे दो अत्यन्त महत्व पूण कृतिया सामने आइ—पहली थी आज के अधेरे युग को उजाले की कथा के रूप मे प्रस्तुत करने वाली भारती की 'अधायुग' और दूसरी थी जगदीश गुप्त की 'नाव के पाँव'। जगदीश गुप्त की कविताओं मे पराजित व्यक्ति की हताशा तो है किन्तु उठ खडे होने का साहस भी है।

सन '५६ में जो कृतिया सामने आइ उनके महत्त्व के विषय मे कोई विवाद नही है। कृतिया हैं कुवर नारायण की 'चक्रव्यूह' और भवानीप्रसाद मिश्र की 'गीतफरोश'। चक्रव्यूह मे जीवन की भावनात्मक जटिलता के बीच उसकी विषमताओ का स्वय अनुभव करते हुए एक सुस्थिर, गभीर जीवन-दृष्टि पाने के लिए ईमानदारी के साथ यत्न स्पष्ट हैं और गीतफरोश की सहज अभिव्यक्ति म मुँहफट पर कही-कही नितान्त वैयक्तिक कविताओं मे जो ताजगी मिलती है वह अन्यत्र सुलभ नही है।

सन '५७ मे अज्ञेय की 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये' और प्रभाकर माचवे की 'स्वप्नभग' का प्रकाशन हुआ। प्रकाशन की दृष्टि से सन '५९ सबसे अधिक समृद्ध है। इस वष तीसरा सप्तक के अतिरिक्त जो कृतिया उल्लेखनीय हैं उनमे प्रभाकर माचवे का 'अनुक्षण' जगदीश गुप्त का 'शब्दश', भारती का 'सात गीत वष' सर्वेश्वर का पहला सकलन 'काठ की घटिया' और अज्ञेय का 'अरी ओ करुणा प्रभामय' ह।

तीसरा सप्तक के विवेचन से पहले उन महत्वपूण पत्रिकाओं का उल्लेख कर दिया जाए जो सन '६० के बाद से नयी कविता के सवद्धन म हाथ बँटा रही हैं। इनमे सबसे पहले 'माध्यम' (सन ६४ स प्रकाशित) का उल्लेख आवश्यक है। इसके अतिरिक्त अब तक तो नयी कविता का प्रतिनिधित्व करने वाली पत्रिकाएँ इस वेग से प्रकाशित हो रही हैं कि उनके महत्त्व का अनुमान लगाना भी कठिन होने लगता है पर इस भीड म नए आधारयुक्त, विचार प्रधान और नयी प्रवृत्तियो को स्वर देने वाली पत्रिकाओं म नई धारा, विग्रह वातायन, उत्कर्ष, अनु-

वंध सत्ता, मतान्ध और आधार के नाम विशेष रूप से लिए जा सकते हैं।

कविता के पटन पर ही पंजाब विश्वविद्यालय की ओर से सन् ६७ में 'अभिव्यक्ति' का प्रकाशन हुआ है। अभी उसका एक ही अंक प्राप्त है पर नयी कविता को सही प्रतिनिधित्व देने की दृष्टि से उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

तीसरा सप्तक के प्रकाशन तक नयी कविता पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित हो चुकी थी, भले ही कवि अभी तक अपने को किसी वाद के अन्तर्गत बाँधे जाने के लिए प्रस्तुत नहीं थे। तीसरा सप्तक की भूमिका में इस कविता को संपादक ने 'नयी कविता' कहा है। वास्तव में प्रयोगवाद नाम के प्रति इन कवियों का आग्रह बिलकुल नहीं है। नयी कविता अपनी अभिव्यक्ति, प्रेषणीयता और उपलब्धि की दृष्टि से प्रयोगकालीन कविता से आगे की स्थिति है। दोनों में ऐतिहासिक दृष्टि से घनिष्ठ सम्बन्ध है, साथ-साथ पर्याप्त अन्तर भी है। प्रयोगशील कविता में प्रयोग तथा अन्वेषण का भाव परम्परा से विद्रोह के रूप में स्वीकार किया था पर नयी कविता में यह उसकी प्रकृति है। प्रयोगशील कवि इस संघर्ष में भी अपने मन से द्विविधा को नहीं निकाल पाए थे। मर्यादा और मूल्यों के बीच संघर्ष में आज का कवि भी संक्रान्तिकालीन तनाव और द्विविधा से ग्रस्त ही है किन्तु प्रयोगशील कवि अपने समय के प्रति निश्चित नहीं था जबकि आज का कवि अपनी सारी निराशा के बाद भी अपने व्यक्तित्व के प्रति आस्थावान है।

प्रयागनारायण त्रिपाठी के काव्य की बुनियाद ठोस धरती है जिसमें अज्ञेय के काव्य का पर्याप्त रंग दिखाई पड़ता है पर इनके काव्य का यथार्थ अनुभूति के प्रति न्याय नहीं कर पाया है। नयी कविता को लेकर आधुनिक संवेदना का जो प्रश्न उठाया जाता है उसका उत्तर प्रयागनारायण त्रिपाठी की कविताओं के पास है और संवेदना की यह आधुनिकता किसी सीमा तक बुद्धि के लिए दुर्गम हो गई है कविता में जो सहजता होती है, उस सहजता के स्तर पर ये कविताएँ पूरी नहीं उतरती।

कीर्ति चौधरी की कविताओं में सहजता भी है और अनुभूति की प्रामाणिकता भी। उनकी कविताओं में सुबह की हवा जैसी ताजगी है। कविताओं की अन्तिम पंक्तियाँ किसी प्रौढ़ बुद्धि की प्रतीक हो जाती हैं जबकि आरम्भ में वे बचपन के भोलेपन को अभिव्यक्त करती हैं। आधुनिकता, दर्शन, विचारों या कृत्रिम आभिजात्य से उनकी कविताएँ मुक्त हैं।

मदन वात्स्यायन की कविताएँ वास्तविक अर्थ में मध्यवर्गीय समाज की प्रतिनिधि हैं। यद्यपि कविता में रस विच्छिन्न कविता नहीं है किन्तु रस [illegible] या परम्परित रूप में वहाँ नहीं दिखाई पड़ता। [illegible] मन का अनुभूति [illegible] [illegible] कर गया है जो [illegible] [illegible] का [illegible] करता है। नयी कविता में रस का [illegible] अभी नहीं [illegible] स्पष्ट है।

मदन वात्स्यायन ने अपनी कविता में [illegible] वातावरण की [illegible] को [illegible] किया है। उनका [illegible] कहना है [illegible] [illegible] विशेषता है। उनकी कविताएँ [illegible] के [illegible] हैं किन्तु आधुनिक [illegible] [illegible] [illegible] था। [illegible] [illegible] [illegible] है और [illegible] [illegible] [illegible] हुई है।

केदारनाथ सिंह की कविताएँ संग्रह की सभी कविताओं से एकदम अलग हैं जिन्हें पढ़ कर ऐसा लगता है कि सदियों से बन्द कमरे में रहने वाला कोई व्यक्ति पहली बार सूरज की रोशनी को देख रहा हो। केदार की कविताएं शहर और मशीनों की पचरपचर से अलग गाँव के खुले वातावरण की महक की कविताएं हैं जिनमें "रवीन्द्रनाथ और येटस के स्वर कुछ आधुनिक स्वर, नए—केदार के अपने साँचे में ढले हुए मिलेंगे। एक टटकापन उनके, प्रकृति के रोमानी से चित्र में मिलेगा।"[1]

सप्तक के अंतिम तीन कवि—कुँवर नारायण, विजयदेव नारायण साही और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना वास्तव में नयी कविता का सही प्रतिनिधित्व करते हैं। इनमें नयी कविता के सभी आयाम किसी न किसी रूप में मिल जाते हैं। कुँवरनारायण की कविताएं अस्तित्व की आस्था से सम्बंधित हैं। जब हम अनस्तित्व की मूलवेदना की भयानकता को समझ लेते हैं उस समय व्यक्ति स्वयं को जीवन की अनिश्चितता और मृत्यु की निश्चितता के मध्य एकदम अकेला पाता है। अस्तित्व पर 'क्या', कैसे और 'क्यों' के प्रश्नचिह्न कुँवरनारायण की कविता के मूलस्वर है।

विजयदेव नारायण साही की कविताओं में नयी पीढ़ी के आक्रोश का परिचय मिलता है। कुण्ठा आक्रोश और हर प्रकार की टूटन और घुटन के साथ ही उनकी कविताएं बुद्धि और मन दोनों के संतुलन को बनाए रखती हैं।

सर्वेश्वर की कविताएं शहर से गाँव तक के संदर्भ को लेकर फैली हैं। पुराने से अपने को काट कर एक नया अध्याय शुरू करने का आभास सब में मिल जाता है।

दूसरा सप्तक में अज्ञेय ने तारसप्तक में प्रतिपादित स्थापनाओं की व्याख्या की है जिसमें काव्य की अभिव्यक्ति की ओर उनका ध्यान अधिक रहा है। जब वे कहते हैं कि प्रयोगों का महत्त्व कर्ता के लिए चाहे जितना हो, सत्य की खोज, लगन उनमें चाहे जितनी उत्कट हो, सहृदय के निकट अप्रासंगिक है—उस समय उनका बल अभिव्यक्त सत्य पर है। उन्हें इस बात का आभास भी है कि व्यक्ति सत्य की स्थापना करके भी आज के काव्य के सम्बन्ध में उसकी संगति प्रतिपादित नहीं की जा सकती, उनका कहना है—दूसरा सप्तक की भूमिका को इससे आगे जाना चाहिए। दूसरा सप्तक और तीसरा सप्तक के प्रकाशन के मध्य इस काव्यधारा ने एक निश्चित दिशा ग्रहण की है। 'तीसरा सप्तक' में काव्य प्रवृत्तियों की स्थापना के स्थान पर उनके मूल्यांकन की समस्या ही प्रधान हो गई है।

(ख) गुजराती नयी कविता ऐतिहासिक क्रम विकास

गुजराती नयी कविता का इतिहास अभी काफी ताजा है। नयी कविता का अर्थ वहाँ गांधीयुगीन कविता के बाद उभरी वह आधुनिक अभिव्यक्ति है जो परम्परागत काव्य रूपों, काव्य विषयों के साथ ही नवीन प्रयोगों और काव्य के नए आयाम खोजने में भी विश्वास करती है। गुजराती नयी कविता का स्वरूप बहुरूपी है। मध्यकालीन भक्ति से पूर्ण गीतों, महल और झोंपडी के सह अस्तित्व तथा अमूर्त और अतिवयक्तिक (सुरियलिस्टिक)

---

१ देवीशंकर अवस्थी विवेक के रंग पृष्ठ १००।

मालूम होता है उनकी वे अनिवार्यताएँ हैं जिनमें से किसी एक को भी छोड़ा नहीं भी जा सकती। पर नयी कविता का इतिहास गुजराती में उतना प्राचीन भी नहीं है जितना हिन्दी नयी कविता का है। गुजराती में नयी कविता का विकास मुख्यतः पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ है, जिनमें से कई अनियतकालिक रहीं।

प्रारम्भ में कई श्रेष्ठ कविताओं के संकलन का प्रयास सुरेश दलाल ने 'कविता' में पूर्ण किया। नयी और पुरानी दोनों ही पीढ़ियों को उसमें प्रतिनिधित्व मिला। किसी प्रकार का क्रमबद्ध उसमें नहीं मिलता, पर सन् ५२, ५३, ५४ और ५५ के कविता में सन्तुलन का स्वर किसी भी भाँति किसी विशिष्ट परिवर्तन की सूचना नहीं करता था। सन् ५६ की 'कविता' में उमाशंकर जोशी की गुजराती कविता छिन्न भिन्न हूँ प्रकाशित थी। मैं छिन्न भिन्न हूँ में सामयिक उच्छ्वसित रोमानी और भावुक कविताओं से हट कर पहली बार व्यक्ति अपने परिवेश और उसमें सामञ्जस्य के प्रति सजग हुआ पर परिणाम यही था कि वह दुर्भाग्य रहा। मौन मूक कर आँधी का ऊपर से गुजर जाने की प्रवृत्ति बहुत दिन तक पोषित रह चुकी थी छिन्न भिन्न होने का आभास उस स्थिति से उबरने पर हुआ। उस कविता ने उस विषय का एक नया क्षेत्र खोल दिया था। (यह कविता उमाशंकर जोशी के नवीन काव्य संकलन 'अभिज्ञा' में संकलित है)

इसके अतिरिक्त मुख्य रूप से जिन कविताओं के स्वर और अभिव्यक्ति में नयापन था—उनमें सन् '५७ में 'कुमार' में प्रकाशित नलिन रावल की 'स्मृति' है। विषय की दृष्टि से कविता में नयापन नहीं है लेकिन उसकी अभिव्यक्ति और संवेदना को उभारने की शक्ति अनूठी है। अतीत की घुटे क्षण किस प्रकार चुपके से पीछे से आकर आँखें मूँद लेते हैं और फिर व्यक्ति कितना उदास हो जाता है। इस कविता की विशेषता तो यही है कि गीत की भावुकता के लिए जहाँ पूरी तरह से अवकाश है वहाँ उसे कुछ ऐसा रूप दे दिया गया है जिससे वह एकदम उभर कर सामने आ जाती है।

नलिन रावल की ही एक अन्य ध्यानाकर्षित करने वाली कविता सन् ५८ के 'कविलोक' में प्रकाशित 'प्रेत का उद्गार' है। यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है। ऐसा नहीं है कि सन् '५६, ५७ और '५८ के अन्तराल में यही गिनी-चुनी कविताएँ रची गई हैं अपितु मेरी समझ में ये कविताएँ गुजराती की नयी कविता की विकासशीलता की प्रमाण हैं।

सन् ५६ तक कविता के स्वरूप में विशेष प्रगति हुई, अपितु यह कहना ठीक होगा कि अब तक कविता व्यक्ति की ओर पूर्णतः उन्मुख हो चुकी थी। पर नयी कविता का प्रथम व्यक्तिगत संकलन सुरेश जोशी का 'उपजाति' है जो सन् ५७ में प्रकाश में आया। अब नयी कविता का आरंभ किस कवि से मानना चाहिए—यह विषय ही पर्याप्त विवादास्पद है। हरिश्चन्द्र भट्ट के 'स्वप्न प्रयाण' को नयी कविता की पृष्ठभूमि तैयार करने वाला काव्य कहा जाता रहा और कई प्रह्लाद पारीख की 'बारी बाहर' में व्यक्त अकेलेपन को भविष्य की कुण्ठाओं का मूल मानते हैं। पर वास्तविकता तो यह है कि न तो स्वप्न प्रयाण अपने अभिजात्य संस्कार से मुक्त हो सका भले ही उससे पहली बार गुजराती साहित्य को रिल्के और ईलियट का परिचय मिला और न ही 'बारी बाहर' के विरहजनित अकेलेपन को हम किसी भी प्रकार आधुनिक संवेदनाजनित ही कह सकते हैं।

'उपजाति' के प्रकाशन के वर्ष ही ('५७ में) नयी कविता को पाठक तक पहुँचाने वाली एक पत्रिका प्रकाशित हुई—कविलोक। उससे पहले 'कुमार' और 'संस्कृति' पत्रिकाओं में यदाकदा नयी कविता के स्वर मिल जाते थे—पर कविलोक में रचनाओं का स्वर आधुनिक ही रहता था। पैम्फलेट के आकार की इस द्वैमासिक पत्रिका में नयी कविता की विवेचना पर भी विशेष आग्रह रहता है और प्रायः सभी नए कवि जिन्हें प्रकाश में लाने का दाय 'कुमार' का है—कवि लोक के माध्यम से ही लोकप्रिय हुए।

सन् '५८ में दो संग्रह प्रकाशित हुए, एक निरंजन भगत का '३३ काव्य' और दूसरा हसमुख पाठक का 'नमेली साझ'। निरंजन का स्थान गुजराती कविता में वही है जो हिन्दी में नरेन्द्र शर्मा और बच्चन का है। एक पीढ़ी पुराने होने पर भी उनके कविताओं के इस नवीनतम संकलन का स्वर नयी कविता के आधुनिक भाव बोध के बहुत समीप पड़ता है।

जहां तक 'नमेली साझ' का सम्बन्ध है, हसमुख का काव्य शहरी सभ्यता के उलझाव से सम्बन्धित है। व्यक्ति की पाषाणी भावनाएं, प्रकृति का आश्रय पाने के बाद भी किसी प्रकार पिघलने का नाम नहीं लेती हैं। हसमुख की कविताएँ किसी सीमा तक अमूर्त अधिक हैं पर अपनी अमूर्तता के बावजूद उनमें निहित उनका रोमानी स्वर छिपता नहीं।

सन ५९ में फिर एक क्रांतिकारी पत्रिका का प्रकाशन हुआ। इस बार 'क्षितिज' के प्रकाशन ने कवि लोक का छूटा हुआ काम अपने हाथ में ले लिया (हाल में ही क्षितिज का प्रकाशन बन्द हो गया है)। क्षितिज कविता के लिए नए क्षितिजों को सामने लाया। विदेशी कविताओं, रचनाओं के अनुवाद, काव्य से सम्बन्धित पाश्चात्य आलोचकों के लेख सभी को इसने स्थान दिया। *क्षितिज' के लिए एक बात विशेष रूप से कही जाएगी कि गुजराती की* सुर्रियलिस्टिक और अस्तित्ववादी रचनाओं को जितना प्रोत्साहन इस पत्रिका ने दिया उतना अन्यत्र दिखाई नहीं पड़ता।

एक बात स्वीकार करनी पड़ेगी कि गुजराती नयी कविता का विकास बहुत ही धीमी गति से हुआ है किसी पत्रिका में दस पन्द्रह रचनाओं के अतिरिक्त—जहां तक वैयक्तिक संकलनों का प्रश्न है उनके प्रकाशन की गति सन ६२ तक तो दो वर्ष के अन्तराल में एक संग्रह का प्रकाशन हुआ है, इसके बाद तो यह गति और भी मंद हो गई है।

सन '६० में सुरेश जोशी का दूसरा संग्रह प्रत्यंचा प्रकाशित हुआ। प्रत्यंचा' आधुनिक परिवेश से उत्पन्न जिज्ञासाओं से उद्भूत कविताओं का संकलन है। ईश्वर के अस्तित्व को भ्रांति मानते हुए भी ईश्वर से मुक्ति न पाने वाला व्यक्ति स्वयं भी जिस भ्रांति में रहता है, वह प्रत्यंचा में स्पष्ट है। पर इसके अतिरिक्त भी कविताओं का रोमानी (*भावुक नहीं*) स्वर और फूलों पर व्यक्त उनकी अभिव्यक्तियां ताजी और अछूती हैं। चार विडम्बना, बिन्दु, धीरीते सूर्य अने चन्द्र और प्रार्थना अपने नवीन बिम्बों और आधुनिक भावाभिव्यक्ति के लिए उल्लेखनीय हैं। यहां एक बात समझ में नहीं आई कि संग्रह के अन्तिम पृष्ठ पर लिखे वाक्य—'इससे पहले का काव्य संग्रह 'उपजाति' अब से रद्द मानिए' का क्या अर्थ है?

सन् '६२ में नलिन रावल का संकलन उदगार प्रकाशित हुआ जिसमें उनकी सन '५३ से सन '६२ तक की कविताएं संकलित हैं जिसकी अधिकांश कविताएं प्रकृति से सम्बन्धित हैं ५८१ की साझ पर दो कविताएँ हैं (*एक का उल्लेख 'स्मृति' नाम से पहले हो चुका है*) (

'उद्वेग' नाम की कविता अपने प्रतीकों के कारण मनस्तल की मर्मस्पर्शी कविताओं में आती है।

सन् '६२ में ही 'रुचि' पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। नए साहित्य के प्रति पाश्चात्य तत्वों और पश्चिम की उल्लेखनीय कृतियों का परिचय देना इसका मुख्य उद्देश्य रहा, जिसने नयी कविता की उमड़ रही लगने वाली विचारधारा को समझ सकने और उसके प्रति न्यायपूर्ण दृष्टि रखने को एक आधार दिया।

सन् '६३ कविता की दृष्टि से तो नहीं अपितु 'ग्रंथ' पत्रिका के प्रकाशन की दृष्टि के लिए उल्लेखनीय है। नयी कविता और नए साहित्य की आलोचना सबसे दोषरहित प्रणाली ही में प्राप्त हुई थी। ग्रंथ मुख्य रूप से कृतियों की आलोचना पर ही बल देता है, कृतियों के तटस्थ मूल्यांकन द्वारा उनके विषय में एक सही दृष्टिकोण निर्धारित करता है।

सन् '६४ में ज्योतिष जानी की 'फीण नी दीवालो' प्रकाश में आई। ज्योतिष ने नयी कविता के नए रूप को आकार दिया। उनकी कविता वर्णनिक गुण ... की कविता है जो प्रतीकों के आधार पर खड़ी है। संग्रह का नाम है फेन की दीवारें, क्षणिक फेन, पर दीवार तो दीवार है कितनी भी सूक्ष्म या कितनी भी पारदर्शी क्यों न हो। और ऐसी ही अनगिनत दीवारें हर किसी के चारों तरफ घिरी हुई हैं।

सन् '६५ में लाभशंकर ठाकुर की 'वही जतो पाहण रम्य घोष', दिलीप कोठारी की 'शिल्प' और एक पत्रिका 'कृति' का प्रकाशन हुआ।

पुस्तकों के प्रकाशन की दृष्टि से सन् '६६ सबसे महत्वपूर्ण वर्ष है। इस वर्ष कम-से-कम चार महत्व की काव्य-कृतियां सामने आई। इनमें प्रियकांत मणियार की 'स्पर्श', हरीन्द्र दवे की 'मौन', आदिल मसूरी की 'पगरव' और सुरेश दलाल की 'एकांत' प्रकाशित हुईं। 'सज्ञा' पत्रिका का प्रकाशन वर्ष भी यही है।

सन् '६७ में रघुवीर चौधरी की 'तमसा' प्रकाशित हुई है और सन् '६८ से एक पत्रिका 'कविता' का प्रकाशन भी आरंभ हुआ है। वार्षिक 'कविता' और मासिक 'कविता' के सम्पादक एक ही हैं पर दोनों के स्वरूप में बहुत अन्तर है।

इन पत्रिकाओं के अतिरिक्त नयी कविता के विकास में योग देने वाली अन्य पत्रिकाओं में 'सदर्भ' और 'रे' दोनों ही अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। 'संदर्भ' ने नयी कविता के आधुनिक स्वर को उभारने में मदद की और 'रे' पत्रिका का स्वर अतियथार्थवादी अधिक था। उस अनियतकालिक पत्रिका के माध्यम से (अब वह पत्रिका बन्द हो गई है) जो स्वर उभरे उनका स्वर हिन्दी के अकवितावादी स्वर से बहुत कुछ मिलता है अन्तर यही है कि 'दमित भाड़ियां और नुचे हुए अंगों की बीभत्सता उसमें नहीं है।

गुजराती में नयी कविता का जो स्वरूप हमें पत्रिकाओं के माध्यम से प्राप्त हुआ है वह उतनी स्पष्टता से व्यक्तिगत संकलनों में नहीं उभर सका। संकलनों की गति बहुत ही मन्द है।

अपने विकास के इन वर्षों में कविता का स्वरूप काफी बदल गया। विचार और दृष्टि को तो नए आयाम मिले ही, नयी मान्यताओं और नये प्रतिमानों की स्थापना भी हुई। इससे पहले कविता केवल हृदय की थी, मस्तिष्क से, विचार से उसका विशेष सम्बन्ध

ही था—पर आज की कविता भावुक मन की अभिव्यक्ति मात्र नही है। शिल्प के क्षेत्र मे हुए परिवतन उतने 'मुहफट' तो नहीं है जितने हिदी म हैं, पर परम्परित गीत पद्धति के साथ साथ लयबद्ध पर छदविहीन, मुक्त छदीय रचनाएँ नयी कविता के माध्यम से ही गुजराती को प्राप्त हुई हैं।

साराश यह कि गुजराती नयी कविता को अभी बहुत सी सभावनाओ का पूरा करना है, अभी उसका विकास हो रहा है, उसके मूल्याकन का प्रश्न उसके पर्याप्त प्रौढ हो जाने पर होगा।

नयी कविता पर पाश्चात्य कविता का प्रभाव और उसकी धाराएँ

किसी कविता पर किसी अन्य भाषा की कविता का प्रभाव कहने का तात्पय यह नहीं है कि कवि अन्य भाषा के काव्य के कथ्य को अपनी भाषा मे प्रस्तुत मात्र कर देता है। प्रभाव कोई दृष्टिगत होने वाला भाव नही है अपितु कवि के विचारो उसके चिन्तन को प्रेरित करना, उसे एक नयी दृष्टि देना प्रभाव होता है। यह कदापि आवश्यक नहीं है कि किसी से प्रभावित कवि उस काव्य के भाव और शिल्प दोनो को ही यथारूप स्वीकार कर लेगा—या जिससे भी प्रभाव ग्रहण किया जाए उसे पूरा ही स्वीकार किया जाए। नयी कविता के लिए यह बात प्राय कही जाती रही है कि पश्चिम से उधार ली हुई दृष्टि को भारतीय आवरण दे दिया गया है। बात एक सीमा तक सही है कि अधिक जानने के प्रयास म कवि की अनेक जिज्ञासाओ का पश्चिम न समाधान किया है। यदि आज के भाव बोध का तारतम्य हम वेदात और वष्णव दशन म नही पा सकते, यदि आज के जीवन की गति पश्चिम की तीव्रता लिए हुए है तो पश्चिम से प्रश्नो का उत्तर मिल जाना क्या सवथा अनुचित है? प्रभावित होना या प्रभावित करना बडी ही नसर्गिक प्रतिक्रियाएँ हैं।

नयी कविता के आरभिक चरण पर हम ईलियट, पाउड, यीटस और लारेंस के प्रभाव को स्वीकार करते है। समय की दृष्टि स ये तीनो ही साहित्यकार आज के कवि नहीं है। हिदी साहित्य मे जो समय छायावाद का है, अग्रेजी और अमेरिकी साहित्य म इनका है फिर क्या यह आश्चय की बात नही है कि समय की दृष्टि से पिछडे हुए साहित्यकारो का प्रभाव क्यो ग्रहण किया गया है? उत्तर इसका एक ही है कि भारत की बौद्धिक प्रगति आज उस सीमा पर पहुँची है जहा ये लोग आज से पतीस चालीस वष पहले थे।

पश्चिम की कविता को अनेक पीढिया के लिए एक नयी सवेदना देने का श्रेय दो अमेरिकनो को था—टी० एम० ईलियट और एजरा पाउड और एक आयरिश—डब्ल्यू० बी० यीटस।

पाउड ऐसे कवि थे जिन्होंने पश्चिम की कविता को एक भव्य ऐतिहासिक कल्पना दी और अपने शब्दो द्वारा अनको बीते हुए समय साकार कर दिए। पाउड के काव्य का कटु स्वर जो ईलियट की आरभिक कविताओ मे और अधिक मुखरित था—उतना महत्त्वपूण नही था, जितना कि भाषा का नया और क्रातिकारी प्रयोग।

ईलियट की प्रसिद्ध कृति वेस्टलण्ड का प्रकाशन १९२० के आसपास हुआ था जिसने युद्धोत्तर पीढ़ी की हताशा को बहुत अच्छी तरह स अभिव्यक्त किया। अपनी आत्मकथा

Annals of innocence and experience की भूमिका म हरबट रीड ने लिखा है कि जो परिवेश वेस्टलैंड जैसी कविताओ के लिए उत्तरदायी है वह मेरे विचार म युद्धो के मध्य के वष हर एक के द्वारा व्यथ ही गँवा दिए जाते हैं। मैं यह जानने का दावा नही करना चाहता कि इन वर्षों को कसे स्वीकारात्मक बनाया जा सकता है। हमारे विरुद्ध जो शक्तियाँ हैं वे मानवीय न होकर राक्षसी है—आर्थिक परिवतन की अधी शक्तियाँ, विश्वास और तक की सुरक्षा हमे छोड गई है।[1]

वेस्टलैंड केवल असहायावस्था के नकारात्मक भय को ही अभिव्यक्त नही करता अपितु ठोस विश्वास न सही ऐसे विश्वास की अनिवायता को स्वीकार करता है जो हम ऊहापोह से छुटकारा पाने के लिए किसी आध्यात्मिक शक्ति का माध्यम स्वीकारता है। वसे एश वेडनस्ड म ईलियट मे एक स्पष्ट ईसाई दृष्टिकोण प्राप्त होता है। वयक्तिक त्रास ने ईलियट को चच की ओर उन्मुख किया और एश वेडनस्डे की रचनाए उनकी आरम्भिक रचनाओ की भाति हमारे समय के सामाजिक बिखराव का नही अपितु वयक्तिक दृष्टिकोण का आलेखन करती हैं।

अमरीकी मानवतावादियो के दाशनिक विचारो पर अपने एक निबन्ध म उन्होने स्पष्ट किया है कि धार्मिक विश्वास की बौद्धिक स्वीकृति व्यक्ति की इच्छा शक्ति के अनुरूप अपने को ढाल लेने की प्रवृत्ति और भावनाओ और सवेदनाओ से पहले आती है और एश वेडनस्डे को आशिक रूप म अन्तरात्मा की उसी धीमे और पीडामय शुद्धता का प्रमाण माना जा सकता है। 'फोर क्वारटेट्स' उनकी लम्बी कविताओ का नवीनतम सकलन है जिसम समय के आयाम म या मनुष्य के इतिहास का सम्बधित ईश्वर की इच्छा म परिणत होने से सम्बधित दाशनिक साधना का आभास मिलता है। इन कविताओ म वयक्तिक स्मृतियो और वयक्तिक जीवन के तनावपूण या ऊचे क्षणो पर ध्यान का महत्व स्थापित किया गया है।[2]

अज्ञेय के काव्य का क्रमिक विकास ईलियट के काव्य के अनुरूप ही हुआ है अन्तर केवल इतना है कि ईलियट अत मे धार्मिक अधिक हो गए है जबकि अज्ञेय के काव्य म

---

1 Herbert Read Annals of Innocence and Experience preface—'I consider that no man s years between the wars as largely futile spent unprofitably by me and all my kind I do not pretend to know how we could have made them more positive, the forces against us were not human but satanic—blind forces of economic drift, with the walls of faith and reasons turning to air behind us '

2 In one of his essays on the philosophy of American humanists he has explained that the intellectual acceptance of a religious faith must for a man of his own temperament precede the adjustment of the will the emotions and the sensibility to their faith —20th Cent English Literature A C Ward

धार्मिकता का नही आस्तिकता का समावेश है। ईलियट के काव्य का विकास प्रुफ्राक एण्ड अन्य आजर्वेशन्स' के हल्के व्यग्य से आरम्भ होकर अनेक नकारात्मक रूप और आध्यात्मिक पडावो से होता हुआ 'फार क्वारटेटस की दार्शनिक गहराई प्राप्त करता है। इस विकास म परिवेश और अनुभवो की विविधता का महत्त्वपूर्ण दाय रहा है।

उनकी 'वेस्टलड', 'हालोमैन' और ऐश वेडनस्डे' विश्वास और स्थिरता का क्रमिक विकास हैं। उनके पहले दो नाटक स्वीनि' और 'मरडर इन दि कथेड्रल नाटकीय ऐतिहासिकता और सामाजिक पृष्ठभूमि मे उनकी धार्मिक निष्ठा का परिचय देत ह।

उनकी विद्वत्ता ससार के साहित्यो के गहरे और विशद ज्ञान से स्पष्ट होती है जिसने उनके परम्परा ज्ञान को और अधिक सुदृढ किया है। ग्रीक, लटिन, इटेलियन फ्रेंच और जमन साहित्य उनके लिए अग्रेजी साहित्य जसे ही सुलभ ह और सस्कृति की आरम्भिक शिक्षा न पूर्वी दार्शनिक विचार को समझने म उनकी मदद की। अपने स्वाभाविक झुकाव के कारण दाँते सोफोक्लीज और वर्जिल उनके लिए शेक्सपियर और ड्राइडन के समान ही महत्त्वपूर्ण हैं।

अपनी 'आफ्टर स्ट्रेंज गॉडस' पुस्तक मे उन्होने कहा, 'परम्परा ही अपने आपमे काफी नही है। इसकी भली भाति आलोचना की जानी चाहिए और कट्टरता से उसका निरीक्षण करके उसे सामयिक बनाना चाहिए। परम्परा के सभी रक्षक केवल पुराणपथी है। जो पुराणपथी और स्थायी मे अतर नही कर सकते, वे स्थायी और अस्थायी तथा आवश्यक और आकस्मिक मे भी अन्तर नही कर सकते।"[1]

वेस्टलड को प्राय २०वी शती के मोह भग और असतोष का प्रतिबिम्ब माना जाता है, जो इसमे है। अत सार्वभौमिक कविता के रूप मे इसकी सफलता ने इसका अनेक भाषाओ म अनुवाद करवाया और अन्य कवियो के कृतित्व पर इसका प्रभाव भी पडा।

वेस्टलण्ड केवल निराशा का प्रतिबिम्ब मात्र नही है अपितु आध्यात्मिक थकान का एक चित्र है। आत्मा थकी है और अपने खालीपन म पुन निर्मित होने के लिए प्रतीक्षित है। ईसाई रहस्य का यह स्वरूप ऐश वेडनस्डे म विकसित किया गया है।

ईलियट ने वेस्टलड म जो काय किया था एजरा पाउण्ड ने उससे कही अधिक विस्तत आधार को अपनाया। पाउण्ड की कविता बाह्य 'ससार से अधिक सम्बधित है, आतरिक से नहीं। पाउण्ड व कवि है जिन्होने १९१० म भी १८९० की परम्पराओ का जीवित रखा था, जो कला और सौन्दय के लिए जीवित रहे और समय की व्यावसायिक वत्ति और महान

1 "Tradition by itself is not enough, it must be perpetually criticised and brought up to-date under the supervision of what I call orthodoxy Most defenders of tradition are mere conservatives, unable to dis tinguish between the permanent and the conservatives unable to distinguish between the permanent and temporary, the essential and the accidental —After strange Gods T S Eliot,—as quoted in Contemporary English Poetry Anthony Thwaite, p 52

परम्पराओं से जीर्ण होने से हार गए।

अंग्रेज 'डिस्ट्रिब्युटिस्ट्स' के विचारों से, जो परम्पराओं का आदर करते थे और समाज में छोटे कृषक समाज में लौटने का सपना देखा करते थे पाउण्ड के विचार बहुत साम्य रखते है। पाउण्ड का परम्परा के बारे में विचार भौगोलिक और ऐतिहासिक विस्तृत फलक के बावजूद अत्यन्त सूक्ष्म और चुना हुआ है। अंत में यही निष्कर्ष निकलता है कि यह समस्त मानव इतिहास के लिए चुना हुआ उत्तर है लेकिन उस ग्रंथ में केन्टोस आधुनिक महाकाव्य ही नहीं अपितु वैयक्तिक पहुँच के प्रति घृणा होते हुए भी पाउण्ड की यह एक ग्रंथ में बौद्धिक आत्मकथा है। कण्टो के बारे में कोई अंतिम निर्णय पाउण्ड के प्रति निर्णय देना होगा और सत्य तथा भ्रम के प्रति निर्णय देना होगा। केवल यही कहा जा सकता है कि कण्टो अत्यन्त महत्त्वाकांक्षी, अत्यन्त प्रतिभामय अत्यन्त उलझी हुई कृति है। पर साथ ही नए कवियों को उससे लाभदायक शैली प्राप्त होती है।

कण्टो अभी तक की सबसे लम्बी अंग्रेजी कविता है और पाउण्ड ने इसमें यूनीफिकेशन का लक्ष्य प्राप्त कर लिया है।

यीट्स की महानता में कोई संदेह नहीं है उनके काव्य में परम्परा पर्याप्त मुखरित रूप में अभिव्यक्त हुई है। उनकी अधिकांश कविताओं का मुख्य भाव यह है कि इतिहास भाग्य पर निर्भर है और उसकी प्रकृति अपने को दोहराने की है, जिसमें अभिनेताओं की भाँति हम अपनी दुःखदायी या सुखदायी भूमिका निभाते है। जीवन के प्रति यीट्स का दृष्टिकोण भावुक है। उनकी दृष्टि में मृत्यु दूसरे जीवन के लिए एक मार्ग है वह जीवन जो शुद्ध तापसी ज्ञान से परिपूर्ण है पर फिर लौट लौटकर अपने इसी जीवन को प्राप्त करते हैं। शरीर के भौतिक जीवन के प्रति हमारा मोह वैसा ही है जैसा कि नेत्रहीन दूसरे नेत्रहीन को मार्ग दिखाता है, अर्थात् इस संसार में हमारा अस्तित्व एक खेल के अतिरिक्त कुछ और नहीं है जिसमें हम एक औपचारिक मुखौटा ओढ़े रहते है किसी गुप्त अतिमानवीय सत्य के प्रतीकात्मक अंश की अभिव्यक्ति करते हैं और दुःख की व्यथा व संसार के अन्याय से रक्षा करते हैं।

यीट्स के विषय में यह साधारणतः कहा जाता है कि कवि और मानव के रूप में उनमें दया का अभाव था और प्रथम विश्वयुद्ध की कविता को पसिव सफरिंग की कविता कहने से उनकी कठोरता ही स्पष्ट होती है। मानव अनुभूति का जो रूप कोई सशक्त और कलात्मक रूप नहीं ग्रहण करता, यीट्स ने उसकी उपेक्षा की और इस प्रकार की अनेकों मानवीय अनुभूतियाँ है जहाँ वस्तुओं को अच्छे आकार में ढालने का उनका सुझाव निरर्थक लगता है। फिर भी यह प्रश्न उठ जाता है कि कवि के रूप में उनकी महानता उनकी प्रकृति पर नहीं अपितु उनके विचारों पर निर्भर करती है। अपने समय के व्यथित लोगों के प्रति, जिनके पास कोई शैली नहीं थी उनके मन में सहानुभूति नहीं थी। अपने समय के कटु और आक्रामक आयरलण्ड में वह आयरलैंड जो योद्धाओं हत्यारों, अतिवादियों विद्रोह और गृहयुद्ध का आयरलैण्ड था यीट्स ने अपना रूमानी भावनाओं को नहीं छोड़ा। उस विध्वंस के लिए उनके मन में घृणा थी और यह घृणा 'मेडिटेशन्स इन टाइम ऑफ सिविल वार' की कविताओं में बहुत ही अच्छी तरह से अभिव्यक्त हुई है।

यह कहा जा सकता है कि यीट्स का अपना स्वभाव मानवतापूर्ण और सज्जनतापूर्ण

था यदि वह अमूर्त मानवतावादी उत्साह या प्रगतिशील भावनाओं के सामने झुक जाए पर कविता में अपने प्राकृतिक स्वभाव के विरुद्ध सौंदर्य के प्रति अपनी रुचि को कोई महानों वाला मुखौटा उन्होंने पहना दिया है। एक अर्थ में यीटस, ऐसा लगता है कि आकस्मिक घटनाओं के क्रम से गुजरे हैं और इस शती के सबसे सौभाग्यशाली कवियों में से हैं। अनुभूति और रोमानी प्रेम जाग्रत करने की यीट्स में अपूर्व क्षमता थी। महान रोमांटिक्स में यीटस अंतिम थे पर कीटस और शैली से अधिक आयु होने के कारण, वडस्वथ से अधिक रुचिकर, उलझे हुए और भावनापूर्ण होने के कारण यीटस की रचनाओं में शैली के प्रति जो सतत, स्थिर और मानवतापूर्ण सजगता मिलती है वह अन्यत्र कहीं नहीं मिलती।

डी० एच० लारेंस

विलियम ब्लैक पर एक प्रसिद्ध उद्धरण में सेम्युएल पामर ने उन्हें 'मुखौटाहीन' कवि कहा है। लारेंस को भी मुखौटाहीन कवि कहा जा सकता है। प्रायः सभी कवि किसी न किसी रूप में प्रच्छन्न रहते हैं कहीं एकाध पंक्तियों में या एक कविता में वे स्वाभाविक हो जाते हैं।

लारेंस की आरंभिक कविताएँ आत्मकथात्मक हैं और उसी शैली की हैं जो बीसवीं शती के दूसरे दशक में लोकप्रिय थी—प्रकृति की संक्षिप्त कविताएँ हैं, तुकान्त पद हैं जिन्हें लारेंस ने हार्डी और वर्डस्वर्थ से ग्रहण किया था। कविता को लारेंस ने बड़ी स्थूलता से प्रयुक्त किया है और इन कविताओं की जो अनुभूति है वह उनकी आरंभिक कहानियों और उपन्यासों में सफलता से प्रयुक्त हुई है। अपनी 'कलक्टेड पोयम्स' की भूमिका में उन्होंने लिखा है कि ये कविताएँ वह कहने का प्रयास करती हैं जिसे कहने में किसी व्यक्ति को बीस वर्ष लग जाते हैं।[1]

अपनी कमियों के बावजूद ये कविताएँ रुचिपूर्ण हैं। इनमें लारेंस की कविताओं की विशेषताएँ मिल जाती हैं। पहली है कि उनमें एक प्रकार की निरीक्षण की सशक्त ईमानदारी है दूसरी धार्मिक वृत्ति है। ब्लैकमूर के अनुसार 'लारेंस एक धार्मिक कवि हैं और उनका काव्य जीवन की पवित्र पहचान को घोषित करने का प्रयास है।'[2] तीसरी विशेषता कोमलता और भक्ति का सम्मिश्रण है।

लारेंस ने लिखा है कि उनकी कविताएँ इतनी वैयक्तिक हैं कि वे भावनात्मक और आंतरिक जीवन की कथा बन जाती हैं। वास्तव में अपनी आत्मकथात्मक कविता से मुक्त होने के बाद ही उनमें प्रौढ़ता आई थी। उनकी आत्मकथात्मक कविताओं के अंतिम चरण

1 'These poems were struggling to say something which it takes a man twenty years to be able to say'—Collected poems of D H Lawrence—Introduction, p 36

2 'Lawerence is a religious poet and his poetry is an attempt to declare and rehearse symbolically his plans of recognition of the substance of life"—Blackmur, p 297

जहाँ लारेंस की भावुकता कम होती प्रतीत होती है उनकी प्रसिद्ध sequence look we have come through म प्राप्त होता है जहाँ विवाहित युगल के मनोवैज्ञानिक सम्बन्धों के विषय म लारेंस ने कहा—'प्रेम और घृणा का यह क्रम चलता रहता है जब तक यह किसी अन्तिम निर्णय पर नहीं पहुँचता'।[1]

विकास की इस सीमा पर लारेंस ने काव्य की परम्परागत लय की उपेक्षा करनी आरम्भ कर दी थी। वह यह सोचने लगे थे कि अंग्रेजी कविता उनकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति मे बाधक होने लगी है। अभिव्यक्ति के नए प्रयोगों की खोज म छन्द म मुक्तछन्द का स्थान प्राप्त हुआ। मुक्त लय की ओर झुकाव उन्हें पाउण्ड और एमी लावल जसी बिम्बवादी श्रेणी से प्राप्त हुआ जिनसे उनका अस्थायी सम्बन्ध भी रहा। वाल्ट ह्विटमन भी इस झुकाव म सहायक रहे। इनके अतिरिक्त कहीं भीतर उन पर किंग जेम्स की काव्यात्मक गद्य म रचित बाइबिल का बहुत प्रभाव था। लारेंस की प्रतिभा बिम्बवादी या किसी भी साहित्यिक प्रवृत्ति मे जुड जाने के लिए बहुत महान थी किन्तु इससे लारेंस ने निश्चय ही बहुत कुछ सीखा। इन्होंने लारेंस को जाजियन कविता की परम्परा से पलायन करने म मदद की। लारेंस ने लिखा कि जीवन एक महान वास्तविकता है और सही जीवन-यापन हम जीवन की विभिन्नता और स्वर्गिक आनन्द से भर देता है।

उनकी कविताएँ जीवन के इसी वैविध्य से सामीप्य की अनुभूति का चित्रण करती हैं। यहाँ वे रोमांटिक कवियों के साथ को ही आगे बढा रहे थे। रोमांटिक कवियों ने पशु-जगत की और प्रकृति म यौन तत्त्वों की अवहेलना की थी। उनकी कविता प्रकृति के जीवन और लडस्केप की शांति म अन्तर नहीं करती थी। लारेंस का लक्ष्य एक सम्पूर्ण प्रकृति-काव्य की रचना करना था जिसम पक्षी, पशु, मछलियाँ यहाँ तक कि कीडे-मकौडे और वनस्पति जगत भी सम्मिलित था। ब्लकमूर को लारेंस से यह शिकायत रही कि उनमे अन्तिम दृष्टि (ultimate vision) और तपस्वी की अन्त दृष्टि नहीं थी। पर लारेंस तपस्वी नहीं थे, कवि थे और कवि का काय अन्त दृष्टि का सम्प्रेषण नहीं अपितु अपनी अनुभूति और अपने युग की सम्वेदना को कलात्मक अभिव्यक्ति देना है।

जीवन के अन्तिम दिनों म लिखी गई लारेंस की रचनाओं म विशेष प्रकार की ताजगी और प्रत्यक्षता (directness) है। इन कविताओं म एक बुद्धिमान और विनोदप्रिय व्यक्ति की आवाज सुनाई देती है, पूर्ण मोह भंग के बाद भी जो सनकी नहीं है एक व्यक्ति जो जीवन से प्यार करता है—और सभ्यता के बडे अंग द्वारा उसे बिगडता हुआ देखने पर उदास और रुष्ट हो जाता है। इन कविताओं म से कुछ जो उन्होंने जीवन के एकदम शेष भाग म लिखी थी उस तपस्वी की उक्तियों के समान हैं जिसके सामने ईश्वर और मृत्यु का गौरवमय रूप स्पष्ट है। इन समस्त कविताओं से एक ऐसे व्यक्ति का चित्र उभरता है जो बडी सहजता से व्यक्ति के विषय म अपने विचारों का प्रकट करता है।

---

1 The conflict of love and hate goes till it reaches some sort of conclusion they transcend into some condition of blessedness'— D H Lawrence, 20th Cent View series Mark Spilk p 133

जीवन के अंतिम महीनों में लिखी गई कविताओं में जीवन के उलझाव के स्थान पर ईश्वर और मृत्यु के विषय में चिन्तन प्राप्त होता है। उस समय वे ग्रीक लोगों के बारे में बहुत सोचा करते थे, क्योंकि ग्रीक कवियों को ईश्वर अथवा ईश्वरों के विषय में उलझाव नहीं थे। कहीं कहीं लारेंस ने ईश्वर को प्रकृति के पीछे की सृजनात्मक शक्ति माना है।

उनके काव्य में तात्कालिक क्षण की धड़कन निश्चित रूप से प्राप्त होती है। उनके अनुसार 'कविता सितारा या मोती नहीं है अपितु वह Plasm की भाँति तात्कालिक है।'[1] इस प्रकार की अनुभूति को कोमलता, प्रतिभा और सम्पूर्ण ईमानदारी से सम्प्रेषित करना उनका लक्ष्य था और बहुत से असफल और कई अज्ञात सफल प्रयत्नों के बाद अपनी 'साँप' (snake) और 'बादाम के फूल' (Almond Blossom) जैसी कविताओं में यह लक्ष्य उन्होंने प्राप्त कर लिया।

समसामयिक अंग्रेजी कविता

विक्टोरियन युग की एक विशेषता १९वीं शती की आध्यात्मिक और समसामयिक हर प्रकार की वृत्तियों को स्थायित्व प्रदान करना था। स्वयं अपने को वे एक ऐसे मकान का निवासी मानते थे जिसकी नींव कभी नहीं हिल सकती। घर, संविधान, साम्राज्य और ईसाई धर्म—सबको किसी-न किसी रूप में अंतिम परिणति के रूप में स्वीकार कर लिया गया था और यह सुझाने तक की अनुमति नहीं थी कि प्रगति के दौरान इन संस्थाओं में किसी प्रकार का परिवर्तन आ सकता है या ये समाप्त भी हो सकती हैं।

२०वीं शती के लेखकों ने संस्थाओं के स्थायित्व के विक्टोरियन विचार को विस्थापित कर दिया था। एच० जी० वेल्स ने वस्तुओं के प्रवाह (फ्लो आफ थिंग्स) की बात की और एक अन्य स्थान पर लिखा कि लोगों का एक समूह उस भाव से ग्रस्त है जो मीनह्वाइल से स्पष्ट होता है। आगे वे कहते हैं कि—'लोग जीवन को जिस दृष्टि से देखते हैं उसमें विश्व एक घर नहीं अपितु घर के लिए जगह मात्र रह गया है, जहां हम अस्थायी रूप में रह रहे हैं वहां पूरी तरह रहने में अभी असमर्थ हैं'। वे हमारे संसार को सभ्यता का पूर्वाभास मात्र मानते हैं।[2]

---

1 "A poetry that is neither star nor pearl but instantaneous like plasm"—Phoenix—The Posthumous Papers of D H Lawrence p 22

2 'H G Wells spoke of the flow of things and elsewhere described a company of people as haunted by the idea that embodies itself in the word meanwhile He goes on in the measure in which one saw life plainly the world ceased to be a home and become a mere site of a home on which we camped unable as yet to live fully and completely Later he speaks of all this world of ours being no more than the prelude to a real civilization"—20th Cent, English literature A C ward p 3

दोनों विश्वयुद्धों के बीच के वर्षों में एक सर्वव्यापी अन्तर पैदा हुआ था और कुछ क्षेत्रों में रूप और शैली का स्पष्ट विरोध होने लगा था। सन् '५० के स्वीकृत उपन्यास और नाटक ने साहित्यिक शैलियों को अस्वीकृत कर दिया और अकला (anti art) ने कला का स्थान ग्रहण कर लिया। इस क्रम में बेचैन उद्दामतापूर्ण रचनाओं को किसी प्रकार की याचना अथवा सुरक्षा की आवश्यकता नहीं थी—अशान्ति हर तरफ स्पष्ट दिखाई पड़ रही थी।

प्रथम महायुद्ध के दौरान जिस कविता का विकास हुआ वह कविता साधारण जनता के मध्य अत्यधिक लोकप्रिय सिद्ध हुई। यद्यपि १९२२ के आसपास अवांगार्द आलोचकों और उनके शिष्यों में १९१४-१८ की जार्जियन कविता का नकारने का फैशन सा चल पड़ा था फिर भी स्पटयुद्ध की कविताओं का संकलन पर्याप्त लोकप्रिय था।

योरप का दृश्य जैसे-जैसे अधकारमय होता गया और क्रूरता, हत्या, दबाव रोज की बात हो गए, केवल राजनीतिक भाषण और प्रचार मात्र में ही नहीं अपितु कल्पना प्रधान और सृजनात्मक साहित्य में भी विरोध का स्वर प्रबल होता गया। नयी पीढ़ी का विश्वास इस बात में था कि स्वतन्त्रता, सत्य और आदर के बिना कोई भी कला काम नहीं कर सकती वह केवल राजनीति के प्रचार का साधन मात्र हो जाती है। रूस, इटली और जर्मनी जैसे देशों में तो कलाकारों को ये निर्देश दिए गए थे कि राज्य के लिए ही उनकी कला का प्रयोग होगा। युवा पीढ़ी को राजनीति उसी प्रकार दाय में मिलने लगी थी जैसे उनके पूर्वजों को धर्म दाय में मिलता था।

उनसे पहले की पीढ़ी 'कला कला के लिए' सिद्धांत को स्वीकार करती थी और उनके त्याग (renunciation) ने साहित्य मानी जानी वाली कृतियों के साथ कोई अन्याय नहीं किया क्योंकि हास्य, व्यंग्य, शैली और निर्णय की स्वाधीनता पर उनका पूरा अधिकार था। पर '३० के कई कल्पनाशील लेखकों में समाज-सेवा का एक झूठा भाव आ गया और उन्होंने भ्रमित अवस्था में अपनी सृजनात्मक शक्ति को दबाकर समय के लिए लिखना आरम्भ किया जो ऐसी धारणाओं पर आधृत था जो प्रमाणहीन थी और किसी भी प्रमाण (evidence) से सहायता नहीं पा सकती थी।

समूह के लिए लिखने वाले लेखक, जो कविता को फिर से लोकप्रिय बनाने के लिए उसे सरलतम बनाने के प्रयास में लगे थे, ऐसी उलझी हुई बौद्धिक भाषा का प्रयोग कर रहे थे जो आम जनता के भावों को छू सकने में असमर्थ थी। वे यह मानते थे कि समाज की आवश्यकताओं के लिए कलाकार को अपनी वैयक्तिकता भुला देनी चाहिए। ई० एम० फास्टर ने लिखा है—

'पलायन के दो मुख्य कारण हैं। हम अपनी मीनारों में लौट जाते हैं क्योंकि हम भयभीत हैं, पलायन का एक और कारण है—उकताहट, निराशा और उत्तेजना—भीड़ और समाज के प्रति, विश्व के प्रति और इस धारणा के प्रति कि अकेले व्यक्ति का एकान्त उस भीड़ से प्राप्त होने वाले कुछ से कुछ अधिक सूक्ष्म 'कुछ' प्रदान करता है। समाज स्वार्थी है और अपनी सीमा तक एकांत में स्वयं को अभिव्यक्त करने वाले मानव के प्रति द्रोह करता है। समाज के प्रति की गई हर हानि को देखते हुए समाज इस स्थिति में नहीं है

कि किसी नैतिक आदोलन को आरम्भ करे । हम पृथ्वी पर इसलिए नही हैं कि अपनी रक्षा करें या समाज की रक्षा करें, अपितु हम यहा दोना की रक्षा करने के लिए हैं।'[1]

ब्रिटन के लोगो ने दूसर विश्वयुद्ध को दृढना और सहिष्णुता से झेला जिसमे १६१४ की भावना का दोहराव नही था । दूसर विश्वयुद्ध न कोई रूपट ब्रुक नही दिया और न ही कोई सिग्फ्रिड ससन या विल्फ्रिड ओवन ही । १६१४-१८ म सैनिका के गीता की बाढ सी आ गई थी जो उत्साहवद्धक भी थी पर १६३६ ४५ तक जिस काव्य की रचना हुई उसका क्षेत्र बहुत सीमित था ।

इन दो युद्धो के मध्य सारेन कीर्केगाद की रचनाओ को, अमेरिकन अनुवादो के माध्यम से, एक पाठक-वग मिल चुका था । इनके साथ ही रिल्के का आत्मकथात्मक गद्य और कविताएँ तथा फ्राज काफ्का के उपन्यास भी लोकप्रिय हो चले थे जिन्होने अग्रेजी के कुछ लेखको को मस्तिष्क की उस चेतना की ओर आकृष्ट किया जो आध्यात्मिक कठोरता या मानसिक अस्वस्थता का प्रतीक मानी जाने लगी थी। इनसे पहले की किसी भी पीढी ने मानसिक और आध्यात्मिक ऊहापोह को इतना महत्त्व नही दिया था जिससे यह बात जड पकडती गई कि प्राय सभी स्त्री पुरुष रोगी है और यह ससार एक विशाल चिकित्सालय है और असामान्यता भी सामा यता है ।

समसामयिक साहित्य निश्चित रूप से अपने युग के मानसिक और नैतिक वातावरण से प्रभावित रहता है और आज के युग मे तो यह और भी निश्चित हो गया है क्योकि आज शिक्षा गिने-चुने लोगो तक सीमित न होकर सवसुलभ है ।

सन ४० और '५० के युवा कवियो को विना कारण विद्रोही सिद्ध कर दिया गया था और जब सरकारी अणु सस्थाना के सामने 'यू स्टेटसमन' ने आणविक खतरे से रक्षा के लिए, और वमो का वन करने के लिए एक मार्च का आयोजन किया, भले ही जनता को इससे असुविधाएँ हुइ, तब सारे ही राष्ट्र की इसम सहानुभूति थी । इन जुलूसा म बीटनिक युवको

---

1 "There are two chief reasons for escapism We may retire to our towers because we are afraid But there is another motive for retreat Boredom, disgust indignation against the herd the community and the world, the conviction that sometimes comes to the solitary individual that his solitude gives him something finer and greater than he gets when he merges in the multitude the community is selfish and to further its own efficiency, is a trater to the side of human nature which expresses self a solitude Considering all the harm the community does to-day it is in no position to start a moral slanging match we are here on earth not to save ourselves and not to save the community, but to try to save the both —
E M Foster The Ivory Tower, London Mercury, p 119

और युवतियों की उपस्थिति सयाजकों के लिए ग्लानि का विषय हो गई क्योंकि Ribald निरीक्षकों के लिए बीटनिक उपहास के पात्र थे।

बीटनिकों की सामयिक पृष्ठभूमि में उपेक्षा नहीं की जा सकती चाहे इंग्लण्ड में बीटनिक १९६६ में ध्यान खींचने वाले कलिफोर्निया के बीटनिकों के प्रतिरूप मात्र हैं। अमरिका के बीटनिक वहां के समाज को लाइलाज समझते थे और उससे किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध रखने को प्रस्तुत नहीं थे। समाज की प्रतिष्ठित परम्पराओं और मान्यताओं को अस्वीकार करते थे नशीली औषधियों और अस्वस्थ यौन सम्बन्धों में अपने को भुलाए हुए थे और गृहहीन आवारों की तरह रहने में विश्वास करते थे।

अमरिका के बीटनिक (Goliards) 'मध्ययुगीन घूमने वाले विद्वानों' के आधुनिक प्रतिरूप हैं जिन्हें वयक्तिक स्वच्छता की ओर चिन्ता करने का अवकाश नहीं है। उनके प्रति सहानुभूति जिन्हें नहीं हैं, उनके लिए ये सामाजिक कीड़े (Parasites) हैं क्योंकि खाने-पीने और पहनने को जो भी उल्टा सीधा मिले उसे स्वीकार कर लेने और सडक पर हिचहाइकिंग करते समय अंगूठा दिखाकर लिफ्ट देने की आदत ने उन्हें समाज की घृणा का पात्र बना दिया। मध्यकालीन लोगों की तरह उन्होंने ईश्वर के नाम पर भीख नहीं माँगी और ईसाइयत से भागकर बौद्ध धर्म के जेन सम्प्रदाय में शरण ली।

बीटनिक वृत्ति और विचारों की अन्य चौंकाने वाली बातों का मनोविश्लेषण शास्त्रियों ने प्रचार किया है।

बीसवीं शताब्दी के छठे दशक में कई ऐसे कवि हुए जिनकी रचनाओं का बहुत स्वागत हुआ। इनमें से अनेक कवियों ने ऐसी रचनाएँ कीं, जिन्हें सच्ची या वास्तविक कविता कहा जा सकता है। ये जार्जियन कवि साहित्य में वही मान दे रहे थे जो दस वर्ष पहले की कविता से प्राप्त हुआ था। अतः इन कवियों को रूपाकार या कथ्य में कुछ नया कहने की आवश्यकता नहीं थी। फिर भी कुछ कवि परम्पराविरोधी होते हैं और परम्परा को ऐसी दृष्टि से देखते हैं जो विचार और बिम्ब के क्षेत्र को मान्यता प्रदान करती है और सीमारहित विस्तार प्रदान करती है। कविता में एक अस्पष्टता (Incomprehensibility) रहती है पर यह सम्भावना कम ही है कि प्रथम श्रेणी का कोई कवि इस वृत्ति की उपेक्षा करता हो या इसके गुण का महत्त्व न समझता हो। यह विशेषता महान कवियों की सरलतम कविताओं में प्राप्त हो जाती है—यह भले ही सदा के लिए न रहे फिर भी इसके कारण एक मानसिक वेदना अवश्य उत्पन्न हो गयी है। जार्जियन कविता की सबसे बड़ी कमजोरी है कि यह स्पष्ट तथ्यों के अतिरिक्त और कुछ नहीं सुझा पाती है। अनुभूति को व्यापक बनाने में यह कविता असमर्थ है।

इसी समय मुक्त छन्द को समर्थन प्राप्त होने लगा था। जब छन्द का स्थान एक निश्चित लयात्मक प्रवाह ले लेता तब मुक्त छन्द प्रभावशाली हो जाता है पर इससे जो शिकायत है वह मुक्त छन्द और गद्य में अन्तर की है। इसका उपचार केवल एक है कि मुक्त छन्द को शान्ति से सुना जाए जब तक यह पहचान न हो जाए कि जो कुछ पढ़ा जा रहा है वह गद्य नहीं है। अच्छी लिखी गई मुक्त छन्द की कविता के सामने बहुत सी छन्दबद्ध रचनाएं केवल एक झंकार मात्र लगती हैं।

सन १९१४ में ही इंग्लैण्ड और अमेरिका के कवियों ने इसके प्रयोग आरम्भ कर दिए

थ। य कवि स्वय को बिम्बवादी (Imagist) कहते थे। अमूतन का इन्होंने विरोध किया और शब्दों का कम से कम उपयोग करने को लक्ष्य बनाया और आलकारिक प्रयोग को कम-से कम कर दिया। उनका लक्ष्य ऐसी कविता की रचना करना था जिसकी वाह्य रेखाएँ तीक्ष्ण हों जिसका रूप सक्षिप्त हो और जिसम किसी मूर्ति के समान तराशी हुई समानता हो।

केवल प्रथम युद्ध के पश्चात वर्षों न ही रोमांटिसिज्म का अपदस्थ नहीं किया रोमान्टिसिज्म जो काव्य और जीवन पर छाया हुआ था। युद्ध के बाद के आर्थिक और आध्यात्मिक असतोष न १६२० के लगभग उदासीनता को आशावादी आदश म परिणत किया जिसके कारण रोमांटिसिज्म की पूछ नहीं रह गई और एसे लेखकों की श्रेणी सामने आई जिनम से कुछ पुन अभिजात काव्य (Classicism) की माग कर रहे थे और अन्य नए समाज की वैज्ञानिकता को सर्वोपरि समझते थे और बचे हुए लोग आचरण म विश्वास रखते थे जो प्राय अपनी अभिव्यक्तियों म बहुत पीडादायक रहते थे और मृत्यु के प्रति असाधारण मोह इनम था। ईसा के माध्यम से पुण्य की प्राप्ति और पाप के माध्यम से व्यक्ति को गर्हित करने क स्थान पर इन्होंने १६३० के लगभग मार्क्स का माध्यम के रूप म चुना।

१६३० के मुख्य कवियों मे डब्ल्यू० एच० आडेन, स्टीफेन स्पेंडर, सेसिल डे लेविस और लुई मेकनीस हैं।

समसामयिक अग्रेजी कविता

अक्तूबर '५४ के 'स्पक्टेटर' के अक मे इन दि मूवमट नामक एक लेख प्रकाशित हुआ था जिसम लेखक ने कुछ नए लेखकों की रचना प्रवत्तियों को लेकर जानबूझ कर उत्तेजित करने का प्रयास किया था। लखक न स्पष्टत कहा था कि इसम उन्होंने उन कृतियों को लिया है जो वास्तव म साहित्यिक गतिविधियों का सचालन कर रही हैं, जिनम समान विषय, शैली और जीवन को देखने का एक सामान्य दृष्टिकोण अपनाया गया था। वह मूवमट (उसका नाम ही मूवमट पड गया था) डा० लीविस और प्रो० एम्पसन म सरक्षक पा चुका था। उसके बाद एक Programme anthology का प्रकाशन हो चुका है—राबट काक्वेस्ट द्वारा सम्पादित 'न्यू लाइन्स' की भूमिका म 'कान्क्वस्ट' ने लिखा—

'यदि किसी को पचास की कविता को पहले की कविता स सक्षिप्त रूप म अलग रखना है तो सबसे महत्त्वपूण तथ्य यही है कि यह कविता किसी भी सद्धान्तिक नियम का स्वीकार नहीं करती। यह हर प्रकार की रहस्यात्मक या तार्किक अनिवार्यताओं स मुक्त है और आधुनिक दशन की तरह हर आने वाली सभावना के प्रति दृष्टिकोण अनुभव पर आधत है। विशेष व्यक्ति या विशेष घटना के प्रति उसका झुकाव हमारे समय के सामान्य बौद्धिक परिवेश का प्रतीक है। जॉज आरवेल ने आदश ईमानदारी की अपेक्षा वास्तविकता म भले हो परोक्ष रूप म आधुनिक कविता को सबसे अधिक प्रभावित किया है—इसम कोई अत्युक्ति नहीं है।

"अन यह विद्रोह पहल की समाज और राजनीति स प्रतिबद्ध १६३० की कविताओं

से था और डायलन थामस, जान वाइन और १९४० के प्रतिनिधि रोमानी कविता की भावुकता से था। किन्तु इस दृष्टिकोण का स्थान वास्तव में निश्चित विचार इनके विषय में कान्सेप्ट का विचार हमें उस की ओर उन्मुख करता है जिसे कविता द्वारा ही अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। किन्तु वास्तविक ईमानदारी हम सब में निकट न पाता है क्योंकि ये अधिक जोरों दृढ़ता से अस्वीकार करते हैं जिनसे उनका मतभेद न होता और कभी कभी अपनी प्रतिक्रियाओं का यथातथ्य वर्णन करने के लिए अधिक से अधिक प्रयत्न करते हैं। इनकी यह ईमानदारी प्राय साधारण और प्रवाहपूर्ण भाषा में अभिव्यक्त होती है। ये कवि स्वीकार करते हैं कि ईमानदारी और स्पष्टता ही अपने में सब नहीं है। उनके नई प्रकाशित रचनाओं से यह खोखलापन स्पष्ट हो जाता है। किंग्सले एमिस के अनुसार उनकी सबसे बड़ी कमी कथ्य की संक्षिप्तता और सामान्यता है।[1] डोनाल्ड डेवी के मतानुसार 'आज की अंग्रेजी कविता पहले से कहीं अधिक भव्य और शिल्प प्रधान है और मानवीय भी अधिक है किन्तु इसमें महत्त्वाकांक्षा अधिक नहीं है और उसका विस्तार कम है। एनराइट का विचार था कि दुरूहता की अतिशयता के बाद स्पष्टता एक अच्छा परिवर्तन है किन्तु उसका तब तक कुछ वास्तविक अर्थ नहीं है जब तक वह किसी विषय को स्पष्ट न कर रहा हो। ये सभी कवि भावुकता भरी रोमानी रचनाओं के विरोधी हैं और यह भी महत्त्वपूर्ण बात है कि मुख्य युवा कवि मुख्य आलोचकों का भी दायित्व निभाते हैं और यही आलोचनात्मक वृत्ति कवि के रूप में उनकी प्रतिभा को विकसित होने का पूरा अवकाश नहीं देती। कलाकार की आलोचनात्मक प्रक्रिया उसकी सृजनात्मक शक्ति से अधिक नहीं तो उसके समान ही कोमल होती है—जिनमें संतुलन रखने में कठिनाई होती है। यदि भावनात्मकता और कवि के व्यक्तित्व के अतिशय आरोपण को रोका जाए तो दूसरा रूप जड़ सौंदर्य और गंभीर अवैयक्तिकता हो जाएगा जिससे आज भी कवि पराजित हो जाता है। फिर भी ४० के कवियों के समान ५० के कवियों से व्यवहार करना अन्याय ही है क्योंकि पहले आलोचना का भले ही कुछ भी स्तर रहा हो इन्हीं वर्षों में ही ईलियट म्यूर और डायलन टामस जैसे कवियों ने अपनी सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ रची हैं।

किंग्सले एमिस और जानवेन का नाम साथ ही-साथ आता था जैसे वे संयुक्त कवि

---

1 KINGSLEY AMIS Their great deficiency is meagreness and triviality of subject matter

DONALD DAVIS English poetry today it seems to me is at its best far more elegant and workman like than it was ten years ago and also more human but it is rather unambitious, too limited in its scope insufficiently various and adventurous

ENRIGHT Clarity may in itself be a pleasant change after an overdose of ob curity—but it can have no real meaning unless it is being clear about something

—Contemporary English Poetry Anthony Thwaite, p 142

हो। यह ठीक भी है कि दोनों म समान विशेषताएँ प्राप्त होती हैं—जीवन और साहित्य के प्रति उनका दृष्टिकोण साधारण व्यक्ति जैसा ही है, किन्तु उनकी कविताओ म निश्चित और स्पष्ट अतर है। एमिस ने अनेक रूपा और विषया पर प्रयोग किया है। एमिस वेन के समान ही मामान्य नतिकता के कवि हैं।

डोनल्ड डेवी के काव्य मे सव्यता स्पष्ट है। डेवी १८वी शती के काव्य के गुणा के प्रशसक हैं और स्वय अपने काव्य से उसके सबध मे कहते हैं—

'मैंने अपने काव्य म शक्ति लाने की चेष्टा की है पर उसम भाषा के आलकारिक प्रयोग पर बल नही है और न ही परम्परागत वाक्य प्रयोग को खण्डित किया है। जबकि स्पष्ट कहा जाए तो १८वी शती के कवियो की शली मे सम्पूणता लाने की चेष्टा की है।'[1]

फिलिप लारकिन को किसी भी अन्य कवि की तुलना मे अधिक प्रशसा प्राप्त हुई है। सन ५५ मे प्रकाशित उनके काव्य सग्रह 'दि लेस डिसीव्ड' मे उनकी सन ४५ से रची कविताएँ सकलित हैं। पहली दृष्टि में ये कविताएँ अधिक गढी हुई नही लगती फिर भी उनम निश्चित सयोजन और श्रेष्ठ शिल्प प्राप्त होता है। उनम किसी कठिन स्थिति के माध्यम से कोई मिश्रित भाव सम्प्रेषित करने की अदभुत क्षमता है।

एलिजाबेथ जेनिंग्स ने निरीक्षण और साधना का एक महत्त्वपूण साधन निर्मित किया है जो किसी किसी कविता म अस्पष्ट हो जाता है। उनकी रचनाओ मे पर्याप्त गभीरता है। पर इसका यह अथ नही कि उनकी कविता ठण्डी और अमानवीय है। वे मुख्यत गति और शब्दप्रयोग की श्रेष्ठता पर निभर करती हैं। उनकी कविता मे प्रम, स्मति और लण्डस्केप को बांधने का सतत प्रयास है।

कठोर प्रकार की अपनी खोज (सैल्फ डिस्कवरी) टामस गन की कविताओ का एक विषय है। फाइटिंग टम्स की कविताओ का मुख्यत प्रेम से सम्बन्ध है पर यह प्रेम युद्ध, राजनीति या सेना के रूप म लिया गया है जिनम सुरक्षा सीमा और कठोर अनुशासन गुथा हुआ है। य सशय और भ्रमित अवस्था की कविताएँ हैं जो दढ और निश्चित परिभाषाओ द्वारा अभिव्यक्त है। 'यू लाइ स' में सकलित उनकी नवीनतम रचनाओ में विषय की विविधता तो है किन्तु उनकी शली पुरानी ही है। एक आलोचक के अनुसार अंग्रेजी कविता में बहुत दिनो के बाद उनका स्वर पहला ऐसा स्वर है जिसमें मौलिकता है।[2]

---

1 "I have tried to get force into my poems, not by concentrations of highly figurative language nor by dislocation of traditional syntax, but by mating syntax While flawlessly correct as compact and rapid as possible in the manner of 18th cent Poets —Contemporary English Poetry Anthony Thwaite, p 147

2 His is the first really original voice to have appeared in English Poetry for a long time '—Contemporary English Poetry Anthony Thwaite p 152

ऐसे भी अनेक कवि हैं जो मूवमेन्ट की सीमाओं में नहीं समा सके, वे सीमाएँ जो बहुत ही अस्पष्ट हैं। और यदि उस 'न्यू' का कोई अर्थ बाकी रह गया है तो उन सीमाओं को रोमांटिक कहा जा सकता है। 'न्यू लाइन्स' के विरोध में कुछ कवियों का 'मारविरिस्म' के नाम से एक संकलन प्रकाशित किया गया जिसका सम्पादन डैनी एब्से और हवर्ड सार्जेन्ट ने किया था। कवियों में जे०सी० हाल माइकल हेम्बर्गर, जान स्मिथ डब्ल्यू० प्राइस टर्नर डेविड राइट और डनी एब्स स्वयं थे। भले ही इनका साधारण स्तर न्यू लाइन्स से नीचा था पर संकलन के कवियों ने अच्छी कविताओं की रचना की है जिनमें जे० सी० हाल और जान सिल्किन का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

हाल की कविताएं कभी-कभी म्यूर की कविताओं के अनुरूप लगती हैं। म्यूर से हाल को अलग करने वाले तथ्यों में एक यह है कि उनके प्रतीक अपने मूल में यथार्थता हैं और बाइबिल तथा ग्रीक कहानियों से नहीं ग्रहण किए गए हैं। हाल बहुत मौलिक या उत्तेजित करने वाले कवि नहीं हैं लेकिन उनकी गीतात्मकता आकर्षक है। सिल्किन की तुलना डी० एच० लारेंस से की जाती है क्योंकि लारेंस की तरह उन्होंने भी अपनी कविता में मानव की स्थितियों के प्रतीक रूप में पशुओं का प्रयोग किया है। लारेंस ने जहाँ उन्हें मनुष्य और पशु के बीच की खाई और उनके अर्थ और स्वरूप के अन्तर को स्पष्ट करने वाले प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है, सिल्किन ने उनका प्रयोग 'शालीनता के जीवित पाराबेल' सहिष्णुता और प्रेम के रूप में प्रयुक्त किया है।

दो रोचक कवि जो हैं तो पहले के पर उन्हें मान्यता '५० के आसपास ही प्राप्त हुई—टामस ब्लैकबन और चार्ल्स काजले हैं। ब्लैकबन में प्राय यीटस की भाषा, लय और उन्हीं का दृष्टिकोण भी प्राप्त होता है। काजले में किप्लिंग के कतिपय गुण दोष और साथ ही लोकप्रियता के मानदण्ड प्राप्त होते हैं। इन्होंने सदा स्थूल सीधे बैलेड्स की रचना की है। कभी कभी ऐसा लगता है कि सामान्य होने का उनका यह प्रयास जानबूझ कर किया गया है। पर उनके काव्य में जो आंतरिक लय प्राप्त होती है वह प्रभावशाली है।

मूवमेंट से सम्बन्धित तीन कवि और है जिनकी शक्ति और वैयक्तिकता का परिचय पहले ही मिल चुका है—टेड ह्यूज, ज्याफ्री हिल और क्रिस्टाफ़र लोग।

अंतिम प्रभाव जो इन कवियों का पड़ता है उससे मालूम होता है कि इन कवियों में समानता नहीं है पर समस्त आलोचनाओं के बाद भी यह कविता महान नहीं तो भी स्वस्थ है और ऐसी छोटी कविताएं उन महाकवियों के आकस्मिक आगमन से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं जो परिस्थितियों से नहीं अपितु भाग्य से प्राप्त होते हैं।

फ्रेंच काव्य

डस्कार्तेस के बाद फ्रेंच विचारों का क्रम ही बदल गया। ठोस धारणाओं का स्थान अमूर्त तर्कों ने ले लिया। मदवे के बाद कविता में मौलिक और वैयक्तिक स्वर का स्थान औचित्य और भाषा की श्रेष्ठता ने ले लिया। १८वीं शताब्दी फ्रेंच इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और अपने गद्य के लिए विशेष उल्लेखनीय है। फ्रेंच रोमांटिसिज्म की महान विजय के बाद भी बादलेयर के समय में अकवितावादी (एंटी-पोयटिक) स्वर अपना

स्थान बना रहा था और आज तक साहित्य म छाया हुआ है। कवि का केवल कवि होना पर्याप्त नहीं है, उसे स्वय को तत्कालीन विचारो के अनुकूल प्रमाणित करना पडता है और फ्रास म यही प्रमाण ठोस और अन्तिम माना जाता है। अत अनेक फ्रच लेखक किसी-न किसी राजनीतिक गतिविधि से सम्बधित रहते हैं जो भले ही इम्पलासाइड हो या साधारण हो, समय के साथ ही अप्रासगिक और पुरानी हो जाती है।

काव्य के सत्य का झूठा रूप नही बनाया जा सकता, पर यदि वह अतिशय बौद्धिकता स भरा हुआ है तो वह चाहे आत्म सुरक्षा के लिए हो, व्यवहार की बडी-से-बडी अतिशयताओ, साधारण परम्पराओ के विरोध भाषा की गुप्तता म शरण ले सकता है। साधारण जनता म ही नही, बुद्धिप्रधान रचनाओ म भी समझ की कमी (लैक आफ अण्डर-स्टैण्डिग) मिलने के कारण बादलेयर की तरह क फ्रेंच कवियो न विरोधी रुख अपना लिया। गौटियर ने यह निणय किया कि यदि ससार कविता की अप्रासगिकता पर जोर देगा तो कवि ससार की अप्रासगिकता पर जोर देंगे। उन्होने कहा कि कला कला के लिए सिद्धात अपने आपमे एक अधूरा सिद्धात है पर बचाव का अच्छा साधन भी है, तब से आज तक कम-से-कम उन कवियो के लिए जो अदूरदर्शी सुधारको के हाथ का खिलौना बनना नही चाहते।

इसी समय कवि की प्रसिद्ध गजदन्ती मीनार शब्द का निर्माण हुआ था। एक शत्रुओ द्वारा छीने हुए नगर मे रहने वाले कवि के लिए यह रूपक अधिक उचित रहता—नगर जो शत्रु को और खदेड सकने म असमथ है लेकिन स्वय ऊँची दृढ दीवारो से घिरा रहता है। बाद के प्रतीकवादी कवियो मलार्मे और उनके सहयोगियो के लिए यह कथन उचित रहता क्योकि उस समय फिलिस्तीन जस नगर भी थे, जहा कवि वेश बदल कर गुप्त शब्दो के माध्यम से जासूसो का काम करते थे और अपनी उपस्थिति के विषय मे आभास नही होने देते थे। बादलेयर का अपने युग पर प्रत्यक्ष प्रभाव था। उन्होने इस बात पर बल दिया कि वास्तविक प्रगति तो पाप को समूल नष्ट करने के बाद होगी क्योकि वे अच्छी प्रकार से जानते थे कि पाप क्या है और किसमे इसका आकषण और भय निहित है। अपने जीवन म बादलेयर ने, जसा सात्र न उचित ही कहा है, अपनी महान कृतियो की रचना के अतिरिक्त और कुछ नही किया।

अपने अन्य सामयिक साहित्यकारो के समान ही कीर्केगार्द का जीवन भी खाली व्यथ स्पष्टत ऊबा देने वाला, एकरस था। और एसे समय म कोई भी ससार की निरथकता को समझ सकता है।

शत्रु के नगर म वेश बदले हुए जासूस के रूप म मलार्मे नगर पर बादलेयर जसा प्रभाव नही छोड सके, उनके पास केवल एक अकमक भीड थी। मलार्मे बादलेयर से कही अधिक सशक्त, अधिक विविध तथा भावपूर्ण है।

प्रतीकवादी काव्य की यह विशेषता है कि इसे किसी एक या सरल व्याख्या म नही बाँधा जा सकता और इसका स्वरूप एक रहस्य को सदा ही बनाये रहता है जिसमे इन कविताओ की व्याख्या अत्यन्त दुरूह हो जाती है उसी तरह से जसे स्वप्नो की कोई एक व्याख्या नही दी जा सकती। प्रतीकवादी कविता म सौदय तो है पर वह अपने ही बनाए हुए ससार म अपने को छिपाए रखती है। कवि को इस बात पर खेद है कि वह कवि है और

वह मात्र कविता म ही अपने जसा रहता है। हमारा अपना जीवन जिसे हम पृष्ठ पर अंकित शब्दों के क्रम में जीवन कहते है, कभी नहीं हो सकता। प्रतीकवादी कल्पना की ऊंची से ऊंची उडान भी स्वय को व्यक्त करने के प्रतीकवादी माध्यम से इसको नहीं छीन सकती सत्य या जीवनमान नहीं प्रदान कर सकती। कवि कष्ट पाता है वह एक हस की तरह बन्दी हो जाता है (हस एक स्थायी प्रतीक है)। मलार्मे का काव्य कठिन है किन्तु इस बात म सन्देह है कि उनके काव्य को दुरूह कहा जा सकता है या नहीं। प्रतीकवादी कविता मे प्रतीक, गणित की भाँति हमे विचार की एक कठोर और सम्बद्ध प्रणाली देते हैं।

दूसरी ओर रिम्बों को प्रतीकवाद के दूसरे चरण का कवि माना जा सकता है। रिम्बा म दुरूहता है। मलार्मे की भाँति उन्ह नही मालूम कि वे क्या चाहते हैं या क्या कर हैं। वे काव्य म जीवन और जीवन म काव्य को देखते है पर दोनो म अव्यवस्था और भ्राति लाने की कीमत भी चुकानी पडती है। मलार्मे के लिए काव्य के जादूभरे ससार ने वास्तविक अस्तित्व के नीरस खालीपन से मुक्ति का मार्ग खोज निकाला। पर रिम्बा का प्रश्न था कि यह जादू अस्तित्वमय क्यो नही हो सकता? केवल कविताएँ ही क्यो जीवन क्या नही काव्यात्मक है? गद्य के ससार से कोई समझौता क्यो करे?

रिम्बा के प्रतिवादी मतो का अनुसरण मतो के कारण नही अपितु आनन्द जसे अस्पष्ट और अमूत भाव को स्पष्ट करने के लिए रूप परिवतन और अधिकार का जीवन के तत्वो को किसी जादू मे परिवर्तित करने और कवि से सम्बन्धित तनावपूण और प्रेमपूण अनुभूति को जब वह कोई सफल कविता पूरी करता है प्रतिक्षण ग्रहण करने के प्रयास म किया गया था। रिम्बा ने कभी बाहरी ससार से समझौता करने का प्रयास नही किया। उनकी रचनाए प्रत्यक्षीकरण से नही, स्वय निर्मित हैल्यूसिनेशनो से आरभ होती है सन्निपात की उस स्थिति से आरभ होती हैं जहाँ क्षणिक आवेग म देखे सुने सबका गलत अथ ही लिया जाता है। अतिवाद और पागलपन से खिलवाड करते हुए वे सोचते थे कि वे स्वय को स्पष्ट कर सकते है काव्य की आदि निश्छल प्रकृति प्राप्त कर सकते हैं उसके लिए चाहे नतिक आत्मघात ही क्यो न करना पडे क्योकि अगर हम जीवन को ओषधियो की मात्रा बना कर गभीर करना चाहते है तो हम अपनी हत्या कर बठते है अथवा बहुत दब होने पर उदासीनता मे परिणत हो जाते है। वे वास्तविक ससार म और काव्य के ससार म कभी भी स्थायी रूप से और सफलतापूवक नही रह पाए। अत उन्होने कविता का क्षेत्र छोड दिया, जसे सही यही अधिक होगा कि कविता ने उन्हे छोड दिया।

रिम्बों सही अर्थों म विद्रोही कवि हुए। उनका विरोध राजनीतिक आदेशो या सामाजिक परिस्थितिया से ही नही मनुष्य जीवन मात्र से था स्वय वास्तविकता से था। फ्रेंच अतियथार्थवाद को उन्हाने प्रेरणा दी जो प्रतिदिन की वास्तविकता से सतुष्ट नही था। अपनी भाषा की शक्ति और सामथ्य से वे पाठक को चकित और अभिभूत कर लते हैं और उसे अपन वशीभूत कर लेते हैं। उनके लिए यह जीवन का एक उपाय एक सिद्धात और उकसाने का माध्यम है जो उनके लिए महत्वपूण है पर मलार्मे और वलेरी क लिए नहा था।

ये कविता को कवि से निस्पृह अपने म पूण मानते हैं अत रिम्बा की कविताओ क

बारे म यह पूछना व्यर्थ है कि वे अपनी कविताओ से क्या कहना चाहते है ? मलार्मे को समझने के लिए उनके सिद्धातो को समझना होगा और रिम्बा को समझने के लिए उनके वयक्तिक इतिहास को विस्तार से जानना होगा।

पश्चिम की धाराओ का प्रभाव जिन रूपो मे दृष्टिगत होता है उन्हे हम दो भागा मे विभाजित कर सकते है। सवप्रथम—विदेशी दार्शनिक आदोलनो से प्रेरित विदेशी काव्य (या साहित्य, उदाहरणत अस्तित्ववादी साहित्य) स प्रभावित कविता। अस्तित्ववादी विचारधारा का कामू, सात्र और काफ्का के साहित्य के माध्यम से नयी कविता पर पर्याप्त प्रभाव पडा है। कामू के आउटसाइडर की प्रतिच्छाया स्वातन्त्र्योत्तर, विशेषत साठ के बाद की कविता म जिस रूप म मिलती है उससे यही प्रतिभासित होता है कि फ्रास में रहने वाले अल्जीरियाई कामू अपने को उस परिवेश म जितना 'मिसफिट' पाते थे—उससे कही अधिक मिसफिट नयी पीढी के नवीनतम मसीहा अपने को पाते है। सन '६० के आसपास हताशा का जो टूटा हुआ स्वर सुनाई देने लगा था, राजनीतिक चेतना और सामाजिक आग्रह के बावजूद वह काफी ताजा लगा था। पर उस एक ही नाटक को बार-बार दोहरा कर उन कवियो (मुख्यत कलाश वाजपेयी) ने यह प्रमाणित कर दिया है कि उधार ली हुई सवेदना कभी स्थायी नही हो सकती।

यही स्थिति सुर्रियलिस्टिक काव्य के साथ हुई। ऐतिहासिक विकास क्रम की दृष्टि से सुर्रियलिस्टिक आदोलन अस्तित्ववादी दृष्टिकोण के आरम्भ होने से काफी पहले की स्थिति थी पर हिन्दी कविता मे अस्तित्ववाद के बीत जाने के बाद—या ज्वार उतर जाने के बाद ही कविता में अतियथार्थवादी स्वर सुनाई देने लगे। अतियथार्थवादी चित्रकला में रगो के सयोजन से आत्माभिव्यक्ति का जो प्रयास था, काव्य में उसे शब्दो का माध्यम मिला। शब्दो का अपना निश्चित अर्थ होता है पर सुर्रियलिस्टिक काव्य उन निश्चित अर्थों के स्थान पर कुछ नए अर्थ भरने की कोशिश में रहा।

यदि किसी विदेशी विचार का हम अपने देश का जामा पहना कर प्रस्तुत करें तो सभव है कि वह हमारे परिवेश में थोडा बहुत खप जाए पर आज साइकेडलिक बुखार युवा पीढी को अजीबोगरीब वस्त्रा, चीख पुकार के निकट के सगीत और कथकली, भरतनाट्यम और मणिपुरी की मिली जुली भावमुद्रा में नृत्य के समीप ले जाकर छोड आया है जिससे उनकी स्थिति बिना सीढी के घर की छत पर चढ गए उस बच्चे के समान हो गई है जिसे नीचे उतरना नही आता। उसी तरह अस्तित्ववादी लेखका के नामा को हनुमान चालीसा की तरह पढने वाले कविया को सभवत उनकी विचारधारा को पहचानने में भी कठिनाई होती होगी। अस्तित्ववाद और अतियथार्थवाद दोना ही युद्धोत्तर योरुप की आत्मा की अभिव्यक्तियाँ हैं और वे सत्य ही उसी प्रकार भारतीय परिवेश में अजनबी लगगी जैसे लम्बे बाल बढा लेने, महीनो न नहाने और गाजा चरस का दम लगाने पर भी भारत की युवा पीढी पश्चिम के 'फूल बच्चा (हिप्पीज) का मनोविज्ञान नही समझ सकती। स्वाधीनता के बाद भारत म जो स्थितियाँ रही हैं वे किसी भी समाज के सजग व्यक्ति को तोड दने के लिए पर्याप्त हैं। अस्तित्ववाद ने उस समझने म थोडा बहुत योग अवश्य दिया पर उस दृष्टिकोण को पूरी तरह से अपना लेने की वत्ति कविता के ही विरुद्ध जान लगी। गुजराती

नयी कविता के साथ भी यही हुआ। वहाँ भी साठोत्तरी पीढ़ी में अनायास ही आधुनिक हो जाने के प्रयास ने कविता को एक विशेष पाठक वर्ग तक सीमित कर दिया। उसकी संवेदना, भावबोध और अभिव्यक्ति ने स्वयं कविता के ही चारों तरफ दुरूहता की एसी कठिन दीवार उठा दी जिसने कविता को कहीं-कहीं दृष्टकूट के समीप लाकर खड़ा कर दिया। अस्तित्ववादी विचार किसी एक कवि पर आरोपित नहीं कर सकते क्योंकि पूरी की पूरी पीढ़ी ही उससे प्रभावित है। जहाँ तक अतियथार्थवादी प्रभाव का प्रश्न है उसमें हिन्दी में शमशेर बहादुरसिंह और गुजराती की साठोत्तरी पीढ़ी में दिलीप झवेरी, लाभशंकर ठाकर और प्रमुख रूप से सितांशु यशश्चन्द्र की कविताएँ उल्लिखित की जा सकती हैं। अस्तित्ववाद व्यक्ति को अत्यधिक महत्व देता है। उसके लिए समाज की तमाम परंपराओं को अपने सुविधानुसार बदलने की प्रवृत्ति कोई आश्चर्य का कारण नहीं है। समाज मुट्ठी भर लोगों की सुविधा के लिए नियम बनाता है और हर कोई उन नियमों से प्रतिबद्ध होने के लिए बाध्य नहीं है। पर अपने अपने दायरे में उनसे लड़ता हुआ व्यक्ति हताश हो जाता है और आत्मोन्मुखता के अतिरिक्त उसके पास कुछ उपचार नहीं बचता। समाज से अपने आपको एकदम अलग कर व्यक्ति स्वातंत्र्य पर बल देता है। पर अज्ञेय और भारती के काव्य में व्यक्तिवाद और व्यक्ति स्वातंत्र्य का जो स्वर है उसका मूल भारतीय परिवेश ही है अस्तित्ववादी व्यक्तिपरकता से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

मनोविश्लेषण सम्बन्धी नयी खोजों ने इन कवियों को एक नयी दृष्टि प्रदान की है। फ्रायडीय सिद्धांतों को स्वीकार करने के कारण जीवन के प्रत्येक कर्म का मूल 'काम' को मानना तभी से प्रारंभ हुआ। नयी कविता में विशेष रूप से अज्ञेय का काव्य पाश्चात्य विचारधारा से काफी सीमा तक प्रभावित है। अज्ञेय स्वयं अपनी कृतियों पर डी० एच० लारेंस और ईलियट के प्रभाव को स्वीकार करते हैं। नयी कविता के संदर्भ में फ्री एसोसिएशन अर्थात् मुक्त सम्पर्क की बात काफी उठाई जाती रही है। फ्री एसोसिएशन का उल्लेख फ्रायड ने स्वप्न के प्रसंग में किया है। 'स्वप्न' फ्रायड के अनुसार हमारे अवचेतन का ही प्रतीक है और स्वप्नों में किसी प्रकार का तारतम्य हम नहीं मिलता। स्वप्न आवश्यक नहीं है कि किसी एक व्यक्ति, एक घटना अथवा परिचितों के दायरे में ही सीमित रहें। पूर्णतः असम्बद्ध घटनाओं, अपरिचितों और कभी न देखे गए स्थानों की भी स्वप्न में कमी नहीं रहती। पर उनमें कहीं कोई सम्बन्ध होता अवश्य है, वह भले ही अप्रत्यक्ष हो। मानव मन भी उसी प्रकार कार्य करता है, उसकी चंचलता से ही स्पष्ट हो जाता है कि चिंतन मग्न हृदय भी हर पल किसी नए तथ्य पर पहुँच जाता है। पुस्तक पढ़ते हुए किसी पंक्ति को अपने किसी बेहद प्रिय व्यक्ति से सम्बद्ध करना, अचानक किसी बीते हुए क्षण की याद आ जाना जिसका पुस्तक से कोई सम्बन्ध नहीं है, कोई नयी घटनाएँ नहीं हैं—चेतन के साथ साथ अवचेतन सदा ही कार्यरत रहता है।

काव्य-सृजन भी ऐसा ही प्रसंग है। रचना प्रक्रिया के दौरान यह तो नहीं कहा जा सकता कि कवि चेतन नहीं रहता पर उसकी अनुभूतियाँ उस पर उस समय हावी रहती हैं। गीत रचना के समय तो केवल एक भाव और उसमें सम्बन्धित अनुभाव और संचारियों के नियोजन से काम पूरा हो जाता है लेकिन एक गंभीर विचार प्रधान कविता की रचना के समय

किसी एक विचार या अनुभूति से काम नही चलता है। समाज से, परिवेश से पूरी तरह सम्बंधित रहने के कारण उसमे प्रयुक्त अभिव्यक्तियो मे, प्रतीक योजना म और बिम्बयोजना मे कभी-कभी किसी प्रकार का सम्बन्ध नही होता। ऊपर से देखने मे कविता एकदम बिखरी हुई दिखाई पडती है पर वास्तव म विचार का एक अप्रत्यक्ष सूत्र उसे बाधे रहता है। नयी कविता मे 'फ्री एसोसिएशन' प्रतीक नियोजन मे अधिक उभरा है। मुख्य रूप से मुक्तिबोध की कविताएँ 'फ्री एसोसिएशन' की अच्छी उदाहरण हैं। अँधेरे म व्यक्ति के मन म घर किए हुए डर को असम्बद्ध प्रतीको द्वारा अभिव्यक्त करती है पर अँधेरे म घूमती हुई अस्पष्ट आकृतियो से उत्पन्न डर साकार हो सामने आ जाता है।

गुजराती नयी कविता अभी लघु कविताओ पर ही आधृत है उनम मुक्तिबोध की कविताओ के समान असम्बद्ध प्रतीको के लिए बहुत अवकाश तो नही ही है फिर भी आदिल मसूरी और अब्दुलकरीम शेख की कविताओ मे इसका परिचय मिल जाता है।

नयी कविता पर पश्चिमी प्रभाव स्पष्ट करते समय डी०एच० लारेंस से प्रभावित सक्स या यौन चित्रण का कई बार उल्लेख किया जाता है। परम्परागत मानदण्डो को आधार मान कर ये यौन-वणन 'वजनाओ' के अन्तगत आते हैं और नयी कविता की परिभाषा करते समय 'यौन वजनाओ' का चित्रण 'नयी कविता' का एक महत्वपूण विशेषण प्रमाणित कर दिया जाता है। उस समय यह किसी को याद नही रहता कि प्रणय सम्बन्धी ये उक्तियाँ नयी कविता के माध्यम से पहली बार हिन्दी साहित्य मे नहीं आई हैं। छायावादी काव्य मे प्रकृति के माध्यम से जिस प्रकार की शृगारिक उक्तियो को प्रतिभासित किया गया है वे सब इन वजनाओ के अन्तगत आ जाती हैं। कामायनी का काम सग उवशी की अनेक पक्तियाँ और पत की बहुत-सी कविताएँ इन वजनाओ के अन्तगत उल्लिखित की जा सकती हैं। प्रतीको का यह रूप जब साहित्य म पहले से ही स्थान बनाए है तो नयी कविता के सन्दर्भ मे यौन-वजनाओ के उदाहरण मे खो रहा है आरोप का ही क्या विशेष बल देकर उद्धत किया जाता है। यह ठीक है कि लारेंस के साहित्य म सक्स का महत्वपूण स्थान है यह भी ठीक है कि नयी कविता सक्स को छूत नही मानती पर यौन प्रतीको के उन्मुक्त प्रयोग का पाश्चात्य प्रभाव नही माना जा सकता जबकि कुछ ही वष पूव के काव्य म अनेक उदाहरण प्रमाण के रूप म प्राप्त होते हैं।

गुजराती नयी कविता म ये उन्मुक्त प्रयोग काफी ताजे हैं। वहाँ कविता म प्रणय का वायवी रूप ही महत्व पाए हुए है पर इधर की कविताओ म सक्स जिस रूप म प्रयुक्त होने लगा है ज्योतिष जानी लाभशकर ठाकर और श्रीकान्त शाह के काव्य म प्रयुक्त अभिव्यजनाएँ पश्चिम से आयातित हैं।

गभीरता से विचार करने पर स्पष्ट होता है कि पश्चिम के प्रभाव ने कवि की दृष्टि को इतना प्रभावित नही किया है जितना कि काव्य की अभिव्यक्ति को। विषय क्षेत्र म पश्चिम का जो प्रभाव दृष्टिगत होता है वह युद्धजनित विघटन मूल्यहीनता यातना सत्रास और अकेलेपन म अभिव्यक्त हुआ है। युद्धजनित विघटन भारतीय परिवेश म सतही प्रतीत होता है। द्वितीय महायुद्ध जमनी जापान अमेरिका रूस, इग्लड और योरप के अन्य देशों के लिए निर्णायक युद्ध था। एक ओर पल हाबर और दूसरी ओर हिरोशिमा तथा नागा

साकी, नाजियो के यातना रूप यहूदियों पर अत्याचार आज भी सिहरा देते हैं। युद्ध के दौरान उभरती हुई पीढ़ी के मन पर आज भी भयानक भाव हैं, हम उनसे सहानुभूति कर सकते हैं किन्तु उनकी वेदना की पीड़ा के भागी नहीं बन सकते। हम युद्ध से परिचित नहीं हैं युद्ध की विभीषिका हमारे लिए केवल एल०एम०जी० एण्टी एयरक्राफ्ट गन ब्लैक आउट और एयर रेड जैसे शब्द मात्र हैं—उसकी पीड़ा कराह और भीषणता से हमारा कोई परिचय नहीं है। भारत में जो विघटन हुए हैं या जो मूल्यहीनता उभरी है वह विश्वयुद्ध की नहीं बहुत कुछ भारत की स्वातन्त्र्योत्तर दशाओं की देन है। संसार के अन्य देशों की तुलना में जब हमने अपने को बहुत पिछड़ा हुआ पाया तो आत्म चिन्तन का प्रयास स्वाभाविक था लेकिन नैतिकता परम्परा, रूढ़ि और अनेक प्रकार की मान्यताएँ हम पर की बेड़ी के रूप में जकड़ हुए थी। उन सब खोखले, चुक गए मूल्यों के प्रति जो अनास्था प्राप्त हुई वह स्वाभाविक थी।

सन्त्रास का जो स्वर भारतीय स्तर पर कविता में आ रहा है उसके लिए उद्योगीकरण कुछ सीमा तक तो उत्तरदायी है पर सन्त्रास और अकेलापन जिस सीमातीत रूप में प्रयुक्त है वह निश्चय ही केवल भारतीय परिवेश का दोष नहीं है।

नयी कविता (गुजराती और हिन्दी दोनों में) ने कविता के लोक स्वीकृत रूप को अस्वीकार कर पश्चिम के वर्स लिब्रे या ब्लैक वर्स को मुक्तछन्द के रूप में अपनाया। छन्दबद्ध कविता में कथ्य के लिए पूर्ण अवकाश नहीं रहता था अतः अपनी भावनाओं की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए उसने मुक्तछन्द को अपनाया जिसके कारण कविता गद्य के काफी समीप आ गई। हिन्दी में मुक्तछन्द का प्रयोग पहले निराला के काव्य में प्राप्त होता है। ऐसा नहीं है कि छन्द का पूर्णतः बहिष्कार कर दिया गया है अपितु छन्द और मुक्तछन्द दोनों के सामंजस्य से एक नये वातावरण की सृष्टि की गई है। भारती अज्ञेय कुँवर नारायण की कविताएं मुख्यतः अछन्दस हैं पर छन्दों का भी समुचित प्रयोग उनकी रचनाओं में है। गिरिजाकुमार का काव्य दूसरी ओर आधुनिक भावबोध का छन्दबद्ध रूप में प्रस्तुत करता है। गुजराती नयी कविता की भी बहुत कुछ यही स्थिति है। वहाँ छन्द कविता के लिए अनिवार्य माना जाता रहा और बहुत से नए कवि—सुरेश जोशी, सुरेश दलाल, हरीन्द्र दवे और आदिल मंसूरी की कविताएं दोनों ही नियमों को स्वीकार करती हैं। विषय के अनुसार उनके काव्य में छन्द अथवा अछन्द का प्रयोग होता है पर प्रायः मध्यम मार्ग अपना कर दोनों का मिला जुला रूप प्रस्तुत किया है। 'कविलोक' ३७ में रघुवीर चौधरी ने अछान्दस रचनाओं की आलोचना करते हुए लिखा है कि 'सुरेश जोशी की प्रत्यंचा में कितनी ही रचनाएं ऐसी हैं जिनमें छन्द और अछन्द दोनों को ही स्वीकार किया गया है। मार अन्धकार' अछान्दस रचना लगती है पर उसमें छन्द का टुकड़ा भी मिल जाता है। वहाँ लय का दोहरा संचार अर्थ के हाथ में होता है।'

साहित्य में बिम्बवाद और प्रतीकवाद की चर्चा पर्याप्त होती रही है पर नयी कविता बिम्बवादी और प्रतीकवादी आन्दोलन से सीधे प्रभावित है। ईलियट एज़रा पाउण्ड और यीटस जैसे बिम्बवादी (इमेजिस्ट) कवियों से प्रेरणा ग्रहण कर काव्य को एक नया रूप प्रदान किया जाने लगा। कविता अब तक पाय अपनी प्रतिक्रियाओं का आलेख रही थी।

प्रणय विरह वेदना और कही भूले भटके सशय (आत्मसमर्पण नही) को काव्य म अभिव्यक्ति मिल जाती थी। नयी कविता मे नए बिम्बो के माध्यम से शाम एक उदास लडकी की तरह (भारती) नरेश मेहता की दोपहर, शमशेर की सावला जिस्म और अज्ञेय की जाने क्या मछलियाँ हैं या नही आखें तुम्हारी—जसी अनेक अभिव्यक्तियो को रूप दिया गया जिनम किसी एक मन स्थिति या किसी एक अनुभूति को बाधने का प्रयास किया गया। सुरेश जोशी की 'प्रार्थना, प्रियकान्त मणियार की प्रशान्त रात्रि और स्पर्श की कई कविताएँ जयत पाठक की सकेत मे प्रकाशित 'कमे हा इसी प्रकार सक्षिप्त पर छूकर बीत जाने वाले क्षणो को बाँधे हुए हैं। मन स्थिति या अनुभूति की सक्षिप्तता को बाधने के लिए सैकडो बिम्बखण्डो, अनगिनत प्रतीको के उलझाव के स्थान पर मन स्थिति या भाव के अनुकूल ही छोटी छोटी कविताओ की रचना हुई। भवानीप्रसाद मिश्र की 'पतझर' और दिनेश कोठारी की शिल्प' की बीसवी कविता (गिरे हुए फूल और विरहाकुल वायु से सम्बोधित उस कविता को दिनेश ने कोई शीर्षक नही दिया है) अपनी सक्षिप्तता के बावजूद अपने कथ्य को पूरी तरह से सप्रेषित कर देती है। भवानीप्रसाद मिश्र की कविता को यहा उद्धत करने से यह कहना बिल्कुल अभिप्रेत नही है कि उनकी कविताएँ किसी भी अर्थ म पश्चिम की कविताओ से सम्बधित हैं, अपितु यह कि नयी कविता ने भाव की सक्षिप्तता के अनुकूल किस प्रकार कुछ शब्दो या पक्तियो म सम्पूर्ण वातावरण को बाध दिया है, और बिम्बवादी कवियो की कविताओ के समान ही उनका स्वरूप है।

शिल्प के क्षेत्र मे प्रतीक सम्बन्धी जो नए प्रयोग हुए हैं, उनके पीछे फ्रास की प्रतीकवादी कविता की प्रेरणा स्पष्ट है। सिम्बालिस्ट कहलाने वाले इस आन्दोलन ने प्रतीको को जिन नए अर्थों में प्रयोग किया था उसने कविता को काफी सीमा तक दुर्गम बना दिया था। ये कवि भाषा का आविष्कार करते हैं और इन आविष्कारो से जब कोई विशेष शब्द सब कवियो मे एक समान मिलने लगता है तो सबकी अभिव्यक्तिया भी एक जसी लगने लगती हैं और वही कवि सिद्धि प्राप्त करता है जो मर्यादा का अतिक्रमण कर सकता है। मलार्मे ने व्यजना का आश्रय लिया है सामान्य नाम के स्थान पर भाववाचक शब्द का प्रयोग, पख (विंग्स) के स्थान पर उड्डयन (फ्लाइट), सूने मदान (एम्पटी लण्ड्स्केप) के स्थान पर निर्जनता (सालीट्यूड) आदि प्रयोग कवि और श्रोता (या पाठक) के मध्य प्रत्यक्ष सम्बन्ध मे बाधक होते हैं। मलार्मे के अतिरिक्त रिम्बों वलेरी वर्लें और बादलेयर के काव्यो से गहीत भाषा म रहस्यात्मकता का आरोप हिन्दी और गुजराती नयी कविता मे काफी स्पष्ट है।

शमशेर की कविताएँ अपने प्रतीकवादी स्वरूप के कारण पाठक वग म दुर्बोध समझी जाती हैं। बिम्बो पर विशेष बल केदारनाथ सिंह की कविताओ म प्राप्त होता है—'कमरे का दानव' उसका अच्छा उदाहरण है। प्रतीकवादी काव्य जिस प्रकार विशेष प्रबुद्ध पाठको पर अधिक आग्रह देता है उसी प्रकार नयी कविता से भी तादात्म्य करने मे हर कोई समथ नही है। तीसरा सप्तक म अपने वक्तव्य म केदारनाथसिंह ने इस तथ्य को स्पष्ट किया है— नयी कविता पर जो अस्पष्टता और दुरूहता का आरोप लगाया जाता है, उसका सबसे बडा कारण है उसमे सवथा नए अपरिचित सघन बिम्बो की अधिकता जिसके लिए अधिक सस्कृत और श्रेष्ठ सहृदय वग की आवश्यकता होती है। नए, अपरिचित और सघन बिम्बो

के प्रति आग्रह मलार्मे और वलेरी के आग्रहो से दूर नही है।

गुजराती नयी कविता भी हिन्दी नयी कविता के ही कठघरे म खडी है। अब्दुल करीम शेख, गलाम मोहम्मद शेख नलिन रावल और आदिल मसूरी की कई कविताओ म यह प्रतीकवादी भुकाव दिखाई पडता है। अन्य शब्दो म कहा जाए तो गजराती की नवीन तम कविताएँ अपने सश्लिष्ट बिम्बो, दुरूह प्रतीको म हिन्दी नयी कविता स कुछ आगे ही है उन पर अमेरिका की बीट जनरेशन का प्रभाव उसी प्रकार बिम्ववादी और प्रतीकवादी धाराओ से अधिक है जसे अकविता और सन साठ के बाद हिन्दी म होने वाल आदोलन पर भारतीयता की छाप उतनी स्पष्ट नही है जितनी कि पश्चिम की।

प्रभाव, पश्चिमी विचारो का दोनो ही भाषाओ की कविताओ पर स्पष्ट है। नयी कविता की सभावनाएँ निश्चय ही बिम्ब और प्रतीको के क्षेत्र म पश्चिम से उदभूत हैं पर उसका (गुजराती और हिन्दी नयी कविता का) मूल उसकी अनुभूति (एक्सपीरियन्स) है जो पश्चिम स नही आया है। फिर भी हमारे बोध म कही कही सत्रास अकेलपन आदि का जो अतिरजित रूप मिलता है, हमारे परिवेश मे वह झूठा लगने लगता है। काव्य म खण्डित बिम्बो का महत्त्व आधुनिक मनोविश्लेपण का प्रयोग करने वाले पश्चिमी कवियो का प्रभाव हो सकता है पर उनका अन्तिम सम्बध (अल्टीमेट रिलेशन) भारतीय ही है।

इनके अतिरिक्त कही-कही ऐसा भी हुआ है कि विदेशी कविता के भावो को ज्यो का-त्यो ग्रहण कर लिया गया है। अज्ञेय के काव्य म ईलियट और लारस के काव्य के कई भाव प्राप्त हो जाते हैं।

सक्षेप यही कि ज्ञान और जिज्ञासा ने जिन नए क्षितिजो का विस्तार किया उनके माध्यम से पश्चिमी साहित्य पाश्चात्य विचार और दशन से भारतीय कवियो का परिचय हुआ, और अपनी सीमाओ को असीमित करने के प्रयास मे उन्होने पश्चिम से दर्शन विचार और दृष्टि का अनुसरण तो किया पर कही-कही वह अनुसरण इतना अधिक स्पष्ट हो गया कि उसके मूल स्वरूप से भारतीय परिवेश का साम्य स्थापित करना कठिन हो गया।

नयी कविता की दार्शनिक पीठिका

काव्य और दर्शन का सम्बन्ध, वास्तव में, अन्योन्याश्रित नही है। काव्य का क्षेत्र अनुभूति है और दर्शन का विचार, जिनका सम्बन्ध क्रमश हृदय और बुद्धि से है। फिर भी यह नही कहा जा सकता कि कविता का सम्बन्ध विचार से नही हो सकता अथवा दर्शन के पीछे कोई अनुभूति निहित नही रहती। विभिन्न क्षेत्रो की होते पर भी अनुभूति और विचार मिश्रित कविता श्रेष्ठ कविता होती है और दर्शन का आरम्भ किसी अनुभूति की प्रेरणा से ही होता है। फिर भी कविता दर्शन नही है और दर्शन को कविता नही कहा जा सकता।

"साहित्य में दर्शन दो रूपों में आ सकता है—लेखक की विश्व दृष्टि का अग बन कर उसकी भावनाओ और आभ्यतर मनस्तत्वों का अपने अनुसार सघटन, विघटन कर एक नयी व्यवस्था प्रदान करके अथवा किसी स्थापित विचारधारा या वातावरण से प्रभाव ग्रहण कर, मौलिक चिन्तन रखते हुए भी स्थापित विचारधारा का ही अग बनकर।"[1]

लेखक अपने चारो ओर से निस्पृह होकर नही बैठा रहता है। जीवन्त, चेतना सम्पन्न और सवेदनशील होने के कारण, जीवन के प्रति की गई नानात्मक प्रतिक्रियाओ में कही जीवन मूल्य परम्परा प्राप्त होने से अथवा नवीन परिस्थितियो की उपलब्धि के रूप में स्पष्टत या परोक्षत स्पष्ट होते है। जीवन की आलोचना भी उसके काव्य में रहती है। इस प्रकार साहित्य में प्राप्त भावनाओ में प्रकट होने वाले जीवन मूल्यो और दृष्टियो को खीच-खाचकर अथग्रहण करने से उन सबको मिलाकर सभवत कोई दार्शनिक रूपरेखा प्रस्तुत की जा सकती है।

दर्शन का अर्थ यदि केवल ब्रह्म, जीव या माया के पारस्परिक सम्बन्धो में लिया जाए तो नयी कविता ऐसी किसी भी सम्भावना से दूर पड जाएगी, क्योकि नयी कविता उन स्थापित मानदण्डो के आधार पर किसी भी दर्शन के अन्तर्गत नही आ पाएगी।

नई कविता से पहले प्रगतिवादियो के पास एक सुनिश्चित, सुस्पष्ट और सागोपाग विचारणा थी। साहित्य की आध्यात्मिक व्याख्या का प्रगतिवादियो ने घोर विरोध किया—

१ नयी कविता का आत्मसघर्ष तथा अन्य निबन्ध गजानन माधव मुक्तिबोध', पृष्ठ ३१

कठोर युद्ध के बाद आध्यात्मिक व्याख्या की पकड ढीली हो गई। प्रगतिवाद का भारतीय व्याख्याता केवल नारे लगा कर रह गया या आपसी मतभेदों के कारण एक दूसरे पर आक्षेप प्रत्याक्षेप करके रह गया। परिणाम हुआ—

"नयी कविता को उत्तराधिकार के रूप में न अध्यात्मवादी विचारधारा प्राप्त हुई न भौतिकवादी। विश्वदृष्टि वह चाहे जो भी हो विकसित करने का भी प्रयत्न नहीं हुआ। कुछ कलाकारों ने आपस में बैठकर भले ही अपने विश्वास एकत्रित कर लिए हो—किन्तु वे विश्वास उनके साहित्य की पार्श्वभूमि नहीं बन पाते। उनके पास कोई ऐसी केन्द्रीय दृष्टि नहीं है जो उनको भाव दृष्टि का अनुशासन कर सके।[१]

पूरी तरह से भले ही नयी कविता को किसी एक विचारधारा के अन्तर्गत न रखा जा सके किन्तु सापेक्ष्य होने के कारण कुछ प्रमुख विचारधाराओं का प्रभाव इस पर अवश्य मिल जाता है।

स्वतन्त्रता से पहले तक का साहित्य कुछ विशिष्ट विचारधाराओं से प्रभावित रहा है, क्योंकि तब तक कविता का ध्येय केवल मनोभावों की अभिव्यक्ति न होकर आदर्श विचारों की अभिव्यक्ति हुआ करता था। छायावाद में वेद उपनिषद अरविन्द दर्शन की पीठिका है—किन्तु नया हिन्दी काव्य किसी दर्शन के प्रति प्रतिबद्ध नहीं है। दूसरी ओर गुजराती नयी कविता में आज भी दर्शन का महत्त्वपूर्ण दाय है। आधुनिकता अपनाने पर भी गुजराती नयी कविता का सुर्रियलिस्ट कवि अपने संस्कारों को अस्वीकार नहीं कर पाता है। इसी कारण से आधुनिकता सम्बन्धी सभी विश्वासों को प्रश्रय देते हुए भी उसमें ईश्वर को स्वीकार न करने का दम नहीं है और उसी सर्वोच्च सत्ता के प्रतिरूप में प्रकृति के विभिन्न उपकरणों को देखने के लिए वह बाध्य है। फिर भी दृष्टिकोण में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन हमें दिखाई पड़ता है। कविता अब केवल ईश्वर को स्मरण करने का माध्यम नहीं है और न ही वह सांत्वना देने वाला देवदूत है, उसका ध्येय अनुभूति को साकार मान लेना रह गया है, उसका कार्य पाठक की चेतना का क्षेत्र विस्तृत करना है पाठक की भावनाओं के प्रति उसका कोई दायित्व नहीं है।[२]

कविता का क्षेत्र जब सीमित हो जाता है तब उसको नियोजन करने के लिए दर्शन की आवश्यकता नहीं पड़ती है, आज की विचारधारा ही कल का दर्शन हो जाती है इस दृष्टि से देखें तो जो विभिन्न विचारधाराएं अथवा दर्शन नयी कविता में हैं, वे मूलतः पाश्चा

---

१ नया कवि का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध मुक्तिबोध 'मुक्तिबोध', पृष्ठ ३१

२ Poetry no longer remains a God head or an angel to warn to comfort to Command Literature is now conceived as creation of form embodying an experience and its function is to enlarge the area of reader s conciousness It is not obliged to touch and refine the emotions of the reader

—शिमला में Modernity in Indian Literature पर हुए सेमीनार में पढ़े गए निबन्ध में श्री मनसुखलाल झवेरी का मत

वाद, मनोविश्लेषणवाद और अस्तित्ववाद हैं। गुजराती कविता में दर्शनों की संख्या बढ़ जाती है यदि हम राजेन्द्र शाह की उपनिषद से प्रभावयुक्त कविताएँ और उशनस, प्रजाराम, उमाशंकर जोशी की अरविन्द दर्शन प्रधान रचनाओं पर विचार करते हैं।

कविता और अरविन्द दर्शन

हिन्दी कविता में अरविन्द दर्शन का जितना प्रभाव पंतजी के स्वर्णिम काव्य पर है उतना अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। जहाँ तक नयी कविता का प्रश्न है किसी भी प्रकार के ऊर्ध्व चिंतन या परोक्ष सत्ता पर उसका विश्वास नहीं है। कविता द्वारा समरसता की स्थिति लाना अथवा आनन्दमय और सत्यमय जीवन से साक्षात्कार करने की कोई इच्छा उसकी नहीं है अत: अरविन्द दर्शन के नाम पर वह दर्शनहीन है।

गुजराती कविता में रहस्य और अध्यात्म का प्रभाव धर्म और ईश्वर के प्रति दृष्टिकोण में अंतर आने पर भी महत्वपूर्ण है। धर्म सम्बन्धी पुराने और जड़ विचारों में परिवर्तन के कारण ईश्वर तत्त्व को भली भाँति समझने का प्रयास किया गया। ईश्वर के उस रूप के प्रति श्रद्धा नहीं रही जो अपने चमत्कारों से सांसारिक जीव को चकाचौंध किया करता था। बुद्धिप्रधान मानस संसार के तत्वों के प्रति जिज्ञासु होकर प्रश्नचिह्न लगाया करता है उसी तरह ईश्वर भी इन्हीं प्रश्नचिह्नों का शिकार हुआ। विज्ञान और वैज्ञानिक विचारपद्धति ईश्वर के अस्तित्व को नकारती रही और दूसरी ओर पदार्थ ज्ञान का समावेश करती रही।

तत्वज्ञान अरविन्द दर्शन में मिलता है जिसमें डार्विन के उत्क्रांतिवाद से विचार नियोजित होते हैं। उत्क्रांति के क्रम में प्रकृति विकसित होती हुई मानव रूप प्राप्त करती है किन्तु मानवरूप ही उत्क्रांति का अन्त नहीं है उसका विकास हो सकता है और होगा, उसका दिव्य स्वरूप सिद्ध होना बाकी है यही अरविन्द दर्शन का सार है। अरविन्द ने जगत अथवा जीवन का निषेध नहीं किया है और साथ ही उसके वर्तमान स्वरूप में उसे स्वीकार नहीं करना चाहा है। उसकी अपूर्णता विषमता को नित्य के यथार्थ के समान नहीं स्वीकार किया है। उसका आकर्षण यह शुभ तत्त्व है कि जीवन के उच्चतर विकास की संभावना अभी समाप्त नहीं हुई है।

काव्य और तत्त्वज्ञान में कोई आन्तरिक विरोध नहीं है। दोनों अपने अनुसार जगत और जीवन का आकलन करते हैं दोनों का ध्येय सत्य जानना है कवि का अर्थ ही द्रष्टा होता है इस कारण सच्ची कविता में जीवन के लिए कोई न कोई सन्देश रहता है। कवि इस संदेश को अनुभूति रूप में सौंदर्य और आनन्द के माध्यम से व्यक्त करता है अत: कविता और तत्त्वज्ञान में कोई अंतर है तो वह रीति का है दर्शन का नहीं।

'कोयल के गीतों के विषय में गीत लिखना ब्रह्म की सृष्टि का गुणगान काव्य में करने से अपेक्षाकृत सरल है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि काव्य में विचार, आध्यात्मिक विचार अथवा सत्य का अभाव हो। कोई भी ऐसा महाकवि नहीं हुआ है जिसके काव्य में दार्शनिकता

न हो।"[१]

"कविता का काम इस विश्व में फली अव्यवस्था और वविध्य म साम्य लाना और अनन्त की पहचान करवाना है। कविता को इस अपूर्ण जीवन के सौन्दर्य और आनन्द को प्रकट कर मनुष्य का साक्षात्कार आनन्दमय और सत्यमय जीवन से करवाना है।"[२]

तीसरे दशक म स्वीकृत दशन आज भले ही मुख्यत काव्य म नहीं मिलते फिर भी कविता (गुजराती नयी कविता) दशनशून्य नहीं हो गई है। इस सदी के पाँचवें और छठें दशक म श्री अरविन्द के जीवन दर्शन का प्रभाव कई कवियों पर प्रचुर मात्रा म है। सुन्दरम्, प्रजाराम उशनस पिनाकिन ठाकोर आदि ने इस शृंखला म कितने ही उत्तम काव्यों की रचना की है किन्तु पिछले पाँच एक वर्षों म इसका प्रभाव मन्द हो गया है।

नयी कविता म एक ओर मानव के आन्तरिक सघष का और दूसरी ओर मानव की विशुद्ध उन्नत जीवन की इच्छा का आलेख होता है। मनुष्य आज की स्थिति से असन्तुष्ट हो उन्नत स्थिति की कामना करता है जो वास्तव म मानव के भावी विकास की सूचक है। आज मनुष्य की जो स्थिति है उससे उबरने का सदेश उशनस देते हैं—

उठो हुई जीण मनु की सस्कृति

है कोई यह पृथ्वी की प्रकृति से
अतिपरिचित लघु क्षितिज से
सो चलो उठो

ससार के अधकार को चीरती हुई एक दिव्य ज्योति है जो सदा आकृष्ट करती है—

सिर पर है नील गगन स्निग्ध, शोभा युक्त
तारो से बरसती है ज्योति दूर किस देश की ?[३]

---

१ It is obviously easier to be poetic when singing about a skylark than when one tries to weave a robe of verse to clothe the attributes to the Brahman But that does not mean that there is to be no thought no spiritual thought or no expression of truth in Poetry There is no great poet who has not tried to philosophise

२ We have no ascetic quarrel with our mother earth but rather would drink full of her bosom of beauty and power and raise her life to a more perfect greatness This mediation between the truth of the spirit and the truth of life will be one of the chief functions of the poetry of the future Sri Aurobindo The future poetry—, page 287 88

३ ने दे नीलु गगन शिर पे स्निग्ध शोभा भनेरी,
ताराओटे द्युति वरसन दूर को देश केरी।—कवि लोक प्रजाराम पृष्ठ ५०

इस वर्ग के कवियों का काव्य, दर्शन से इतना बोझिल है कि उनकी वास्तविक प्रतिभा का परिचय उसमें नहीं मिलता। एक भाव या विचार के किसी चमत्कार के अभाव में ये कवि पद्य रचना करते रहे हैं। कई कवि शृङ्गार के आध्यात्मिक उद्गार की अभिव्यक्ति में केवल भगवान के नाम गिनवाते हैं।[1]

रहस्यवाद

नयी कविता का आरम्भ किसी दर्शन को पुनरुज्जीवित करने के लिए नहीं हुआ था। हर वस्तु को अस्वीकार करने की भावना के कारण दर्शन का कोई स्पष्ट रूप हम आरंभिक नयी कविता में नहीं मिलता है। किन्तु अज्ञेय की नूतनतम कृतियों 'आँगन के पार द्वार' और 'कितनी नावों में कितनी बार' में कविताओं का जो स्वर है वह रहस्य से बहुत दूर नहीं पड़ता है। अनुभूतियों और अभिव्यक्तियों के इतने पड़ावों के बाद रहस्य की ओर अज्ञेय का यह रुझान संभवतः इसी मत की पुष्टि करता है कि अंतिम आश्रय मानव को उसी अनादि अनन्त सत्ता में ही मिलता है।

रहस्यवाद का यह स्वर नयी कविता के लिए अपवाद ही है। जीवन की विसंगतियों में उलझे कवि का किसी परोक्ष सत्ता पर विश्वास नहीं है अतः अज्ञेय का नवीनतम काव्य भाव और विचार क्षेत्र में नयी कविता के मूल स्वर से दूर पड़ जाता है। फिर भी रहस्य के प्रति जो एक जिज्ञासा है वह फूलपत्ती में अभिव्यक्ति न पाकर अपने आसपास उसे जीवन्त पाता है—

यह महामौन का शिविर,
असीम, छा रहा ऊपर
नीचे यह महामौन की सरिता
दिग्विहीन बहती है।
रूपों में एक अरूप सदा खिलता है,
गोचर में एक अगोचर, अप्रमेय,
अनुभव में एक अतीन्द्रिय,
पुरुषों के हर वैभव में ओझल
अपौरुषेय मिलता है।[2]

मध्ययुग में भक्त कवियों ने 'हरि मेरो पीव मैं हरि की बहुरिया' कहकर आत्मा और ईश्वर के मध्य विवाह का रूपक रचा था जिसमें मृत्यु को 'गवनवा की डारी' कह कर ईश्वर

---

१ श्री अरविन्द दर्शन या पूर्वपक्षे रचायेलो अेमनो आत्मा कविता कविता मां पोतानी पूर्ण कला प्रकटावी शकतो नथी। क्यारेक तो मात्र एक विचार के भाव ने कशा विशिष्ट चमत्कार वगर ठेरो पद्यबद्ध करता जणाय छे।

—आलोक जयन्त पाठक, पृष्ठ ५१

२ आँगन के पार द्वार स० ही० वात्स्यायन 'अज्ञेय', पृष्ठ ३६

प्राप्ति का माध्यम बताया था। अज्ञेय की 'अरी ओ आत्मा री, कन्या भोली क्वारी' भी ऐसा ही रूपक है पर वातावरण के लौकिक होने के नाते कविता मार्मिक है—

हाँ छूट चला वह घर उपवन
परिचित परिगण में थी आत्मीय सभी
पर खेद न कर, हम थे इतने तक के अपने—
हम रचे ही गए थे यथाय आधे आधे सपने—
आँखें भरकर चूमे फेर और भर अजलि बिखेर
पीछे का फूल
स्मरण के श्रद्धा के कृतज्ञता के सब के—
हम नही पूछते, जो हो, बस अब हो परिताप कभी।
जा आत्मा जा
कन्या वधुका—
उसकी अनुगा
वह महाशून्य ही अब तेरा पथ
लक्ष्य अन जल पालक पति
आलोक धाम
तुझको वह एकमात्र सरसाएगा।
ओ आत्मा री
तू गई वरी
ओ सम्पृक्ता
ओ परिणीता
महाशून्य के साथ तेरी भावरें रची गई।[1]

रात को गूजते हुए सन्नाटे म कुछ बातें होती है पर वह बातें सन्नाटे की नही है—

मैंन उठकर खोल दिया वातायन
और दुबारा चौंका
वह सन्नाटा नही—
झरोखें के बाहर
ईश्वर गाता था।[2]

असाध्य वीणा उस चरम अनुभूति के सुख की गाथा है जिस कोई भी प्राप्त नही कर सकता। एक कथा का रूप देकर इश्वर की अनुभूति के विभिन्न स्तरों का वर्णन हुआ है—

अवतरित हुआ सगीत
स्वयभू
जिसम सोता है अखड

---

१ आगन के पार द्वार स० ही० वात्स्यायन 'अज्ञेय' पृ० ५२-५३
२ वही, पृ० ४४

ब्रह्म का मौन
अशेष प्रभामय।
डूब गए सब एक साथ
सब अलग अलग एकाकी तार तिर।

किन्तु सब अलग अलग एकाकी तार तिर में किसी समन्वय के नहीं अपितु पृथक व्यक्तित्वों के दर्शन होते हैं। कलाकार के वीणा छेड़ने के बाद ही व्यक्ति उस संगीत को अपने ढंग से अनुभूत करता है। ऊपर से देखने पर यह स्थिति परमब्रह्म की प्राप्ति की स्थिति के समीप दिखाई पड़ती है किन्तु वास्तव में वह ब्रह्म की अनुभूति नहीं है। अज्ञेय ने 'अहं' को ब्रह्म का स्थान देकर उसकी व्याख्या की है। कविता का वातावरण भले ही रहस्य से धूमिल है पर उस कुहासे के भीतर से जो प्रकट होता है वह हर व्यक्ति का अपना अहं है जो उसे निज संगीत का अपने ढंग से अर्थ करने को बाध्य करता है। रहस्य का आभास है किन्तु रहस्य नहीं है, जबकि दूसरी ओर गुजराती कविता को अज्ञात ब्रह्म के प्रति जिज्ञासा का रहस्यमय कवि सदा आकृष्ट करता है। वह कौन है जिसकी क्रियाओं का प्रतिफलन सृष्टि के प्रत्येक कण में दिखाई पड़ता है। इसी सत्य की प्राप्ति के लिए कवि के हृदय में ऊर्ध्व का अनाहदनाद होता है।

हिन्दी में नया कवि दृढ़ता से ईश्वर का निषेध करता है किन्तु गुजराती कविता की स्थिति जीतेन्द्र दवे के शब्दों में एकदम भिन्न है। ईश्वर प्राप्ति के लिए बेचैनी और सत्य पिपासा प्रत्येक नये कवि में मिल जाती है। अप्राप्य की नित्य जगती चिन्ता और राजेन्द्र जैसे कवि की सुषुम्ना के तारों को कौन बजाता है और बजाने वाले को जानने की जिज्ञासा तथा प्रजाराम के मन के भवरें में अनाहदनाद 'गूंजना' सभी पंक्तियों में कवि हृदय की बेचैनी स्पष्ट होती है।[1]

ईश्वर का स्पर्श पाकर तत्त्व ज्ञान सहज और सरल हो गया है। ऊर्ध्व चैतन्य के स्पर्श से पुलकित हुआ कवि कल्पना का बल और वाणी की शक्ति दिखा सकता है। वह दर्शन की सूक्ष्मता और तत्त्व ज्ञान की झलक भी दिखा सकता है—

खुल गई यह पखड़ी
किसकी अगोचर आख की
सिमटा हुआ इसमें छिपा आकाश
कैसा मधुर है हास।[2]

---

१ ईश्वर माटे नी झखना अने सत्य पिपासा प्रत्येक नवा कवि मा जोवा मळे छे। अप्राप्य नी जागती नित्य झखना राजेन्द्र जेवा कवि नी सुषुम्ना ना तार नो बजवणहार कोण छे ते जाणवानी जिज्ञासा प्रजाराम ना 'मने ना भमरानु' अनादि अनहद रागे 'गुंजन' आ बधा पंक्तियों मा कवि हृदय नी झखना वर्तीय छे।
मनरा २५ जीतेन्द्र दवे, पृष्ठ १००

२ खूली गई आ पांखडी
कानी अगोचर आंखनी
संकेला ने छेनी मां गोपु व्योम
[illegible]

इसके अतिरिक्त विनोबा की सर्वोन्यी विचारधारा का भी प्रभाव पिछले कुछ वर्षों की कविताओं में दिखाई दे रहा है। राजेन्द्र शाह, उशनस, बालमुकुन्द आदि ने इस विषय में कितनी ही रचनाएँ की हैं। किन्तु इन दिनों यह प्रभाव क्षीण होता जा रहा है। मानव मूल्यों की अश्रद्धा, विज्ञान और अथतन्त्र की विराट और असम्बद्ध योजना में अनुभूत मानव के अकेलेपन के कारण अब भूदान प्रवृत्ति के आध्यात्मिक दश के सामाजिक मूल्य के प्रति आकर्षण न रहना स्पष्ट है।[1]

कविता का यह स्वरूप जो दूसरी ओर दिए गए आधुनिकता के अनुभावों से एकदम अलग पड़ता है—वास्तव में किसी प्रयोजन से है अथवा नहीं, जयन्त पाठक का विचार यही है कि हताशा के सामने श्रद्धा का पुरुषार्थ और आशा से भरा जो स्वर सुनाई देता है वह कविता और मानवता के भविष्य के लिए एक सुभग आशाचिह्न है। आध्यात्मिकता का यह उन्मेष पिछले जीवन के व्यवहार का अस्वीकार नहीं करता है। आज का कवि जीवन और जगत के प्रश्न पर गंभीरता से विचार करता है। कविता एक ओर अन्तमन का संघर्ष व्यक्त कर और दूसरी ओर जीवन के शाश्वत मूल्यों और उनके चरम ध्येय पर दृष्टि रख कर समरसता की स्थिति प्राप्त करने के लिए प्रयास करती है। दोनों का लक्ष्य एक ही है किन्तु उनका मार्ग दूसरा है। नयी कविता में ये दोनों प्रवाह समानान्तर चलते हैं। ऐसी व्यापक अध्यात्म दृष्टि आज की कविता को क्षुद्रता में से, अभद्रता में से हताशा में से निकाल लेने में सहायक है।[2]

अस्तित्ववाद

हिन्दी साहित्य में सामाजिक उत्तरदायित्व से पलायन के आरोप का उत्तर प्रायः यह दिया जाता है कि साहित्यकार क्षणजीवी है और यहाँ क्षण से तात्पर्य क्षणिकता से नहीं अनुभूति की प्राथमिकता से है।[3]

लघुमानव की कल्पना भी मानव-मन की आतरिक सच्चाई के अस्तित्ववाद के प्रत्यय

---

१ मानवमूल्यो नी एकदरे अश्रद्धा ना, विज्ञान अने अर्थतन्त्र नी विराट अने अटपटी योजना मां अनुभवाती मानव एकलता ना आ समय मां भूदान प्रवृत्ति ना आध्यात्मिक अंश के सामाजिक मूल्य नु आकर्षण कवि नु ना रहे छे ए समजाय तेवु छे।—आधुनिक कविता ना विरामो, जयन्त पाठक, पृष्ठ ५१

२ आज ना जीवन मां देखाती हताशा ना सामे श्रद्धा नो पोकार, श्रद्धा नो नहि पण पुरुषार्थ अने आशा थी सभर ने जीवन्त श्रद्धा नो ऐ स्वर अध्यात्म विषय नी नवतर कविता मां संभळाय छे ते कविता अने मानवता ना भावि माटे एक सुभग आशाचिह्न छे। आध्यात्मिकता ना आ उन्मेष पाछळ जीवन ना कलहमय व्यवहारो मां थी छटकी जवाना के जीवन नो सर्वथा इन्कार करवानी वृत्ति रहेली नथी। आज नो कवि जीवन अने जगत ना प्रश्नो विशे गंभीरता थी विचार करे छे, अने मनुष्य ने आज जीवन मां निर्भेळ आनन्द ना प्राप्ति थाय एवो रस्ता शोधे छे। एक बाजु कविता आन्तरिक विषवाद व्यक्त करीने ना अने बीजी बाजु ते जीवन ना शाश्वत मूल्यो ते तेना चरम ध्येय ऊपर दृष्टि राखी समरसता नी स्थापना माटे मथे छे। बन्ने नु लक्ष्य एक छे मात्र मार्ग जुदा छे। आपणी नवतर कविता मां आ बन्ने प्रवाहो ओतप्रोत थया छे। आवा व्यापक अध्यात्म दृष्टि आज ना कविता ने क्षुद्रता मां थी, अभद्रता मां थी ने हताशा मां थी उगारी लेवा मां एने भरे सहायभूत बनी छे।' आधुनिक कविता प्रवाह, जयन्त पाठक, पृष्ठ २७६

३ आलोचना, स० डा० नगेन्द्र, 'निबन्ध', पृष्ठ १, १८ ७०

से मेल खाती है। इस क्षणजीविता और मानव की लघुता की स्वीकृति के पीछे वे तमाम मोहभग की स्थितिया हैं जो स्वतन्त्रता के बाद मध्यवर्ग की अनिवार्यता बन गई थीं। हर व्यवस्था के गलित अनाचार और भ्रष्टता के परिणामस्वरूप कवि मन की आस्था का ह्रास हुआ है। अपनी सास्कृतिक परम्पराओं और नैतिक मूल्यों पर विश्वास खो देने पर नए मूल्यों की खोज म, पश्चिम का वैयक्तिकता को प्रश्रय देने वाला अस्तित्ववाद, उसे अपनी तलाश का उपयुक्त साधन प्रतीत हुआ।

कविता और कहानी दोनों ही क्षेत्रों म जिस जोरदार स अस्तित्ववाद के नारे बुलन्द किए जा रहे हैं उससे यही लगता है कि अस्तित्ववाद पश्चिमी प्रभाव अथवा आरोपित आधुनिकता की आवश्यकता के रूप म आया है। कवियों को आधुनिक होने के लिए अपने को अस्तित्ववादी घोषित किए बिना निस्तार नहीं दीखता।

पश्चिम मे अस्तित्ववाद उतना नया नहीं है जितना कि वह समझा जाता रहा है। कीर्केगार्द पहला अस्तित्ववादी चिन्तक था जिसने जड और चेतन की सभी वस्तुओं को अस्तित्व के अन्तर्गत समेटा था किन्तु विशेषत मनुष्य ही उसके अन्तर्गत आया। मनुष्य को निर्णय लेने की छूट है किन्तु उसके परिणाम का विचार इस स्वातन्त्र्य को चिन्ता का विषय बनाए हुए था। इस निर्णय का परिणाम क्या होगा यह किसी को भी ज्ञात नहीं है। जगत की निश्चित रचना मे व्यक्ति का निश्चित स्थान है—यह कहना हास्यास्पद है। यह जगत् ऐसा है जिसम व्यक्ति को अपने स्थान का ज्ञान नहीं है। हमारा कोई निश्चित कर्तव्य है यह भी सिद्ध नहीं होता, अत ईश्वर को साक्षी रखने पर परिणाम क्या होगा इसकी चिन्ता किए बिना काम करना होगा—यह प्रतिपादन कीर्केगार्द का था।[1]

इसी वैयक्तिक सत्य ने जो अपने से और अन्य लोगों की वैयक्तिकता से सम्बद्ध है, व्यक्ति को ओर सचेत किया। ईश्वर का महत्त्व ज्ञान के उस युग म था भले ही ईश्वर पूर्ण नहीं रह गया था—ये भावनाएँ कीर्केगार्द के समय म प्रमुख थी। इसी समस्त ऊहापोह म मानव का महत्त्व बहुत क्षीण हो गया था, अत कीर्केगार्द का विरोध दार्शनिक क्रांति के लिए उचित ही था। उसने उन तथ्यों पर बल दिया जो छूट रहे थे। उसके अनुसार व्यक्ति की सुख प्राप्ति की इच्छा एक सहज वृत्ति है।

दोनों महायुद्धों के बीच की बौद्धिक उथल-पुथल मे जर्मनी मे कीर्केगार्द का प्रभाव मुखरित हुआ जिसका सम्बन्ध नीत्शे के बाद की तत्कालीन धाराओं से जोडा जा रहा था।

---

1 To Keirkegaard individuals alone were real Their resolutions *emerge through conflicts and tumults in the soul,* anxieties, agonies perilous adventures of faith into unkhown terretories The reality of everyone s existence proceeds thus from the inwardness of the man not from anything that *the mind can codify For objectified* knowledge is always at one or more removes for the truth Truth is subjectivity —Philip Marriet Existentialism and Humanism, Introduction

कीर्केगाद, जिसे आज अस्तित्ववादी दर्शन कहा जाता है उसके जनक हैं। यह ऐसा दर्शन नहीं है जिसका कोई पारिभाषिक प्रभाव अंग्रेजी साहित्य पर पड़ा है किन्तु उसके कुछ दृष्टिकोण, विशेषतः एक छिपी हुई उत्तेजना का सामान्य आभास, जो घटनाओं के दबाव से नहीं उपजता, मानव दशा मात्र के प्रति उदार होने के कारण बहुत से लेखकों में विभक्त है।

कीर्केगाद व्यक्ति के अपने अस्तित्व के बोझ और रहस्य के प्रति सजग थे। यह बोझ ऐसा बोझ था जो उनकी दृष्टि में महत्त्वाकांक्षी था और जिसकी हीगल जैसे दार्शनिकों ने उपेक्षा की थी। दार्शनिक विचारों की अतिविधि या संभावनाओं के विकास की बात करते हुए वे कहते हैं कि हमारा विश्व संभावनाओं और विचारों का विश्व नहीं है यह मानव का विश्व है जिसमें हर कोई हर दूसरे के लिए और स्वयं अपने लिए एक रहस्य है। कीर्केगाद के लिए जीवन में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य वैयक्तिक आत्मा का पारलौकिक के साथ सम्बन्ध था, जो इस स्थिति में था कि आत्मा का निर्णय कर सके संभवतः अपने जीवन के असीम एकान्त या अतिशय धर्मान्धता के कारण उन्होंने भय, त्रास और उत्तेजना पर बल दिया। एक अर्थ में वे एक सच्चे पर अपग धार्मिक दृष्टिकोण का प्रतिनिधान करते हैं।

कीर्केगाद के विचारों का सफल और शुद्ध कलात्मक विकास काफ्का की कहानियों और उपन्यासों में मिलता है। उनके 'दि कासल' और 'दि ट्रायल' उपन्यासों ने प्रत्यक्ष वर्णन प्रधान सहज जीवन के प्रति सबको आकर्षित किया है। ऐसी सहजता धोखा दे सकती है और काफ्का की कृतियों की गहन अस्पष्टता और उनके रूपकों के भ्रामक रूप ने जितने अर्थ लगवाए हैं किसी भी आधुनिक लेखक ने संभवतः नहीं लगवाए।

काफ्का का अर्थ यह लिया जा सकता है कि हम लोग विरासत में ही अपराध प्राप्त करते हैं। किसी भी किए न किए पाप और उसके निराकरण के लिए, और क्षमा के लिए हम ईश्वर प्राप्ति के प्रयास में सफल नहीं हो सकते। और प्रतिमा या सस्था (चर्च) के समान जो ईश्वर की प्राप्ति का दंभ भरते हैं का काम है विभ्रांत व्यक्ति या भोगने वाले इच्छुक के प्रति गहन सहानुभूति उत्पन्न करना और दो ऐसे प्रश्न उत्पन्न करना कि क्या कोई अंतिम अथोरिटी है और अगर है तो क्या केवल एक है? अतः आलोचक ने इन उपन्यासों को धार्मिक रूपकों के रूप में नहीं अपितु एक टूटते हुए समाज में असहाय व्यक्ति के चरित्र में प्रतिबिम्ब रूप में स्वीकार किया है। नागरिक मन गलती पर ही रहता है किन्तु हर चीज को ठीक करने वाले विभाग तक वह नहीं पहुँच सकता। पाठकों से वह अपील करते हैं इस कारण नहीं कि वे उनकी पहेलियों का उत्तर देना चाहते हैं अपितु इस लिए कि वह अतिशय गुढ़ता और गहनता से हमारे समय की उत्तेजना को अभिव्यक्त करते हैं। आज का पाठक अपने भय और चिन्ताओं को काफ्का के नायकों में खोज सकता है। समय में हम से पहले होने के बाद भी काफ्का ने जिस संसार का चित्रण किया वह हमारे ही प्रचारपूर्ण सरकार द्वारा नियंत्रित व्यक्ति और किसी न किसी प्रकार के स्थायी संकट और भरे हुए मानसिक चिकित्सालयों का ही विश्व है।

कीर्केगाद के अन्य उत्तराधिकारियों में सार्त्र जैसे लोग धार्मिक न होकर नास्तिक हैं और यह बात है कि अन्य समसामयिकों का आतंकित करने वाला संत्रास और भय उन्हें कीर्केगाद

के समान ही उत्सुक बना रहा है जिससे वे मानव जीवन मे वयक्तिकता की विशेषता लक्षित कर सकें।

वे इस तथ्य पर विशेष बल देते हैं कि यदि ईश्वर नही है तो मनुष्य ही मनुष्य को बनाता है (कहना यह है कि वयक्तिक रुचि ही मानव प्रकृति क्या होती है इसे परिभाषित करती है), अत कोई भी चुनाव हम करते है तो उत्तरदायित्व के भयकर भार से दब रहते है क्योकि हम केवल अपने लिए ही नही अपितु सबके लिए करते हैं। अस्तित्ववादियो के लिए हम लोग केवल सकट के युग म ही नही जी रहे हैं अपितु यह समय मानव के अस्तित्व मात्र के लिए सकट का है और यह सकट स्थायी है।

'अस्तित्ववाद अपने नास्तिक या आस्तिक रूप म ईलियट की मूसाई दया के समान है। अनुभव के प्रति ऐतिहासिक दृष्टि यह स्पष्ट करा सकती है कि एक युग ऐसा है जब इतिहासमत्ता आधुनिक साहित्य के लिए आवश्यक न रहे। अपने समय की बार-बार होने वाली दुघटनाओ के समान समय का बीत जाना मात्र कम महत्त्वपूण होगा। मानव जीवन की दशा जो इतनी सीमित और उदास है, अब स्थायित्व प्राप्त करती जा रही है और व्यक्ति उस थोडे से शाति, सुख और निर्माणात्मक समय को स्वीकार कर लेता है जो उस अनुग्रह के रूप में अधिक और अधिकार के रूप मे कम प्राप्त होता है। वह इन आशीषा को गिन लेता है और कृतज्ञ होता है।'[1]

गेब्रील मार्सेल, कार्ल जस्पस, हाइडेगर कामू फ्राज काफ्का के नाम इस अस्तित्ववादी आंदोलन से जुडे हैं जिनकी दृष्टि वतमान सकट के प्रति लगभग एक-सी है।

अस्तित्ववाद के प्रति जो भ्रामक दृष्टिकोण रहे हैं उनके कारण इसे एक दशन के रूप म स्वीकार किया जाने लगा है। वास्तव म अस्तित्ववाद एक दृष्टिकोण है और किसी भी दृष्टिकोण को स्वीकार करने का अथ उसे सम्पूणत स्वीकार करना है। किसी व्यवस्थित विचार-पद्धति से प्रभाव ग्रहण करने की बात समझी जा सकती है। एक पूरी विचार

---

1 Existentialism whether in its theist or atheist versions transcends, like Eliot's christian piety a merely historical attitude to experience and it seems possible that the period when we call in a wider sense, historicism was a main mark of modern literature may be coming to an end In a period of recurrent calamities like our own, the mere passing of time gradually comes to have less significance than it may have in more settled or more expansive epoch The conditions of human life, sad and limited as they are, assume a cer tain air of permanence and individuals accept what periods of peace and happiness and constructive activity they are granted less as a right than as a grace They count their ble sings and are grateful —G S Fraser Modern writer and his world, p 12

व्यवस्था हमारे सामने है—उसमें जहाँ से जो कुछ अपने अनुरूप लगे, उसे हम स्वीकार करते बाकी को अस्वीकार कर सकते हैं किन्तु किसी दृष्टिकोण को अपना अपनाना सम्भव नहीं है और एक दृष्टिकोण को सम्पूर्णतः अपनाने में बाधा यह सम्भव नहीं है कि हम व्यक्ति को एक दृष्टि से देखें, समाज का किसी और दृष्टि से तथा व्यवस्था को किसी और दृष्टि से और उनकी मूल्यवत्ता को परखने की दृष्टि कोई और हो। अस्तित्ववाद से केवल प्रभावित होकर रह जाना सम्भव नहीं है। कोई व्यक्ति यदि अस्तित्ववादी है तो पूरी तरह से अन्यथा नहीं है। यही दृष्टिकोण साहित्य से भी सम्बन्धित है। किसी विशेष कृति पर अस्तित्ववाद के प्रभाव का विवेचन रचना की मूल संवेदना अस्तित्ववादी होने से हो सकता है इस दृष्टि से नहीं कि उसके पात्र या परिस्थितियों में कहीं अस्तित्ववाद का प्रभाव है।

अस्तित्ववाद वह सिद्धान्त है जो मनुष्य के जीवन को सम्भव बनाता है और निश्चित करता है कि प्रत्येक सत्य और प्रत्येक कार्य के लिए परिवेश और मानव की वैयक्तिकता की आवश्यकता होती है।[1]

मनुष्य अपने आपको जो बनाता है उसके अतिरिक्त वह और कुछ नहीं है। वह सर्वप्रथम सत्तावान होता है। सबसे पहले मनुष्य ही वह प्राणी है जो अपने भविष्य की ओर अग्रसर होता है। अस्तित्ववाद का पहला प्रयास है कि प्रत्येक मनुष्य को जो कुछ वह है उसके प्रति सजग किया जाए और उसके अस्तित्व में पूर्ण उत्तरदायित्व को उसी पर स्थित कराया जाए। मनुष्य केवल अपने लिए नहीं सबके लिए उत्तरदायी है।

व्यक्ति निष्ठा का एक अर्थ यह है कि व्यक्ति निर्णय करता है अपना निर्माण करता है, उसके लिए मानवीय निष्ठाकार की अवहेलना करना असम्भव है। इनमें से दूसरा अर्थ ही अस्तित्ववाद का आधारभूत अर्थ है।

जहाँ कहीं भी परित्यजन (abandonment) शब्द का प्रयोग हुआ है उसका अर्थ है कि ईश्वर का अस्तित्व नहीं है और आरम्भ से अन्त तक उसकी अनुपस्थिति के परिणामों पर विचार करना होगा। ईश्वर बेकार की और महँगी उपकल्पना (hypothesis) है। उसके अभाव से कुछ भी परिवर्तन नहीं आएगा।

व्यक्ति परित्यक्त (condemned) इस कारण है कि उसने अपना निर्माण स्वयं नहीं किया है और इस संसार में आने के क्षण से ही वह अपनी प्रत्येक क्रिया के लिए जिम्मेदार रहता है।

निराशा (despair) का अर्थ यह है कि हम अपने को एक निर्भरता तक सीमित रखते हैं जो हमारी इच्छाओं से सम्बद्ध है। उस बिन्दु के बाद जहाँ विचाराधीन सम्भावनाएँ प्रभावहीन हो जाती हैं हम अपने को निरपेक्ष रखना है क्योंकि ईश्वर वहाँ नहीं है जो विश्व को हमारी इच्छाओं के अनुकूल ढाल दे। विश्व को जीतने की अपेक्षा अपने को जीतने का

---

1 Existentialism is a doctrine that renders human life possible, a doctrine also affirms that every truth and every action imply both an environment and a human subjectivity —J P Sartre Existentialism and Humanism

ग्रथ आशा छोडकर काम करने के अतिरिक्त और कुछ नही है।

निवृत्तिवाद (Quietism) उन व्यक्तियो का दृष्टिकोण है जो इस बात मे विश्वास करते हैं कि जो काम हमसे नही होता वह दूसरो को करने दिया जाये, किन्तु मात्र क्रिया के अतिरिक्त किसी और वास्तविकता म विश्वास नही करते। व्यक्ति अपनी क्रियाओ के प्रतिफलन के अतिरिक्त और कुछ नही है। प्रेम, प्रेम के कार्यो के अतिरिक्त और कुछ नहीं है और कला के क्षेत्र म प्रकटीहुई प्रतिमा के अतिरिक्त प्रतिमा और कुछ नही है।[1]

और व्यक्ति सक्षेप म—

Man is nothing but a series of undertakings that he is the sush the orginisation the set of relations that constitute these undertakings[2]

व्यक्ति यदि कायर है तो इस कारण कि उसने अपने कार्यों द्वारा स्वय को कायर बना लिया है। कायरता मुह मोड लेने या पराजय मान लेन से उपजती है और प्रकृति काय नही है अत मनुष्य प्रकृति से कायर नही हो सकता। यह सभव है कि वह अपनी कायरता छोड दे या कोई वीर अपनी वीरता छोड दे। महत्व केवल पूण प्रतिबद्धता (total commitment) का है और किसी विशेष कारण अथवा किसी विशेष क्रिया से हम प्रतिबद्ध नही हो जाते हैं।

अस्तित्ववाद का मूलभूत केन्द्र अप्रतिबद्धता(free commitments) है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने को मानवता के स्वरूप का पहचान कर, पहचानता ह। प्रतिबद्धता सदा ही समझ म आ सकती है भले ही वह किसी भी युग म किसी भी व्यक्ति के प्रति की गई हो। किन्तु व्यक्ति किसी और के लिए निणय नही ले सकता—ऐसे किसी भी निणय को अस्तित्ववाद अस्वीकारता ह। उसके अनुसार व्यक्ति का कभी अत नही होता क्योकि उसका (व्यक्ति का) अभी निश्चय होना बाकी ह।

व्यक्ति का अस्तित्व अपने परे के विचारो के नियोजन म या अपने को खोने मे होता है। दूसरी ओर आध्यात्मिक ध्येयो की प्राप्ति मे लग कर वह अपने अस्तित्व को बचा सकता है। क्योंकि वह अपने से आगे निकल गया है अत अपने सभी आध्यात्मिक प्रयासों का केन्द्र वह स्वय है।

मानव सृष्टि—मानव की वयक्तिकता की सृष्टि के अतिरिक्त और कोई सृष्टि नही है। अस्तित्ववाद सतत् नास्तिकता से पूण परिणाम प्राप्त करने का एक प्रयास ह। उसका अर्थ मनुष्य को निराशा के गत म छोडना कदापि नही ह। यह निराशा अविश्वास का पर्याय नही ह यहां इसका अथ कुछ और है। यह दशन उस अथ मे नास्तिक नही है कि ईश्वर के होने न होने की द्विविधा म ही अपन को समाप्त कर दे। उसके अनुसार वास्तविक समस्या

---

1 No potentiality of love other than that which is manifested is loving —J P Sartre Existentialism and Humanism

2 J P Sartre Existentiali m and Humanism

ईश्वर का अस्तित्व नही है । मनुष्य अपने को खोजना चाहता है और यह जानना चाहता है कि क्या उसे अपने आप से कोई नही बचा सकता ? ईश्वर के होने का कोई ठोस प्रमाण भी नही है और इसी अर्थ में अस्तित्ववाद आशावादी हैं, वह कार्यों का सिद्धान्त है ।

सार्त्र के भाषण पर आधृत उपयुक्त आलेख यह स्पष्ट कर देता है कि अस्तित्ववाद को समझे बिना उसकी व्याख्या करनेवाले विचारकों ने अस्तित्ववाद के बारे में कतिपय भ्रांतियाँ फैला दी हैं । पहली तो यह कि अस्तित्ववाद निराशा का दर्शन है और दूसरी यह कि अस्तित्ववाद आत्मघात को स्वीकार करता है जबकि मिथ आफ सिसाइफस में कामू ने स्वयं कहा है कि वे आत्मघात में विश्वास नही करते ।[1] ईश्वर को अस्वीकार अवश्य किया गया है किन्तु वह कोई शक्ति रूप ईश्वर का विरोध नही अपितु क्रिश्चियन अस्तित्ववादियों के ईश्वर का विरोध है ।

अस्तित्ववादी विचारधारा में जहाँ भी शब्द शब्द का प्रयोग हुआ है वहाँ तात्पर्य गद्यकार से है, कविता—चित्रकला, मूर्तिकला और संगीत के समान अधिक है इस दृष्टि से कि उसकी सर्जना का संसार भी बिम्बों से निर्मित होता है । जैसे ध्वनि और रंग बिम्बों का सृजन करते हैं उसी तरह अर्थ को रेखाओं या संगीत में नही बाँधा जा सकता । दूसरी ओर लेखक रंगों और रेखाओं से नहीं अर्थ से स्वयं को अभिव्यक्त करता है जो शब्द से अनिवार्यतः जुड़ा हुआ है और पदार्थ नही प्रतीक है । कविता गद्य के समान भाषा का उपयोग नही करती । वह तो भाषा की साधना करती है शब्द उसके लिए स्वतः साध्य है ।

अस्तित्ववादी, गद्यलेखन को एक विशिष्ट कला रूप मानते हैं । विशिष्ट इस अर्थ में कि अन्य कला रूप जहाँ बिम्ब-सृजन में ही अपनी सार्थकता पा लेते हैं वहाँ गद्य विचारों के सम्प्रेषण का माध्यम है । इसके द्वारा मानव चेतना, वास्तविकता का उद्घाटन करके क्रियाशील होती है । अतः साहित्य सृजन के माध्यम से लेखक अपने अस्तित्व की सार्थकता खोजना चाहता है और अपनी स्थिति को प्रामाणिकता प्रदान करना चाहता है ।

अस्तित्ववाद पर नए साहित्य—कविता और कहानी दोनों में ही काफी बहस की जा रही है किन्तु सच तो यह है कि कविता विचारों के सम्प्रेषण का माध्यम नही हो सकती । कविता का विषय अनुभूति को बिम्बों द्वारा सम्प्रेषित करना है । उसमें भाषा की बिम्ब क्षमता नहीं सांकेतिकता ही मूल्यवान होती है । इसीलिए विचार के सम्प्रेषण का माध्यम गद्य ही हो सकता है । कवि क्षणजीवी हो सकता है किन्तु कविता में क्षणजीविता का विचार ही क्षण की अनुभूति की अभिव्यंजना करेगा तभी काव्यात्मकता सम्भव होगी ।

पश्चिम से आयातित दर्शन की संगति हम अपने परिवेश से नही बैठा सके हैं क्योंकि अस्तित्ववाद को आरंभ करने वाली परिस्थितियाँ हमारे देश की नही हो सकती हैं । और सम्भवतः यही कारण है कि हिन्दी की अस्तित्ववादी कहलाई जाने वाली रचनाओं में देश की परिस्थितियों में मानव की समस्याओं का समाधान नही कामू काफ्का सार्त्र कीर्कगाद

1　By the mere activity of consciousness I transform into a rule of life what was an invitation to death and I refuse suicide —आल्बेयर कामू, दि मिथ आफ सिसाइफस, पृष्ठ ५५

के नामो के साथ एक बनावटी सन्त्रास का आभास मिलता है। पश्चिम की परिस्थितियों में जो नैराश्य और सन्त्रास स्वाभाविक लगता है, हमारी परिस्थितियों में आरोपित होकर वह झूठ, आरोपण और असगति के अतिरिक्त और कुछ नहीं लगता।

पिछले लगभग दस वर्षों की कविता उन विस्थापित युवा मनों की अभिव्यक्ति है जो किसी प्रकार की मान्यता न पाकर अपने अग्रजों के प्रति विक्षोभ से भर जाते हैं और वह विक्षोभ जब कोई निकास नहीं पाता तो आत्मदया आत्महीनता का बोध बनकर काव्य में अभिव्यक्त होने लगता है। अलग अलग गुटों में बँटे ये तमाम कवि, कहानीकार अपने अपने झडे ऊँचे किए काव्य के राजमार्ग पर जुलूस निकालते हैं—अपने आप को निष्कासित समझने लगते हैं।

स्वाधीनता के तत्काल बाद उभरी पीढी केवल आक्रोश में खौलती नहीं है उसके पास एक सुनिश्चित चिन्तन है एक ठोस आधार है जिस पर वह खडी है। चिन्तन के नाम पर नयी पीढी के पास केवल कुछ उधार लिए नाम हैं जिन्हे वह बार बार दोहराया करती है। हर कवि अपने को अलग परम्परा समझता है जिसके पास देने के लिए कुछ नहीं है और इतने छद्म बुद्धिजीवियों में जो स्वस्थ दृष्टिवाले हैं उनकी आवाज चीख पुकारों में डूब जाती है।

अस्तित्ववादी दृष्टिकोण ने सन '६० के बाद साहित्य में महत्त्व पाया है। हिन्दी और गुजराती दोनों में ही नयी कविता के पीछे अस्तित्ववादी चिन्तन का आधार है। गुजराती नयी कविता में स्थान-स्थान पर अस्तित्ववाद शब्द का प्रयोग हुआ है किन्तु यदि स्वीकार किया जाये तो अस्तित्ववाद की आत्मा से वह बहुत दूर है। उसमें, नाम कुछ भी दिया गया हो, जो प्रयोग हो रहे हैं वे प्रयोगवादी कविता के समीप हैं। शब्दों को नया अर्थ देना भाव व्यजना में असमर्थ होने पर आडे तिरछे शब्द लिखकर प्रभाव उत्पन्न करना ही अस्तित्ववाद नहीं हो जाता, उसके लिए एक विशेष भावबोध की आवश्यकता होती है जिसे समझने पर भी गुजराती नया कवि अपने विचारों पर हावी नहीं होने दे पाया है। गुजराती नयी कविता मध्यकालीन कविता के भग्नावशेषों से लेकर आधुनिक दृष्टिकोण तक अपने विषय का प्रसार किये है अत अस्तित्ववादियों की भगिमा में स्वातन्त्र्य, मृत्यु और क्षण की बात करते-करते कवि ईश्वर की लीलाओं का गुणगान करने लगता है तो सहज ही आश्चर्य होने लगता है, पर उसका समाधान भी तुरन्त ही हो जाता है क्योंकि गुजराती नया काव्य नयी कविता या नवगीत जैसे विभागों में विभाजित नहीं है।

वैयक्तिकता पर विशेष आग्रह

अस्तित्ववादी चिन्तन का वैयक्तिकता पर विशेष आग्रह है। नयी कविता के सदर्भ में अह का महत्त्व एक सीमा तक इसी वैयक्तिकता का पर्याय हो सकता है, किन्तु इसका अर्थ, निस्सदेह अस्तित्ववादी कभी नहीं रहा है। यहाँ—समाज सर्वहारा, बौजुआ, शोषक, शोषितों पर बरसाए जा रहे मौलिक व्याख्यानों के बीच से उभरकर व्यक्ति उठ खडा हुआ है। पश्चिम में व्यक्तिवाद व्यक्ति को हर प्रकार की स्वाधीनता देता है, व्यक्ति किसी से प्रतिबद्ध नहीं है—न ईश्वर से, न देश से न समाज से और न ही अपने परिवार से। यहाँ

व्यक्तिवाद का स्वर उससे पर्याप्त भिन्न है। अप्रतिबद्धता के प्रति मोह तो व्यक्ति के मन मे है किन्तु यह अप्रतिबद्धता अभी उसका प्रेय-मात्र है—वह इच्छित स्थिति है जिसे वह अनुभूति के स्तर पर कभी नही भोग सकता। फिर भी अतिशय सामाजिकता से उबर कर अपनी आवाज दूसरो तक पहुँचाने का प्रयास करता है। और एक ओर मध्यवर्गीय परिवेश के प्रति आक्रोश और दूसरी ओर बढती हुई व्यस्तता से भयभीत आत्मरक्षा की भावना म बट जाता है।'[1]

न खेलूँ मैं अगर शतरंज ऐसी गलत शर्तों पर
कि जिसमे सभी चालें बस तुम्हारी हो ?
न हो स्वीकार यदि यह खेल मुझको
जीतना जिसको तुम्हारी करनियत हो ?
और जिसमे हारना मेरी नियति हो ?[2]

व्यक्ति का अह उसे दुनिया से कुछ ऊपर उठा देता है। उसके अह को तोडनेवाला कोई भी प्रयास उसे असह्य है—

अह की चट्टान को तोडती
आ रही आवाज किसकी।
कौन चुपके वस्त्र को
तेज सूई की तरह छेदता ?[3]

गुजराती नयी कविता मे भी अह का यह स्वर सुनाई देता है। कविता जिस सीमा तक वैयक्तिक अब हो गई है उतनी पहले कभी नही थी। पहले कवि समाज के साथ अटूट रूप मे बँधकर विश्व समाज की स्थापना चाहता था। अब वह समाज को अस्वीकार नही करता किन्तु अपनी वैयक्तिकता को समाज के लिए मिटा देने को प्रस्तुत नही है। आलोचकगण चकित होकर कहते हैं—

विशाल एकात्मा का अनुभव इसका (कविता का) फल है—ऐसा आज तक माना जाता रहा है किन्तु आधुनिक कवि इस एकात्मता का निषेध करने निकल पडा है ऐसे चिह्न दिखाई पडने लगे हैं।[4]

कवि केवल अह का भेद नही है, अपने सारे कार्यों का लक्ष्य केन्द्र वह स्वय ही है। उसका विषय 'वह', 'वह तुम' के स्थान पर मैं म केन्द्रित हो गया है—

'हरेक फूल का नाम होगा ज्योतिष
प्रेम इस नाम को पहचानेगा ज्योतिष

---

१ आधुनिक कविता का मूल्यांकन इन्द्रनाथ मदान, पृष्ठ ६७ से उद्धृत
२ तीसरा सप्तक कुँवर नारायण पृष्ठ २७३
३ दूसरा सप्तक नरेश कुमार मेहता, पृष्ठ १२४
४ 'विशाल एकात्मा नो अनुभव ते एनु फल छे एम आज सुधी मनातु, आधुनिक कवि आ एकात्मा नो निषेध करवा नीकल्यो होय तेवा चिह्न देखाय छे।'—गुजराती साहित्य नो विकास रेखा धीरुभाइ ठाकर, पृष्ठ ३६२

हरेक गध का नाम होगा ज्योतिष
हवा में उड़ता पाखी पुकारेगा ज्योतिष ।[1]

अस्तित्ववादी के लिए वैयक्तिकता इसलिए आवश्यक है क्योंकि अपने को भीड़ से अलग कराने के प्रयास में जो कुछ वह करता है उसमें उसका स्वत्व अधिक है । वह वैसा इस लिए नहीं करता कि समस्त समाज के अन्य लोग वैसा करते हैं अथवा कुछ और करने के लिए नहीं है बल्कि इसलिए कि जो कुछ कर रहा है उसके लिए वह जिम्मेदार है, वैसा करने में वह अपने प्रति ईमानदार रहता है । पर हमारे परिवेश में समाज से एकदम कट पाने का साहस कवि कभी नहीं कर पाया है घोर असामाजिक होने पर भी नहीं । वह तिलमिला उठता है—सब आघातों को सह लेता है लेकिन समाज से कटकर जीना उसकी नियति नहीं है—

हैं छिपी, इन मुट्ठियों के बीच
मजबूरियां, लाचारियाँ, असमर्थताएँ
एक हो जिसको बताएँ
मुट्ठियाँ ये हैं बनी फौलाद की
सबको समेटे
युग युगों से बन्द हैं अब तक ।[2]

और

क्या मैं चीन्हता कोई न दूजी राह ?
जानता क्यों नहीं निज में बद्ध होकर है नहीं निर्वाह ।[3]

यह अतिरिक्त आत्मकेंद्रिता की भावना वास्तव में अस्तित्व के प्रति, सत्ता के प्रति शंका का प्रतिफलन है । शंका बार-बार उठाई गई है जिसमें अस्तित्व में प्रेम, मृत्यु विषाद, भय सभी-कुछ है—ये हमारे जीवन की अनिवार्यताएँ हैं जिनसे किसी भी प्रकार छुटकारा नहीं पाया जा सकता है । ईश्वर के अभाव में मनुष्य एकदम अकेला हो जाता है और ईश्वररहित समाज में जीने वाला व्यक्ति उसी अकेलेपन से और अपने होने मात्र पर शंका के कारण अपने में ही सिमट जाता है । अपने लिए उसे जो अर्थ मिलता है वह उसे संवेदनशील होने से बचाता है । पहले अपने होने का एहसास और उसके बाद अपने लिए अर्थ प्राप्त करने का आरंभ संघर्ष महायुद्धों के बीच भटकी हुई मानवता के लिए सार्थक जीवन दृष्टि थी ।[4]

लोभ के वशीभूत गदगद श्रद्धालुओं के मेल में
भीड़ के प्रपंच बीच शंकित जिज्ञासु एक—
अशुभ उपस्थिति हूँ ।

---

१ फीरानी दीवानो ज्योतिष जानी, पृष्ठ १
२ नाव के पाँव जगदीश गुप्त, पृष्ठ २१
३ इत्यलम् स० ही० वात्स्यायन 'अज्ञेय'
४, माध्यम सितम्बर ६५ श्रीकान्त वर्मा, पृष्ठ ६४

व्यक्तिवाद का स्वर उससे पर्याप्त भिन्न है। अप्रतिबद्धता के प्रति मोह तो व्यक्ति के मन में है किन्तु यह अप्रतिबद्धता अभी उसका प्रेय-मात्र है—वह इच्छित स्थिति है जिसे वह अनुभूति के स्तर पर कभी नहीं भोग सकता। फिर भी अनिवार्य सामाजिकता से उबर कर अपनी आवाज़ दूसरों तक पहुँचाने का प्रयास करता है। और एक ओर मध्यवर्गीय परिवेश के प्रति आक्रोश और दूसरी ओर बढ़ती हुई व्यस्तता से भयभीत आत्मरक्षा की भावना में बँट जाता है।[1]

> न खेलूँ मैं अगर इनरज एसी गलत शर्तों पर
> कि जिसमें सभी चालें बस तुम्हारी हों ?
> न हो स्वीकार यदि यह खेल मुझको
> जीतना जिसको तुम्हारी बन्दियत हो ?
> और जिसमें हारना मेरी नियति हो ?[2]

व्यक्ति का अहं उसे दुनिया से कुछ ऊपर उठा देता है। उसके अहं को तोड़नेवाला कोई भी प्रयास उसे असह्य है—

> अहं की चट्टान को तोड़ती
> आ रही आवाज़ किसकी।
> कौन चुपके वस्त्र को
> तेज सूई की तरह छेदता ?[3]

गुजराती नयी कविता में भी अहं का यह स्वर सुनाई देता है। कविता जिस सीमा तक वैयक्तिक अब हो गई है उतनी पहले कभी नहीं थी। पहले कवि समाज के साथ अटूट रूप में बँधकर विश्व समाज की स्थापना चाहता था। अब वह समाज को अस्वीकार नहीं करता किन्तु अपनी वैयक्तिकता को समाज के लिए मिटा देने को प्रस्तुत नहीं है। आलोचकगण चकित होकर कहते हैं—

विशाल एकात्मा का अनुभव इसका (कविता का) फल है—ऐसा आज तक माना जाता रहा है किन्तु आधुनिक कवि इस एकात्मता का निषेध करने निकल पड़ा है ऐसे चिह्न दिखाई पड़ने लगे हैं।"[4]

कवि केवल अहं का मेघ नहीं है अपने सारे कार्यों का लक्ष्य केन्द्र वह स्वयं ही है। उसका विषय 'यह, वह, तुम' के स्थान पर 'मैं' में केन्द्रित हो गया है—

> 'हरेक फूल का नाम होगा ज्योतिष
> प्रेम इस नाम को पहचानेगा ज्योतिष

---

१ आधुनिक कविता का मूल्यांकन इन्द्रनाथ मदान, पृष्ठ ६७ से उद्धृत
२ तीसरा सप्तक कुँवर नारायण पृष्ठ २०३
३ दूसरा सप्तक नरेश कुमार मेहता, पृष्ठ १२४
४ 'विशाल एकात्मा नो अनुभव ते एनु फल छे एम आज सुधी मनातु, आधुनिक कवि आ एकात्मा नो निषेध करवा नीकळ्यो होय तेवा चिह्न देखाय छे।'—गुजराती साहित्य नो विकास रेखा धीरुभाई ठाकर, पृष्ठ ३६२

हरेक पथ का नाम होगा ज्योतिष
हवा में उड़ता पाखी पुकारेगा ज्योतिष ।[1]

अस्तित्ववादी के लिए वैयक्तिकता इसलिए आवश्यक है क्योंकि अपने को भीड़ से अलग करने के प्रयास में जो कुछ वह करता है उसमें उसका स्वत्व अधिक है। वह वैसा इसलिए नहीं करता कि समस्त समाज के अन्य लोग वैसा करते हैं अथवा कुछ और करने के लिए नहीं है बल्कि इसलिए कि जो कुछ कर रहा है उसके लिए वह जिम्मेदार है, वैसा करने में वह अपने प्रति ईमानदार रहता है। पर हमारे परिवेश में समाज से एकदम कट पाने का साहस कवि कभी नहीं कर पाया है, घोर असामाजिक होने पर भी नहीं। वह तिलमिला उठता है—सब आघातों को सह लेता है लेकिन समाज से कटकर जीना उसकी नियति नहीं है—

है छिपी, इन मुट्ठियों के बीच
मजबूरियाँ, लाचारियाँ, असमर्थताएँ
एक हो जिसको बनाएँ
मुट्ठियाँ ये हैं बनी फौलाद की
सबका समेटे
युग युगों से बन्द हैं अब तक ।[2]

और

क्या मैं चीन्हता कोई न दूजी राह ?
जानता क्या नहीं निज में बद्ध होकर है नहीं निर्वाह ।[3]

यह अतिरिक्त आत्मकेन्द्रिकता की भावना वास्तव में अस्तित्व के प्रति, सत्ता के प्रति सतर्कता का प्रतिफलन है। यह बात बार-बार उठाई गई है जिसमें अस्तित्व में प्रेम, मृत्यु, विषाद, भय सभी-कुछ है—ये हमारे जीवन की अनिवार्यताएँ हैं जिनसे किसी भी प्रकार छुटकारा नहीं पाया जा सकता है। ईश्वर के अभाव में मनुष्य एकदम अकेला हो जाता है और ईश्वररहित समाज में जीने वाला व्यक्ति उसी अकेलेपन से और अकेले होने मात्र पर शंका के कारण अपने में ही सिमट जाता है। अकेले निर्णय का भय मिलता है वह उसे संवेदनशील होने से बचाता है। पर अकेले होने का एहसास और उसके बाद अपने लिए पथ प्राप्त करने का अनन्य-अपार महत्तुओं के बीच भटकी हुई मानवता के लिए सतत जीवन-दृष्टि थी ।[4]

मौन के वशीभूत सदृश्य श्रद्धालुओं के मन में
भीड़ के अन्दर बीच पवित्र जिज्ञासु एक—
अद्भुत दर्शनार्थी हूँ ।

मैं अपनों के हठात सत्यों से दण्डित हूँ ।
उनके विश्वासों से हारा हूँ
उनकी नादानी से
कुछ ऐसे अपराधी साबित हूँ
मानो अपना ही हत्यारा [illegible] ।
जीवन में क्या यह कुटिल द्वंद्व ?
यह कैसा विधान—निर्भय जीना अवध ?
जीवित हूँ, या केवल अपहृत हूँ ?
सज्ञा हूँ या केवल व्यवहृत हूँ ?
क्या इतना ऊहापोह
यदि मात्र अनुकृति हूँ तुम्हारी ।[1]

क्षणजीविता

क्षण का महत्व ऐसे तो मृत्यु की आकस्मिकता पर आधृत है पर नयी कविता में इस आकस्मिकता का अर्थ 'पल में परलै होयगी' के साथ नहीं जोड़ना चाहिए । नयी कविता को देन की ऊहापोह में जो अनुभूतियाँ दी उनमें इस अनिश्चितता का भी हाथ है। नया कवि क्षण की अनुभूति पर बल इसलिए देता है कि वह अपने को समसामयिक जीवन के प्रति प्रतिक्षण उत्तरदायी समझता है । उससे विरत होकर शाश्वत की गोद में विश्राम करने की कल्पना करना उसके स्वभाव के प्रतिकूल है । जीवन क्रम की स्वाभाविक अखण्डता उसे क्षण की अनुभूति में भी उन तत्वों की यथेष्ट उपलब्धि करा देती है जो वास्तव में नित्य हैं—

क्या बुरा है यदि क्षण से अचानक
प्रस्फुटित होकर प्रगल्भ बहार सा
मूर्छित वनों में
पुनः अपने बीज के भवितव्य ही तक
लौट आऊँ
और अगला कदम ही मेरा उठाया क्रम
कहीं था
या कहीं भी नहीं ।[2]

क्षणों के खण्डहरों में होते हुए जीवन और मृत्यु के सम्बन्ध से सभी कवि परिचित हैं । वास्तविक संकट के पहले ही वे संकट का अनुभव कर लेते हैं—

लंका में राम पधारें
इससे पहले ही हम

१ आत्मजयी कुँवर नारायण, पृष्ठ १२०
२ चक्रव्यूह कुँवर नारायण पृष्ठ १२५

रावण रावण खेल चुके ।[1]

और रावण रावण खेलन का सन्त्रास सब ओर फैला हुआ है ।

गुजराती नयी कविता, वास्तव मे उस दौर से गुज़र रही है जो हिन्दी कविता मे प्रयोगवाद था । या कविता अतियथार्थवादी होने के प्रयास मे, केवल क्लिष्ट प्रतीको के जगल म भटक गई है । उसका स्वर अस्तित्ववादियो के समीप उतना नही पडता जितना कि अतियथार्थवाद के ।

अप्रतिबद्धता

अप्रतिबद्धता का प्रश्न स्वाधीनता क बाद सन '६० के आसपास जितना उठने लग है उतना पहले कभी नही उठा था । अप्रतिबद्ध, बस वही रह सकता है जिस पर कोई उत्तरा दायित्व न हो और निजी सुख दु ख की चिन्ता के अतिरिक्त और कोई चिन्ता उसे न व्यापे । वसे स्वाधीनता के बाद अधिकारों को प्राप्त करने के लिए जो होड छिड गई है, जितनी योजनाओ का पर्दाफाश हो चुका है उनम सोचने समझने वाला व्यक्ति निस्सग हो गया है । आलोचना '६८ के जनवरी / माच अक म अप्रतिबद्धता के प्रश्न पर विचार करते हुए नामवरसिंह ने यह साबित करने की चेष्टा की है कि अप्रतिबद्धता मोहभग की उपज है, जिसकी बहुलता पिछली पीढी के लेखका मे पाई जाती है । युवा लेखका ने कोई मोह पाला नही जो उसका भग होता । वह तो मोहभग के बाद की उपज है, अत वह न उस रूप म रोमान्टिक है और न एटीरोमाटिक । पर आलोचना के इसी अक म इस मोहभग से परे और अप्रतिबद्धता से दूर साबित की जानी वाली पीढी के लेखक का कथन उनके कथ्य के विपरीत पडता है—"यो स्वतत्रता के उपरान्त की साहित्यिक पीढी या युवा पीढी के समक्ष तमाम स्थितियाँ इस प्रकार प्रतिफलित हुई हैं कि विश्वास नाम का तत्र छिन्न भिन्न हो गया है । उसे लग रहा है कि इस यात्रिक ऊहापोह मे वह एक अनियत्रित इकाई बनकर रह गया है । तमाम पारिवारिक तथा सामाजिक सम्बन्ध उसे मात्र कडुवाहट के लग रहे है । उसे समय की अनिवाय सत्ता ने अपने शिकजे म जकड लिया है । वह इस छटपटाहट को व्यक्त करने के लिए प्रतिश्रुत है । यह छटपटाहट उसे अलगाव दे रही है और यही अलगाव उसकी कृतियो म भी परिलक्षित हो रहा है ।'

दोना म से किसी एक की दृष्टि तो निश्चय ही भ्रामक है । कवि स्वय अपनी पीढी के विश्वास का टूटता हुआ बताता है—जो अप्रतिबद्धता के लिए उत्तरदायी है और आलोचक की नजर म उस पीढी न कोई मोह पाला ही नही जो भग हो । पर वे शायद साहित्य के उस स्वर को भूल गए जिसम कवि न अपन को अप्रतिबद्ध रखने के लिए उदासीनता ओढ ली है—

---

१ फोए नो दीवाली ज्योतिष जानी — लका मा राम पधारे
अे पहेला ते आपणे
रावण रावण रमी चूक्या छीअे

न हमारी आँखें हैं आत्मरत
न हमारे होंठों पर शोकगीत
जितना भी सके ऊब लिए
अब हम किसी भी व्यवस्था म डाल दो—
जी जाएँगे।[१]

और

ऐसी अ-यवस्था म तोडा भी जिसे नही जा सकता
भोगा भी जिसे नही जा सकता
छोड दूँ
सोचता हू सोचना भी छोड दू।[२]

यह किसी भी व्यवस्था म जीने और सोचना छोड देने के लिए तत्पर हो जाने के लिए जब तक बाध्य न किया जाए तब तक ऐसी निरपेक्ष स्थिति कैसे आ सकती है ? इस स्थिति को लाने का दायित्व हम केवल परिस्थितिया और परिवेश पर ही छोड सकते हैं। परिस्थिति वैयक्तिक हो सकती है पर परिवेश एक सामूहिक सत्य है जो हम सबके लिए करणीय और अकरणीय सिद्धान्तो को स्थापित करता है। जब यही सामूहिक सत्य केवल नाम करने को सत्य हो, जिसकी शर्तें व्यक्ति-व्यक्ति के लिए बदलती रहें तो उसके प्रति अविश्वास न हो तभी आश्चय होगा। यह अप्रतिबद्धता दायित्वहीनता तक विस्तृत नही है उसने अपने ही सदभ म अपने ही प्रति उदासीनता मे अभि-यक्ति पाई है। काफी सीमा तक पश्चिम से आयातित दशन के प्रभाव के कारण कवि मन के य बौद्धिक उलझाव हैं जो उस विचारधारा से किंचित साम्य पाने पर अपने आपको उसके सहारे छोड देता है। अपने को हाथीदाँत की पोली मीनारो म छिपा वह आँख मूद कर आसपास से निश्चिन्त हो जाता है किन्तु काव्य की यह अप्रतिबद्धता सवकालीन नही है। अपने को कीर्केगाद और नीत्शे की मुर्दा पोशाक पहनकर घूमने वाला समझने वाले लोग किसी न किसी स्तर पर अपने पाँव धरती पर पाते हैं।

वास्तव मे साहित्यकार किसी के प्रति प्रतिबद्ध नही है। प्रतिबद्धता एक ऐसी नागफाँस है जो व्यक्ति को मात्र कुण्ठित करती है, उसे एक दायरे म कद कर देती है—वह दायरा राजनीति का हो या सामाजिक मर्यादाओ का या साहित्यिक चितन का। साहित्यकार कोई विदूषक नही है कि उसे किसी मानी हुई या तय की हुई परिपाटी का सृजन करने के लिए बाध्य किया जाए। आज के साहित्यकार ने सडी गली परम्पराओ से उस केंचुल को उतार फेंका है जिसने गत कई दशको से साहित्य को ग्रसित कर रखा था। आज का विद्रोही साहित्यकार प्रतिबद्धता के प्रति कोई आकषण नही रखता। वह अगर किसी से प्रतिबद्ध है तो अपने आतरिक सघष से अपनी ग्रन्थियो से अपने वैयक्तिक व्यक्तित्व से। यो प्रतिबद्धता का सम्बन्ध साहित्यकार से कभी नही रहा। जो क्रातिदर्शी रहे युगद्रष्टा रहे वे किन्ही भी

१ सक्रात कैलाश वाजपेयी, पृष्ठ ९
२ वही, पृष्ठ ७३

बन्धनों में नहीं बँधे—

लीक पर वे चलें जिनके
चरण दुर्बल और हारे हैं
हमें तो जो हमारी यात्रा से बने
ऐसे अनिर्मित पथ प्यारे हैं।[1]

मुक्तिबोध ने अपनी तथा अपने समकालीन कवियों की रचना प्रक्रिया पर एक निर्मम तटस्थ, पर्यवेक्षक की दृष्टि से विचार किया है। वे कला के तीसरे क्षण की बात जहाँ करते हैं वहाँ वे तमाम समकालीनों से परे हट कर फैंटेसी को शब्दबद्ध करने लगते हैं वहाँ उनका काव्य संसार किसी राजनीतिक विचारधारा का नहीं अपितु एक संवेदनशील कवि की रचनाओं का भयावह और वैयक्तिक विरोधाभासों से भरा चित्र दिखाई देने लगता है। मुक्तिबोध ने अप्रतिबद्धता के संकट को कई तरह से झेला है—

अधूरी और सतही ज़िन्दगी के गर्म रास्ता पर
हमारा गुप्त मन
जिसमें सिकुड़ता जा रहा
जैसे कि हब्शी एक गहरा स्याह
गोरों की निगाहों से अलग ओझल
सिमट कर सिफ़र होना चाहता हो जल्द।[2]

यहाँ गोरे वे समकालीन हैं जिनके प्रति मुक्तिबोध एक अतिरिक्त घृणा से भर गए हैं—एक निर्वासन की तीव्र इच्छा यहाँ व्यक्त है।

अप्रतिबद्धता का यह स्वर गुजराती नयी कविता में उतना मुखर नहीं है। समाज से बेहद जुड़ा हुआ होने के कारण कवि केवल महानगर की तीव्र गति के मध्य अपने आपको हर परिस्थिति के अनुकूल ढालता चलता है। किसी भी कवि से पूर्ण प्रतिबद्धता का दावा करना अनुचित ही है फिर भी गुजराती कवि भक्ति और आधुनिक चेतना दोनों से ही जुड़े होने के कारण किस विषय से प्रतिबद्ध है यह कहना कठिन है। सुरेश जोशी अस्तित्ववाद से प्रभावित सबसे महत्त्वपूर्ण कवि माने जाते हैं, एक ओर वे ईश्वर के अस्तित्व की भ्रांति में जीवित रह कर सुख प्राप्त करते हैं और दूसरी ओर उसी भ्रांति की व्यापकता का गुणगान करते भी दिखाई देते हैं—यहाँ वह अप्रतिबद्ध हैं दोनों के ही प्रति, पर 'रे' में प्रकाशित कविताएँ जिसके मुख पृष्ठ पर बड़े बड़े अक्षरों में लिखा रहता है कि 'रे' में प्रकाशित कृतियाँ हम सम्मत ही हैं ऐसा कोई न माने[3]—फिर अप्रतिबद्धता का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है?

जब मन की घृणा भी चुक जाए उस समय अप्रतिबद्धता ही एकमात्र उपाय बच रहता है अपने अस्तित्व को बचाए रखने का। अपने आसपास से समझौता न करने की

---

१ एक सूनी नाव सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृष्ठ ३१

२ चाँद का मुँह टेढ़ा है मुक्तिबोध, पृष्ठ १४८

३ 'रे' माँ प्रकट थती कृतिओ मने सम्मत छे एम कोई ए मानी लेवुं नहीं।

जिद म जब मन प्रसग हो जाता है तो अप्रतिबद्धता के अतिरिक्त और कोई उपाय नही बच रहता, पर गुजराती कवि की अप्रतिबद्धता उतनी गहरी नही है जितनी कि हिन्दी के नए कवि की। एक अपने परिवेश से बेहद जुडा हुआ है और विषयो का क्षेत्र बहुत अधिक विस्तृत होने के कारण अप्रतिबद्ध लगने लगता है जबकि हिन्दी कविता म अप्रतिबद्धता जीवन की विसगतिया के कारण आई है।

सत्रास

व्यक्ति त्रस्त होता है किसी विभीषिका से वह युद्ध हो अथवा कोई भयकर परिवर्तन। जब यह प्रश्न जीवन आस्था और विश्वास पर प्रतिप्रश्न लगा देता है तो सत्रास के लिए भूमिका तैयार हो जाती है। यह सत्रास खडखडाते हुए रोबट कम्प्यूटर जबडा फाडे आदमी को समूची निगल लेने वाली मशीनो महत्त्वाकाक्षा की हत्याओ, बेतहाशा भागते शहरो या एक पर एक चली आ रही सनाओ म दिखाई देता है जो अपने हर कदम के साथ किसी देश को नक्शे से हटा देती है, किसी व्यक्ति को शतरज के मोहरे की तरह आगे बढा देती है या एक पर एक खडे मकानो के सामने गर्दन उठाए मानव को बौना बना देती है। यह सत्रास बीसवी शताब्दी के अतिम चरण के लिए कोई नई बात नही है। सब जीते जा रहे हैं क्योकि जीवित हैं। प्रकृति का शासक चाँद पर पहुँचने की होड मे कब लडखडाता हुआ धरती पर आ गिरेगा वह नही जानता—कब यह धकपक करती मशीन उसके शरीर को समूचा निगल डालेगी वह नही जानता। कब तक सोमवार मगलवार, बुधवार का क्रम उसे जीना पडेगा उसे नही मालूम। उसे यह भी नही मालूम कि बस की लम्बी लाइन के अत म खडे होने वाले को एक जैसे घरो म अपना घर खोजने का कब अवसर मिलेगा। सत्रास का यह स्वर नई कविता के लिए कोई आकस्मिक स्वर नही है।

महानगरो म जीवन की गति सिमट जाने के कारण रेंगने वाले शहर भी लाल हरी बत्ती के नियत्रण मे चलने लगे हैं। आधुनिकता की दौड म हम शायद बहुत पीछे हैं फिर भी यान्त्रिकता की विभीषिका स्वाधीनता क बाद बहुत बढ गई है—

हर मकान की पीठ पर नए मकान
हर दिन
शहर की सीढी पर
नया शहर
किन्तु नवागन्तुक के आन का बोध नही
हर्ष नही
दु ख नही
क्षोभ नही।[1]

यह सत्रास किसी एक साहित्य का नही है किन्तु समूचा भारतीय साहित्य सक्रमण

1 [illegible] श्रीकान्त वर्मा, पृष्ठ ६१

की इसी स्थिति से गुज़र रहा है—

भोर
मेरे हाथ चूमती है
लगता है
होठों से सारा रक्त चूम लेगी

लगता है
मैं समूचा सुलग जाऊँगा
रात कामांध
भील कन्या सी
अपनी जांघों में दबा लेती है
जिन्दगी
त्रास त्रास त्रास
मुझे जीने का प्रयत्न छोड़ देना चाहिए।[1]

अस्तित्ववादी विचारधारा विस्तृत पैमाने पर हुए युद्धोत्तर परिवर्तन के बाद उभर कर आई थी। योरप के लिए यह युद्ध जितना निर्णायक था—एशिया का वह भाग जिसे भारत कहते हैं उसकी लपटों की गर्मी से ही परिचित हो सका था अतः भारतीय साहित्य में वर्णित संत्रास की पृष्ठभूमि युद्ध उतना नहीं है जितना कि औद्योगीकरण और स्वातन्त्र्योत्तर विभ्रम। इसके अतिरिक्त चिन्तन में एक प्रकार की सार्वभौम एकरूपता आने से यह स्थिति आ गई है—

मैं किसी भी सड़क पर

---

२ रे मणिलाल देसाई—
सवार
मारा हाथे पर चुंबन करे छे
मने लागे छे
होठ वाटे मारुं लोही हमणां ने चूसी लेशे
साम पोताना कठिन उष्ण स्तनो
मारा खुल्ला वक्ष पर दबावे छे
मने लागे छे
हमणा हुं सळगी जईश
रात
कामांध भील कन्या नी, जेम
पोताना बे साथळोनी वच्चे
मने पूरी राखे छे
जिंदगी
त्रास त्रास त्रास
मारे जीववाना प्रयत्नो छोडी देवा जोइए।

निकल जाता
और किसी भी
बस पर आहिस्ता
बैठ जाता
(हूँ)
मेरा कोई नाम नहीं ।[1]

मृत्यु के एहसास का आतंक

जीवन की सबल एक परिणति है—मृत्यु । यह समृद्धि के मार्ग से हो अथवा कंगाली के मार्ग से । पहला मार्ग अपने में जीवित समाधि के समान है क्योंकि सुख में आकण्ठ डूबा व्यक्ति उस एकरस जीवन से उबरने का भी प्रयास नहीं करता । और दूसरी तरह का नरक संसार के अधिकांश लोगों का प्राप्य है क्योंकि वे अपनी इच्छा के विरुद्ध अकाल मृत्यु मरने के लिए अभिशप्त हैं । वास्तव में जीवन मूल्यों की तलाश में भटकता हुआ व्यक्ति अपने जीवन से ही सन्त्रस्त हो जाता है ।

ऐसा नहीं है कि अस्तित्व की क्षणिकता पर कभी प्रश्न ही न उठाया गया हो । वैदिक, औपनिषदिक ग्रंथों से प्रारम्भ हुई यह प्रश्न शृंखला आज तक नहीं टूटी है किन्तु अब वह केवल प्रश्नमात्र नहीं है—एक विभीषिका है जिससे मुक्ति नहीं ही मिल पाती ।

अस्तित्ववादी विचारधारा क्योंकि महायुद्धों का परिणाम है, अतः आसन्न मृत्यु का आतंक मात्र उन्हें अपने से ही अजनबी बना देता है । 'अपने अपने अजनबी' में बर्फ के तह खाने में दबी सेल्मा और योके की मनःस्थिति के हम साक्षी नहीं हो सकते ।

राजकमल चौधरी का 'मुक्ति प्रसंग' या कुँवरनारायण का 'आत्मजयी' इस आतंक की ओर संकेत तो करता है लेकिन जीवित समाधि की यन्त्रणा उसमें नहीं है । मृत्यु का अर्थ है समय से ऊपर हो जाना पर वास्तव में होता यह है कि मृत्यु जीवन की समाप्ति बन जाती है । जीवन का अर्थ मृत्यु नहीं हो सकता और मृत्यु की पहचान व्यक्ति दूसरी मृत्यु में करना चाहता है । आधुनिक मनुष्य की त्रासदी यही है कि वह जीवन और मृत्यु दोनों से ही नहीं उबर पाता । उसे जीवन के उत्तर में भी प्रश्न मिलते हैं और मृत्यु के उत्तर में भी—

'जीवन क्या है ?
मृत्यु क्यों ?
मुक्ति कैसे ?
ईश्वर कहाँ ?'[2]

मृत्यु से इतना भयभीत है मनुष्य कि हर गति में, हर स्वर में मृत्यु की ही पगध्वनि सुनाई देती है—

---

१ मायादर्पण श्रीकान्त वर्मा, पृष्ठ १८
२ आत्मजयी कुँवर नारायण, पृष्ठ १०८

सूखे पत्तों की—
टूटती आवाज की
एकसुरी लय में
मृत्यु की पदचाप गूंजती है।[1]

ईश्वर की सत्ता में अविश्वास

नया कवि ईश्वर को स्वीकार नहीं करता—जब हम यह कहते हैं तो इसका अर्थ केवल इतना है कि ईश्वर जो अफीम की तरह व्यक्ति को पलायन करने में मदद देता है, जो सबके बड़े-से-बड़े अपराधों को गंगा स्नान मात्र से धो देता है जो अपने आपसे भागने में बड़ी सहायता करता है—नए कवि को मान्य नहीं है, इसका अर्थ केवल इतना है कि वह अध्यात्म जो बाहर के तूफान से बचने के लिए शुतुर्मुग की तरह रेत में सिर गड़ा लेता है—नए कवि का अध्यात्म नहीं है। यह अध्यात्म जो अतीत का एक सुन्दर परदा खड़ा कर व्यक्ति को छिपा लेता है, नए कवि को स्वीकार नहीं है। नए कवि का अध्यात्म वह है जो उसे काम करने को प्रोत्साहित करता है—यह अध्यात्म उसकी अपनी आस्था है, उसका अपना विश्वास है। उसका विरोध उन तैंतीस करोड़ देवी देवताओं से है जो अपने चमत्कारों से साधारण मनुष्य को एक झूठ के संसार में जीवित रहने को बाध्य करते हैं।

अस्तित्ववादी की तरह नया कवि नास्तिक नहीं है लेकिन वह उन स्थापित मूल्यों के प्रति आस्तिक भी नहीं है जिनमें घंटा बजा कर भगवान को जगाना और मंदिर की देहरी पर माथा पटक कर प्रायश्चित्त करना ही आस्तिकता मानी जाती है। उनकी व्यस्तता उन्हें इतना समय ही नहीं देती कि वह ईश्वर के होने या न होने की समस्या पर बहस कर सके। ईश्वर का अस्तित्व मान लो उसके उत्तरदायित्व को समाप्त नहीं कर सकता। अपने पर उसकी आस्था ईश्वर में विश्वास से अधिक है—

बार बार अपने भीतर दोहराता हूँ
मैंने जो कुछ किया
ठीक किया,
मैं जो कुछ कर रहा हूँ
ठीक कर रहा हूँ
मैं जो कुछ करूँगा, ठीक करूँगा।
अपने पर मेरी आस्था
इतनी छोटी नहीं

---

१ र लाभशंकर ठाकर पृष्ठ ४—
सुका पादडा ना
तूटी गयेला अवाज ना
एक सुरी लय मां
मृत्यु ना पदध्वनि पडघाय छे।

द्वारा मृत्यु की वेदना को स्वर देते हैं। सुलगती हुई सिगरेट, कुएं में डूबने पर मृत्यु का आना, अस्तित्व को सोखती हुई नींद का गुण, अंधी आँखों के सामने खड़े नग्न अंधकार और छिपी वेदना के आँसू मृत्यु के नित नए रूप में अपने अस्तित्व को खोजते हुए कवि के स्वनिर्मित बिम्ब हैं। सुरेश जोशी, ज्योतिष जानी और आदिल मंसूरी की कविताओं में अस्तित्ववादी स्वर तो है किन्तु यह आंशिक प्रभाव इस दृष्टिकोण के प्रति प्रयास ही करता है।

हिन्दी कविता में भी आत्मजयी के अतिरिक्त ऐसी कोई कृति नहीं है जिसे पूर्ण अस्तित्ववादी स्वीकार किया जाए। आत्मजयी का नचिकेता उपनिषद् का संभावनाहीन पात्र न होकर जीवन मूल्यों को तलाश करता हुआ दिग्भ्रान्त है जिसके लिए जीवन और मृत्यु दोनों ही अभिशाप हैं। उपनिषद् का नचिकेता असहमति और बौद्धिक स्वायत्तता का प्रतीक है पर आत्मजयी का नचिकेता अस्तित्व का प्रश्न उस रूप में उठाता है जिसमें अस्तित्व प्रेम, युद्ध, मृत्यु, विषाद का पर्याय है जिनसे पलायन किया ही नहीं जा सकता। ईश्वरविहीन समाज में जीने वाले व्यक्ति का अकेलापन और मृत्यु आधुनिक संदर्भों में मृत्यु है जो मनुष्य के होने को समाप्त कर देती है—

क्योंकि व्यक्ति मरता है
और अपनी मृत्यु में वह बिल्कुल अकेला है
विवश
असांत्वनीय।

हाइडेगर ने भी यही कहा है कि मनुष्य ऐसे अकेला नहीं होता केवल मृत्यु के समय ही उसे अपनी हताश और विवश स्थिति का बोध होता है।[1]

वह आत्मबोध का इच्छुक नहीं है अपितु उसकी चिन्ता अपने अस्तित्व का अर्थ खोजने की है। अभी अर्थ पाने का संघर्ष दो महायुद्धों के बीच पिसी हुई मानवता का न्यायसंगत दृष्टिकोण है। उसकी किसी भी खोज का अर्थ किसी परमात्मा की खोज नहीं है—स्वयं अपनी खोज है। वह मनुष्य के पतन का साक्षी है—

एक भटकती चिन्तनशीलता
जिसके लिए आजीवन कारावास तक की सुरक्षा नष्ट हो चुकी।
अब मुक्त है किसी भयानक बाह्यता में
क्योंकि अब वह जिसके बाहर है
वह बाहर भी मृत्यु की ही तरह
अंतिम कुछ लगता है।[2]

---

१ To seek to realise one s possibilities as an individual alone and *as if one were isolated and independent, this is authentic exis* tence The way to active it is to treat one s life as a progress towards death, the only event in which we are genuinely each one of us alone —मेरी वारनक एक्जिस्टेंशियल कथिक्स, पृष्ठ १४

२ आत्मजयी कुंवर नारायण, पृष्ठ ३६

निराशा आज अधिक स्थायी है—उसके ठोस कारण हैं क्योंकि भविष्य उसके लिए प्रवाह है और अतीत उसकी सुरक्षा का कोई दाय नहीं लेता है—घोर यथार्थ से उसकी मुक्ति कभी नहीं होती और न ही नैराश्य से वह उबर पाता है—

जिधर भाग
उधर आगे पहले ही से एक कठिन अनिश्चय,
पीछे आ खड़ी होती है एक नयी दीवार
जो पहले न थी
एक डरावनी छाया
और हिचकते पाँवों को
धमकाकर आगे ढकेलते
घातक इरादा के निर्मम इशारे
किसी ओर फाँद जाने का जी चाहता है।[1]

मार्क्सवाद

परिवर्तन को आधार मानने वाला यह दर्शन यह स्वीकार करता है कि अब तक दार्शनिक केवल सृष्टि की व्याख्या करते रहे हैं किन्तु अब आवश्यकता है कि उस दृष्टि से परिवर्तन किया जाए। दर्शन के रूप में मार्क्सवाद सृष्टि और समाज का विश्लेषणात्मक अध्ययन करता है और क्रियात्मक रूप में सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रयास करता है।

मार्क्सवाद का प्रभाव तारसप्तक के कवियों में जितना मुखरित हुआ है उतना अन्य दोनों सप्तकों में नहीं है। दूसरा सप्तक में शमशेर और भारती प्रगतिवादी विचारधाराओं के समर्थक हैं। शमशेर के निकट मार्क्सवाद का 'वैज्ञानिक' आधार लेकर आसपास की जिन्दगी में रुचि लेकर उसे समझना है—

"इसका सीधा सादा मतलब हुआ अपने चारों तरफ की जिन्दगी में दिलचस्पी लेना, उसको ठीक-ठीक यानी वैज्ञानिक आधार पर (मेरे नजदीक यह वैज्ञानिक आधार मार्क्सवाद है) समझना और अनुभूति और अपने अनुभव को इसी समझ और जानकारी से सुलझाकर, स्पष्ट करके, पुष्ट करके अपनी कला भावना को जगाना। यह आधार युग के हर सच्चे और ईमानदार कलाकार के लिए बेहद जरूरी है।"[2]

किन्तु भारती 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' की सातों कहानियों में कोई मार्क्सवादी निष्कर्ष भले ही निकाल लें कविता के क्षेत्र में वे बेहद रोमानी और काफी सीमा तक उर्दू कविता की 'नजाकत' के समीप हैं।

तारसप्तक में मुक्तिबोध, भारतभूषण अग्रवाल और नेमिचन्द्र जैन अपने वक्तव्यों में स्वयं को कम्युनिस्ट स्पष्ट घोषित करते हैं —

---

१ आत्मजयी कुँवर नारायण, पृष्ठ ४२
२ दूसरा सप्तक सं० अज्ञेय, शमशेरसिंह का वक्तव्य

'क्रमश: मेरा झुकाव मार्क्सवाद की ओर हुआ। अधिक वैज्ञानिक, अधिक मूर्त और अधिक तेजस्वी दृष्टिकोण मुझे प्राप्त हुआ।'[1]

'आजकल राजनीति का अध्ययन अच्छा लगता है। मार्क्सवाद को आज के समाज के लिए रामबाण मानता हूँ। कम्युनिस्ट हूँ।'[2]

'पढ़ने में विशेष दिलचस्पी है। राजनीति में (क्रियात्मक रूप से) मार्क्सवादी और कम्युनिस्ट भी।'[3]

नई कविता में मार्क्सवाद की अभिव्यक्ति या तो रूस के गुणगान के रूप में हुई है, या फिर बुर्जुआ वर्ग के प्रति आक्रोश के रूप में। सर्वहारा का दर्द उनका अपना दर्द है। किन्तु कहीं भी मार्क्सवाद साध्य बनकर नहीं आया है। ऐसा नहीं है कि मार्क्सवादी विचारों का पिष्टपेषण करने के लिए काव्य की रचना की गई हो, अपितु कविता अपनी अनुभूतियों या अपनी प्रतिक्रियाओं को स्वर देती है यदि उसमें मार्क्सवादी विचारधारा मिलती है तो किसी निश्चित विचारधारा के फलस्वरूप मिलती है। सप्तक के कवियों में केवल रामविलास शर्मा ऐसे हैं जिन्हें शुद्ध मार्क्सवादी कहा जा सकता है। इस कारण यह निर्धारित मत लेकर कि नई कविता मार्क्सवाद से प्रभावित है उसमें मार्क्स द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों की छानबीन करना कविता के प्रति अन्याय है। अपने परिवेश के प्रति कवि जागरूक होता ही है अतः यदि वर्ग-संघर्ष की व्यथा को कहीं वह अपने काव्य में अभिव्यक्ति दे तो उसे मार्क्सवाद घोषित करना केवल पूर्वाग्रह होगा।

मार्क्सवाद इन कवियों की दृष्टि में एकमात्र सच्चा आधार है और संभवतः यही सच्चा आधार सन '४० में स्वतन्त्रता की कल्पना को साकार करने के लिए आवश्यक है—

> वह मजदूर किसानों के स्वर कठिन हो
> कवि है उसमें अपना हृदय मिलाओ
> काट बुर्जुआ भावों की गुमठी को—
> गाओ।[4]

उनकी दृष्टि में युग में क्रांति की ज्वाला केवल मार्क्सवाद जगा सकता है। भारत को नया रूप देने का उपाय केवल मार्क्स के पास है—

> भारत का आत्मराग
> भूत और भविष्य का वितान लिए
> काल मान बिन
> मार्क्स मान में तुला हुआ।[5]

---

१ तार सप्तक सं० अज्ञेय, मुक्तिबोध का वक्तव्य
२ वही, भारतभूषण अग्रवाल का वक्तव्य
३ वही, नेमिचन्द्र जैन का वक्तव्य
४ दूसरा सप्तक सं० अज्ञेय रामगोर पृ० १०८
५ दूसरा सप्तक अज्ञेय, पृष्ठ १११

गुजराती नयी कविता स्पष्ट रूप मे ही किसी निश्चित दर्शन को स्वीकार नहीं करती है। मार्क्सवाद का प्रभाव उस पर मुख्यत '३६ तक दृष्टिगत होता है जब उमाशकर जोशी और सुन्दरम् सयुक्त रूप से ईश्वर के निष्कासन और गरीबो को सात्वना देने का दायित्व सम्हाले हुए थे। गाधी युग मे ही ये स्वर मुख्य रूप से मिलते हैं किन्तु गाधीजी की मृत्यु के साथ ही समस्त गाधीवादी विचारो और स्वप्नो का अन्त हो गया। सन '५० के बाद की कविता मे मार्क्सवाद का कहीं स्थान नही है। इस समय की कविता एक ऐसे व्यक्ति का चित्र प्रस्तुत करती है जो एक गुफा म कद है। गुफा के द्वार की ओर उसकी पीठ है और दीवार की ओर उसका चेहरा। ससार उसके लिए केवल वही है जिसकी कुत्सित परछाइयाँ गुफा की ऊबड खाबड दीवारो पर दिखाई देती हैं।

मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव हिन्दी की नयी कविता को पर्याप्त गति देता रहा है। प्रगतिवादी आदोलन के अवशेषो का प्रभाव इस काव्य मे काफी है और उसे किसी एक जगह केन्द्रित नहीं किया जा सकता। प्रगतिवादी काव्य की तरह वह केवल सिद्धान्तो के जगल म नही फँसा है उसका प्रसार मार्क्सवाद के व्यावहारिक पक्ष को समझने तक मे है जबकि गुजराती का नयी कविता म मार्क्सवाद का प्रभाव केवल एक सीमित समय तक मिलता है उसके बाद वह केवल इतिहास की वस्तु बनकर रह गया है।

मनोविश्लेषणवाद

मन के विश्लेषण के लिए उसकी समस्त गतिविधियो का आलेख आवश्यक रहता है, इन गतिविधियो का जो व्यक्ति विशेष की प्रवृतियो की सूचक हैं। कविता क्षणिक मनोभावो की अभिव्यक्ति है, इसम एक विचार या एक अनुभूति को छोड किसी व्याख्यान के लिए अवकाश नही रहता है और किसी एक अनुभूति के आधार पर कोई निर्णय भी नही दिया जा सकता। कविता का मनोविश्लेषणवाद के आधार पर विवेचन करना सभव नही है—उसके पीछे वह व्यापक पृष्ठभूमि नहीं है जो मनोविश्लेषणात्मक विवेचन के लिए अपेक्षित है।

साहित्यिक कृतियो के लिए किसी दार्शनिक चितन का आधार ग्रहण किया जाना कोई नयी बात नहा है। ससार भर की हर भाषा के साहित्य मे ऐसी कृतियो के उदाहरण मिल जाएँगे जिनके मूल मे कोई दर्शन निहित हो। हिन्दी साहित्य का तो अधिकाश ही ऐसी रचनाओ का है। साहित्य, प्रचार का माध्यम नहीं है और न किन्ही दार्शनिक या राजनीतिक सिद्धान्तो का घोषणापत्र है लेकिन कोई कृति यदि साहित्य की शर्तों को पूरा करते हुए दार्शनिक आधार ग्रहण करती है तो उसका कलात्मक मूल्य घटता नही है।

साहित्य के सन्दर्भ म मनोविश्लेषणवाद का अध्ययन करने के पूर्व स्वय इस वाद की व्याख्या आवश्यक है जो साहित्य म अनुभूति का विषयीगत और आत्मनिष्ठ रूप है।

मनोविश्लेषणवाद के तीन प्रमुख व्याख्याता हैं—फ्रायड, एडलर और जुग।

फ्रायड

मानव व्यक्तित्व म चेतन के अतिरिक्त एक और स्तर होता है जिसे अचेतन कह

सकते हैं। इन दोनो के बीच मे एक अभेद्य सी मालूम देने वाली दीवार है जिसे तोड कर अचेतन मन मे प्रवेश किया जा सकता है। उन्ही तीन स्तरो को फ्रायड ने अचेतन, अर्द्धचेतन और चेतन कहा। अचेतन की कल्पना फ्रायडियन मनोविश्लेषण का आधारभूत सिद्धान्त है। मस्तिष्क का तीन चौथाई यही अचेतन है और मनुष्य के विचार, रहन-सहन के ढग की स्वाभाविकता या अस्वाभाविकता का मूल प्रेरक यही अचेतन है। हमारे व्यावहारिक जीवन के सारे कार्यकलाप अचेतन से प्रभावित रहते है।

अर्द्धचेतन, वर्तमान मे ज्ञान और अनुभूति का विषय नही हो सकता पर थोडे प्रयत्नो से अनुमान्य हो सकता है। मस्तिष्क मे सबसे बडा और महत्त्वपूर्ण अंश अचेतन मे जन्म लेता है उसमे अब तक की अनुभूतियाँ रहती हैं जिन्हे विशिष्ट प्रयत्नो से पाया जा सकता है।

मानव प्रकृति के विषय मे फ्रायड के विचार के अनुसार "समाज अकेले व्यक्तियो का समूह है जो 'केवल सर्वश्रेष्ठ को जीवित रहना चाहिए' के आधार पर एक दूसरे के प्रति हिंस्र और क्रूर रहते हैं और केवल अपनी सुरक्षा के लिए ही सगठित होते हैं। उनकी इन हाथी दाँत की मीनारो के पीछे वह दुर्गन्धित गुफा रहती है जहाँ अपनी शारीरिक आवश्यकताओं या वयक्तिक सम्बन्धो का व्यापार अपने स्वार्थ के लिए निर्दयता से कर सकते हैं और इन लाभो की आनन्द प्राप्ति के लिए अपने मन की निविडतम कदरा म जा सकते हैं जहाँ किसी प्रकार की बाधा न हो।[1]

फ्रायड के विचार म व्यक्ति एक सामाजिक अणु है जिसे समाज की आवश्यकता केवल अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति के समय होती है। जीवत्व म उनके विश्वास ने इस मत की स्थापना की, कि व्यक्ति हर कष्ट का कारण स्वय है, ये कष्ट विपरीत सामाजिक या आर्थिक स्थितियो की ही उपज नही हैं। मूल पाप के ये स्पष्टीकरण क्रान्ति के बाद के समाज ने अस्वीकृत कर दिये। उसने विचार म मनुष्य स्वभावत अच्छा है, स्वतन्त्र है, समान है और अनन्त सभावनाओ से युक्त है अत जितने भी कष्ट उसे भोगने पडते हैं उनका कारण वैयक्तिक न होकर समाज या परिवेश ही है।

मनुष्य के सारे व्यक्तित्व को परिचालित करने वाली मूल शक्ति को फ्रायड ने लिबिडो कहा है। यह बडी शक्तिशालिनी होती है और बाह्य जीवन म अपनी अभिव्यक्ति के लिए सदा उत्सुक रहती है। यह काममूला और स्वायमूला है और समाज की धारणाओ स मेल नही खाती अत हमारा चेतन इस पर नियत्रण रखता है। यह स्थूल कामभावना से

---

1 Freud s view on human nature depicts society as a mass of isolated individuals, where most natural emotions is hostility, pushing and joshling each other in the name of the fittest but willing under certain circumstances to bend together for self protection Their Ivory towers conceal the inner cave by the entrance of which they ruthlessly trade physical needs or personal gain returning to the innermost successes to enjoy them without interference J A C BROWN Freud and the post Freudians Page 12

सम्बन्धित नही ह, इसकी सीमा म मनुष्य के सारे उत्साहपूर्ण कायकलाप और प्रेम, घृणा सब आ जाते हैं।

पूणत विकसित अनुमान दो प्रकार की मनोवत्तियो का उल्लेख करते हैं—जीवनेच्छा (ईरोज) और मत्युभावना (थाटोस) जिसे बाद के लेखको ने मार्टिडो या डिस्टडो कहा। जीवनेच्छा आत्मरक्षण की भावना हैं और मत्युभावना लिबिडो से बहुत भिन्न है और अपने विरुद्ध पाश और आक्रमण की प्रतीक हैं, सदा मत्यु के प्रति अग्रसर करती रहती हैं और अत मे सम्पूर्ण स्वाधीनता और तनावहीनता की स्थिति मे पहुँच जाती ह। आत्मप्रेरित हिंसा क्योकि व्यक्ति के लिए खतरनाक ह अत उसकी भयावहता को कम करने के लिए सतत प्रयत्न अनिवाय है जो दो प्रकार से किया जा सकता हैं—उसे लिबिडो से सम्बद्ध करके जिसके परिणामस्वरूप उसका रूप आत्मपीडन या परपीडन का सुख हो सकता है, अथवा बाहर दूसरों के प्रति उसे उन्मुख करके।

वास्तविक व बाह्य ससार और सभ्यता की मागो के अनुसार व्यक्तित्व को परिवर्तित करने वाला अश मनोभाव कहलाता ह। यह हमारी सहज और स्वाभाविक मत प्रेरणाओ पर नियन्त्रण रखता ह और उन्हें परिमार्जित और परिशोधित करके ही क्रियाशील होने की अनुमति देता ह। मस्तिष्क के उस प्रदेश को जहाँ मनुष्य की आरम्भिक प्रेरणाएँ और प्रबल इच्छाएँ निवास करती हैं, प्राकृतिक स्वत्व कहा जाता है, जिसमे अव्यवस्था होती है। ईगो या अहम व्यक्तित्व का चेतन अश है यह बौद्धिक अश ह और इसकी सारी क्रियाएँ ज्ञात रूप मे होती हैं और सारे नियन्त्रण जानबूझ कर होते हैं। पर एक अवसर ऐसा आता है कि अहम् द्वारा नियन्त्रण की क्रिया होती ह जिसका उसे ज्ञान नही होता। यह एक तरह से अचैतन्य चेतन (Unconscious conscious) है जिसे फ्रायड ने नैतिक अह या सुपर ईगो (Super Ego) कहा है।

एडलर

एडलर का मूल विचार था कि मानव होने का अथ हीनता की भावना से ग्रस्त होना है जो अन्त मे विजयी होता है।

जो बालक उपेक्षित, बिगडा हुआ या घृणा का पात्र होता ह वही हीनता की शक्तिशाली ग्रन्थियो से ग्रस्त रहता ह और प्रसन्नता के वातावरण मे भी वह बालक अपने को क्षुद्र, असहाय और वयस्को की दया का पात्र समझता है। हीनता की भावना की पूर्ति के लिए बालक जीवन के प्रारम्भिक वर्षों म ही परिवार की स्थितियो से जूझने के लिए कुछ विशेष बचाव खोज लता ह। अपने प्रतिदिन के अनुभवो के आधार पर वह ऐसा दृष्टिकोण बना लेता है जिसे एडलर न जीवन शली (Life style) कहा है। इसी जीवन शैली के आधार पर उसका वयक्तिक विकास होता है।

एडलर के विचार वयक्तिक मनोविज्ञान (Individual psychology) कहलाते हैं, और फ्रायड द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तो पर उनकी आस्था नही है। लिबिडो को एडलर काम वासना न मानकर विजय-वासना मानते हैं। उनके अनुसार हर व्यक्ति म दूसरे पर विजय पाने की, दूसरे से श्रेष्ठ रहने की भावना विद्यमान रहती ह। यही विजय कामना मानसिक विकृ

तियों का कारण है जिसके प्रभावस्वरूप मनुष्य में जिस जीवन शैली का निर्माण हुआ है उसमें सामाजिक और वयक्तिक आदर्श प्रेमपूर्वक नहीं रह सकते। व्यक्ति की उच्चता का ध्येय सामाजिक जीवन के विरुद्ध पड़ता है। हीनता ग्रंथि सब में होती है और इसी के कारण मानव की जीवन शक्ति का निर्माण होता है।

जुग

जुग की Analytic of Psychology फ्रायड के मनोविज्ञान की उपशाखा कही जा सकती है। जुग का दृष्टिकोण एक दार्शनिक और रहस्यवादी जैसा है। फ्रायड द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त अचेतन दमन, प्रतीकात्मक स्वप्न आदि सब पर इनका विश्वास है पर कुछ परिवर्तित रूप में।

अचेतन के जुग ने वयक्तिक चेतन (personal conscious) और समस्त चेतन (racial conscious) दो स्तर किए हैं। वयक्तिक चेतन भोगेच्छु, स्वार्थी, बीभत्स और क्रूर मूल वृत्तियों का तथा दमित भावनाओं का रहस्यागार है पर यदि मन के अंत पटल को भेद कर देखा जाए तो उसमें एक समष्टि मन का स्तर मिलता है जो हमारी सारी सौंदर्यप्रियता, नीतिमत्ता और खूबियों का आदिस्रोत है। हमारे चेतन मन को जिन खूबियों और भलाइयों का ज्ञान रहता है वे अपने तात्विक रूप में समष्टि मन में वर्तमान रहती हैं। अचेतन जिस तरह हमारी अनैतिक भावनाओं का आगार है उसी तरह नैतिक का भी है। उसी व्यक्ति का व्यक्तित्व पूर्ण विकसित होता है जिसके वयक्तिक अचेतन और समष्टि अचेतन में पूर्ण सामंजस्य हो। इस सामंजस्य की स्थापना के बाद मनुष्य की प्रतिभा को अधिक से अधिक क्रियान्वित होने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। फ्रायड के द्वारा निर्धारित दमित भावनाओं का आगार, अचेतन मन को मानते हुए भी जुग कहते हैं कि इसके बाहर, समष्टि मन भी होता है जिसका दमित भावनाओं से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसमें निवास करने वाली भावनाएँ अस्पष्ट, निराकार अनियमित और अनिर्वचनीय होती हैं पर यह मानव-जाति में विरासत से प्राप्त है और युग-युग से मनुष्य में निवास करती आई है। सत्य की खोज अदृश्यशक्ति में विश्वास देवत्व और ईश्वरत्व में आस्था दूसरे शब्दों में आध्यात्मिक उत्प्रेरणाओं का निवास चेतनातीत समष्टि अचेतन में रहता है और हमारी चेतना को भी प्रभावित करता है।

जुग का सबसे प्रसिद्ध सिद्धान्त वह है जिसमें उन्होंने व्यक्ति को अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी दो प्रकारों में बाँटा है। अन्तर्मुखी व्यक्ति विचारों में लीन रहता है और उसकी कल्पना जाग्रत रहती है सामाजिकता की उसमें कमी होती है भावावेग में वह कम आता है, और नीरस होता है। बहिर्मुखी व्यक्ति सदा प्रसन्नचित्त संसार के कार्यों में अभिरुचि रखने वाला, सामाजिक प्रवृत्ति का होता है, उसमें कल्पना का अभाव होता है और कभी कभी निरुत्साहित भी हो जाता है। उलझे और खंडित व्यक्तित्व, अज्ञात संवेदना और खंडित बिम्बों की प्रचुरता मनोविश्लेषण का ही प्रभाव है।

आज का काव्य सामाजिक और वैयक्तिक दोनों ही दृष्टियों में अभाव का काव्य है। यही अभाव व्यक्ति में कुण्ठाएँ और हीनभावनाएं उत्पन्न करने का उत्तरदायी है। कवि अपने इन्हीं अभावों और इच्छाओं की अभिव्यक्ति काव्य के माध्यम से करता है—

हजारों सालों से सूरज मरा हुआ पड़ा है
हजारों सालों से आकाश की छाजन चू रही है
हजारों सालों से मरे बच्चे पैदा हो रहे हैं
हजारों सालों से ताजी हवा के इश्तहार साँसों में छपे हैं
हजारों सालों से धूप का इतिहास,
धरती की छाती पर लिखा है
मुझे इस धरती को पढ़ने से डर लगता है
मुझे क्षितिज की भूरी दीवारों से डर लगता है
मुझे आसमान की निगाह कुतरने से डर लगता है
यह दुनिया
एक फाहशा औरत की अँधियारी डाली है—
मुझे इस फाहशा के प्यार में यों ही
गुजरते जाने से डर लगता है
बेहद।[1]

एक अपूर्ण सुख स्वप्न की स्मृति तृप्ति देती है किन्तु उसके बीत जाने का दर्द जो रिक्तता दे जाता है वह मन को कुण्ठित कर देती है—

तुम यहाँ
बैठी हुई थी अभी उस दिन
सेव सी बन लाल,
चिकने चीड़-सी वह
बाँह अपनी टेक पृथ्वी पर
यहाँ इस पेड़ जड़ पर बैठ
मेरी राह में
उस धूप में।

चाहता मन
तुम यहाँ बैठी रहो,
उड़ता रहे चिड़िया सरीखा
वह तुम्हारा धवल आँचल।
किन्तु
अब तो ग्रीष्म
तुम भी दूर

---

1 दूधनाथसिंह अपनी शताब्दी के नाम, पृष्ठ ५

ओ यह लू ।[1]

और

गूंज रही पिछले रंगीन मिलन की यादें
नींद भरे आलिंगन में चूड़ी की खिसलन
मीठे अधरों की वे मीठी मीठी बातें ।[2]

और

आह मेरा श्वास है उत्तप्त
धमनियों में उमड़ आई लहू की प्यास—
प्यार है अभिशप्त—
तुम कहाँ हो नारि ?[3]

इन्हीं तथ्यों के प्रति गुजराती कवि की प्रतिक्रियाएं भी मिलती जुलती हैं। एक सुख पास है, लेकिन व्यतीत हो जाने पर उसे ही खोजता फिरता है—

डूबता सूरज
आज मेरी देहरी पर आ खड़ा हुआ
उसकी रक्तिम काया पर
घर से खोज मे गुलाल छिटकता हूं।,
और फिर अपनी आंखों से
छलकते
जल की बूंदें ले
अभिषेक करता हूं।
मेरी हथेलियां
स्पर्श से पुलकित हैं
उसे मैं भींच लेता हूं
बीतता जाता है क्षण के बाद क्षण
भिंचा सूर्य कहीं खो जाता है
फैले हुए गुलाल में चिह्न नहीं मिलते
नहीं दिखता है जल में,
प्रतिबिम्ब
कहां खोजूं
बांहों में बंधे सूरज को
कब तक देखूं

---

१ बोलने दो चीड़ को नरेश मेहता, पृष्ठ ३
२ गिरिजाकुमार माथुर तार सप्तक, सं० अज्ञेय, पृष्ठ ४८
३ इत्यलम अज्ञेय पृष्ठ १५०

आँगन में पड़े गतिहीन रथ को ।[1]

इस निरर्थक खोज के बाद जो रिक्तता बच रहती है वह स्वाभाविक है । ऐसे जीना एकदम जसे न जीने के समान है—

स्वत्व नही, व्यक्तित्व नही, नही नाम, नही रूप,
हाथ कुछ आता नही, क्या हो हवा या धूप,
गीत नही गुजन नही, बस चीख है या है चुप
जीवित हूँ ऐसे मत्यु का स्पर्श ?[2]

नई कविता मे यौन प्रतीकों के आधिक्य को मनोविश्लेषणवाद का प्रभाव बताया जाता है किन्तु सत्य तो यह है कि इन प्रतीको का सम्बन्ध व्यक्ति की कामवासना से उतना नही है जितना कि काव्य पर लगाए गए शुद्धतावादी निषेधों से है । काव्य क्योंकि एक काल्पनिक स्वर्ग की अनुभूति देने वाला माना जाता रहा है अत किसी भी प्रकार की अतृप्ति अभाव अथवा दैहिक पीड़ा का स्थान उसमे नही हो सकता था । छायावादी कविता मे

---

१ कविता, अप्रेल '६८ प्राणजीवन मेहता—
ढळी ऊगतो सूय
आज मारा उपर मां आवी ऊभो
अेनी रक्तवर्णी काया पर
हु पर मा थी गुलाल शोधी
छटकारु
अने पछी मारा आँखोमाँन
झलकतां
जल ली ने हु ढ लइ
अभिषेक करु
मारी हथेलिए हजु
स्पर्श नो आनन्द पामे ते प्रथम नो
हु अेने अथ भरी लऊँ
क्य पक्षो क्या पक्षो क्या बीतो गए
भीरयो सूय अव अलोप
वैरायल गुलाल मा न पगला नडे
न जल महीं बिम्ब
क्यांक लगो नवो लगो
शोधी रहु अथ भीरयो सूय
ने ताणी रहु
आँगण पऱ्या गतिहीन रथ।

२ ३३ काव्यो निरञ्जन भगत—
स्वरूप नहीं, व्यक्तित्व नहीं, नहीं नाम अने नहीं रूप
हाथ कोथ ने आवे नहीं शु होय हवा यां धूप
गीत नहीं गुञ्जन नहीं, किन्तु चीस अग तो धूप
जीवना जाणे होय मृत्यु ना ओठा।

प्रबोध पारीख की उक्ति कहीं अधिक निर्भीक है—

अब मुझे अपने में सुनाई देता है
हजारों पशुओं का आर्त्तनाद—
नहीं टूटी बाड़ों की यह बाड़ अगर
तो होगी मृत्यु पशुओं की—ईश्वर होकर
मुझे दो किसी वेश्या के स्तन।[1]

गुजराती नयी कविता की यह साठोत्तरी पीढ़ी है जो इस प्रकार की अभिव्यक्तियाँ दे रही है। यही नहीं यही कवि पारम्परिक गीता के आधार पर भी गीत रचना कर रहे हैं जिनमें केवल कोरी उक्तियाँ ही मिलती हैं। हिन्दी की नई कविता की तरह इस कविता ने ईश्वर का बहिष्कार नहीं किया है और न ही रूढ़ियों का पूर्ण विरोध किया है। कुछ अंशों में यह नई कविता की समकक्ष है। वास्तव में स्वातन्त्र्योत्तर कविता अध्यात्म की सीमा से वास्तविक जीवन तक, प्रजा जीवन के मर्मों को आत्मसात् करती है और उन्हें ऊर्ध्वगमन की प्रेरणा देती है।

सुर्रियलिज्म

सुर्रियलिज्म का अर्थ अतियथार्थवाद या अतिवास्तववाद है। हरबर्ट रीड ने सुपर रियलिज्म शब्द का प्रयोग इसके लिए किया है। रियलिज्म का अर्थ यथार्थवाद है और प्रत्यक्ष और इन्द्रियगोचर विश्व का यथातथ्य निरूपण इस यथार्थवादी प्रवृत्ति का प्रधान लक्षण है। अतियथार्थवाद में अर्थ यथार्थ की अति (extreme) इतनी नहीं है जितनी कि इन्द्रियातीत विचारातीत और बुद्धि के परे के विश्व को स्वीकार करने की प्रवृत्ति है। अतः 'अति' का अर्थ यदि beyond लिया जाए तो यह अतियथार्थवाद 'यथार्थवाद की अतिशयता नहीं होगा।

अतियथार्थवाद का आरम्भ भी अनेक नवीन विचारों और वादों को आरम्भ करने वाले फ्रांस में हुआ है। इसका विकास भले ही बीसवीं शती में हुआ किन्तु इसके बीज पहले ही पड़ चुके थे। बादलेयर की कविता 'ला वायेज' (La voyage) की अंतिम दो पंक्तियों में सुर्रियलिस्ट अतियथार्थवाद का बीज देखते हैं।[2]

---

१ वे प्रबोध परीख पृष्ठ १४—
हवे मने समडाय छे मारामां
हजारो पशुओ नो आर्त नाद
ने जो आ कांटाळी वाड नहि तूटे
तो थशे पशुओ नु मत्यु-ईश्वर थई ने

मने आपो कोई वेश्यानां स्तनो।

२ We want to plunge to the bottom of gulf
Hell or heaven what matter
To the bottom of the unknown to find
Something new—सदर्भ २ भोलाभाई पटेल

अतलांत में डुबकी लगाने, अज्ञात के तल में पहुँच कर किसी नवीन की खोज करने की यह भावना है। अज्ञात के प्रति आकर्षण रोमांटिक भावधारा में मिलता है लेकिन सुरियलिस्ट का अज्ञात के प्रति आकर्षण का कारण दिशा और अभिव्यक्ति का माध्यम एकदम भिन्न है।

योरुप में रोमांटिक विचारधारा की प्रतिक्रिया के रूप में वास्तववाद और निसर्गवाद आदि का आरंभ हुआ। १९१६ में प्रारंभ 'दादावाद' से सुरियलिज्म का जन्म हुआ। जीवन की ओर से मिली निराशा, समाज में चलती नैतिकता और दंभ और बंधनों से त्रस्त होकर dehumanizations की प्रवृत्ति आरंभ हुई। उन्होंने देश विरोधी, मानव विरोधी, परिवार विरोधी हर प्रकार की भावुकता का विरोध करना आरंभ किया। परम्पराओं का उपहास हुआ और हर प्रकार की भावुकता का विरोध आरंभ हो गया और इस प्रवृत्ति को प्रथम विश्वयुद्ध से मिली कड़वाहट से और पुष्टि मिली।

सुरियलिज्म किसी भी व्यवस्था का घोर विरोध करता है। व्यवस्थित विचारों के प्रति उसके मन में घृणा है। यह व्यवस्थित विश्व उसे किसी किले की अभेद्य दीवार के समान लगता है और उसी के कारण सुरियलिस्ट की घोषणा में प्रधान स्वर निराशा का ही मिलता है। परिणामतः इस विश्व में उसके तमाम आनन्द, रमणीय प्रकृति और शांत होने के बावजूद योजनाबद्ध सुव्यवस्थित विश्व में रहना इन कवियों के लिए कष्टकर था, वे जानते थे कि इसमें से बाहर निकलना भी भारी मुश्किल था।

सुरियलिस्ट स्वतंत्र विचारों (free thoughts) में विश्वास करते हैं। उन्होंने घटनाओं के पूर्वापर को अस्वीकार कर व्यक्ति में दृष्टिगत होते अंधे बहरे और गूंगेपन का खुले रूप में उपहास किया। ईश्वर और ईसाइयत की भावना के उत्तर में यह कहा गया कि सच्चा साधक स्वर्ग या ईश्वर का संरक्षण नहीं मांगेगा। बुद्धियुक्त विचार आध्यात्मिक ऊहापोह को स्वयं व्यक्त करने में असमर्थ है क्योंकि बुद्धि ने मन को भ्रम में डाल दिया है अतः मन बुद्धि के इस जाल से मुक्त होने का मार्ग खोजता रहा, और तर्क ने मन के जिस भाग को कुंठित कर दिया है उसे ढूंढ निकालना सुरियलिस्ट के लिए पहला काम है।

व्यवस्था, तर्कनिष्ठ विचारधारा, धर्म और समाज आदि का विरोध इनका खण्डनात्मक पहलू स्पष्ट करता है। वे इसी प्रकृति से सृजन करते हैं।

फ्रायड की मनोवैज्ञानिक खोजों ने इस प्रवृत्ति को बल दिया। हिमशिला खण्ड की तरह जिसका बड़ा भाग छिपा रहता है, वैसे अर्धजाग्रत मन की स्थितियों पर आलोक पड़ा। स्वप्न और अर्धजाग्रत मन की प्रवृत्तियों के असम्बद्ध निरूपण सुरियलिस्ट कविता की अभिव्यक्ति के उपादान बने। सपनों को हम यदि नहीं रख सकते, अगर हम अपने सपनों को स्वर दे सकते तो सतत काव्य का सृजन कर सकते हैं—ऐसा इन लोगों का विश्वास है।

सुरियलिस्ट को, वह कवि हो या चित्रकार, इस हिमशिला खण्ड में निमग्न मन के आयामों और विशेषताओं को समझने और पाने का प्रयास करना चाहिए।

मार्क्स अर्नेस्ट के अनुसार सुरियलिस्ट का लक्ष्य अर्ध जाग्रत मन का वास्तविक चित्र, आंकना अथवा अर्धजाग्रत मन के विविध उपकरणों को लेकर एक अलग सृष्टि बनाना नहीं अपितु जाग्रत अर्ध जाग्रत, अंतर्जगत् और बाह्य जगत् में सीमा रेखा खींचना है जिससे कि

या भ्रूण।[1]

गुजराती की नयी कविता का एक बड़ा ग्रंश सुरियलिस्टिक है—ऐसा सितांशु यशचन्द्र और उनके सहयोगियों का विचार है। नयी गुजराती कविता वास्तव में दो सीमाओं की कविता है, उसमें या तो परम्परागत विधि पर कविता होती है या फिर अतियथार्थवादी स्वरों की। नयी कविता का अर्थ यहाँ केवल यह नहीं है कि मात्र अनुभूति और अभिव्यक्ति सभी की अनिवार्यता हो। नयी का अर्थ आधुनिक अधिक है, आधुनिक या समसामयिक होने के लिए विषयों में किसी प्रकार के सीमांकन की आवश्यकता नहीं पड़ती। पर गुजराती नयी कविता में जिस अतियथार्थवादी काव्य कहा जाता है वह 'अकविता' के समान ही निषेधों की कविता है पर कविता' को उसमें कहीं निषिद्ध नहीं ठहराया गया है।

मनोविज्ञान के उस अंग को, जिसमें अवचेतन में छिपे हुए भावों पर बल दिया गया है अतियथार्थवाद अत्यधिक महत्व देता है। वे सब तथ्य जो केवल स्वप्न में याद आते हैं अतियथार्थवादी काव्य का महत्वपूर्ण अंग हैं—

हड्डियों पर मांस
मांस पर त्वचा
कौन छिपा है यहाँ परदे के पीछे ?
किसे करता है
नसों और अंतड़ियों का यह इन्द्रजाल ?
रक्त में मिला है
कितने सागरों का खारापन
कितनी नदियों की गति
कितनी कामनाओं की गंध
कितनी क्षुधाओं की उष्णता ?
अस्थि के शून्य में भरा है
कितने पूर्वजों का दिशाशून्य अंधकार ?
गरदन पर पड़ा है
कितने मस्तकों का भार
और
ऐसे ही ऐसी ही ऐसे
से कटे हुए पर
कंधों पर लाद
कब तक चलना होगा ?
कब तक ?
कब तक ?[2]

---

१ नरेश सक्सेना वही, पृष्ठ ५६
२ आदिल मसूरी रे ६, पृ० ६

अथवा अपने को ही खोजता हुआ कवि जैसे खुद को पाकर भी नही पाता है—

एक दीवाल के दोनो ओर खडा मैं
स्वय को कभी नही पा सकता
आकाश के दो टुकडे हो गए हैं
पर उसके शून्य की सम्पूर्णता
मिलती ही नही।[1]

अतियथार्थवाद, वास्तव मे कोई दर्शन नही है अपितु अस्तित्ववाद की ही तरह एक दृष्टिकोण है। हिन्दी और गुजराती म अस्तित्ववाद की चर्चा अतियथार्थवाद से पहले हुई थी, किन्तु यदि ऐतिहासिक क्रम देखा जाए तो अतियथार्थवाद के बाद ही अस्तित्ववाद का उदभव हुआ है।

ये तमाम दर्शन या विचारधाराएँ किसी एक भाषा के साहित्य की ही विशेषता नही हैं। देश भर का नया साहित्य, वह हिन्दी या गुजराती का ही नही बगला या तमिल का भी हो, तो प्राय एक सी ही सक्रमण की अवस्था से गुजर रहा है। व तमाम मनस्थितियाँ जो युद्धोत्तर यारप के साहित्यकार की मनस्थितिया थी, युद्ध के तईस बरस बाद भारत के युवा मन की अभिव्यक्तियाँ हो रही है। ये विचार आरोपित लगने लगते हैं, जब अपने परिवेश का विचार किए बिना साहित्यकार (कवि या कोई भी) पश्चिम के सघष से बने हुए व्यक्तित्व का भारतीय जामा पहना देते हैं। ये तमाम दशन नयी कविता मे किसी दार्शनिक प्रभाव के कारण नही आए हैं, और न ही किन्ही विशेष दार्शनिक सिद्धान्तो का प्रतिपादन नयी कविता का लक्ष्य है।

इन कवियो ने विद्रोह को स्वीकार अवश्य किया है किन्तु वह केवल सिद्धान्त है। विद्रोह समझौता कभी नही करता। "पूर्ण अस्वीकृति की स्थिति मे या शत्रु का वध होता है या आत्मवध—अन्य कोई उपाय नही है। तभी आत्महत्या का प्रश्न आता है जिसकी गूज कवियो और कहानीकारो मे सुनाई दे रही है। किन्तु विद्रोही साहित्य' मे विद्रोह इकहरा है, सर्वस्तरीय नही। यशलिप्सा से वह बुरी तरह पीडित है।"[2]

जहाँ तक इस विद्रोह को सक्रिय रूप देना है वहा कवि साहसहीन है। विद्रोह यदि कोरे निषेध पर आधृत है तो निषेध की परिणति हत्या है। इस कसौटी को हम भले ही सम्पूर्ण कविता पर लागू न कर सकें पर यह सच है कि कुछ कविताओ को छोड कर अधिकाश कविताओ म विद्रोह की आँच है। व्यवहार के क्षेत्र म भले ही पूरी न उतरें, अनुभव के स्तर पर उनका होना नकारा नहीं जा सकता।

---

१ सितांशु यशचद्र रे ५, पृष्ठ ५
एक दीवाल नी बे बाजु अमेलो हु
मने कदीये सडी नयी शकतो
आकाशना बे टुकडा थया छे
ने कमेकरी शून्यनी सपूर्णता
पमाती ज नथी

२ साम्यिक सकट और विद्रोह साहस विकल्प १–पृष्ठ ५५

हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि नई कविता को किसी एक दर्शन के अन्तर्गत नहीं रख सकते। दर्शन उसमें एक विचारधारा के प्रभाव के रूप में आता है। गुजराती की नई कविता की दार्शनिक पीठिका की एक विशेषता है जो उसे हिन्दी नयी कविता से अलग कर देती है। हिन्दी की नयी कविता उपनिषद् दर्शन या अध्यात्म के किसी भी तत्त्व को स्वीकार नहीं करती। उसकी विचारधारा अस्तित्ववाद, मनोविश्लेषणवाद और मार्क्सवाद तक ही सीमित है जबकि गुजराती नई कविता की विशेषता यह है कि एक ही कवि (उदाहरणार्थ सुरेश जोशी और आदिल मंसूरी) एक ओर तो अस्तित्ववादियों से भी आगे विकास कर उन द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों द्वारा आकर्षित करते हैं—वह अवस्था में भी ईश्वर के प्रेम को स्वीकार करते हैं या 'शहर में बहती आकांक्षाओं और सूनेपन के स्तूप को हँसते हुए निहारते सूरज से ऊबा हुआ कवि अस्तित्व के समन्दर में चींटी के या सामान्य पवन के स्वर वासना की टहनी की तरह सूखा हुआ समय के मनन फिर आता है' (आदिल मंसूरी गन्ध २) और दूसरी ओर इन्हीं कवियों की अभिव्यक्तियाँ हैं—

समय भी गुजरता है रुक कर जो यहीं आदिल
जगत मंच पर जब कवि का मौन बोलता है।[1]

यह स्पष्ट हो जाता है कि एक ही सन्दर्भ से उपजी दो परिवेशों की कविता में विचार भूमि भले ही समान हो उनकी अभिव्यक्तियों में कहीं-कहीं अलग सम्भावनाएँ तथा प्रकार आ जाते हैं जो ऊपर से एक जैसे दिखने पर भी मूलतः पर्याप्त भिन्न होते हैं।

---

१ आदिल मंसूरी—
समय पण थाम्यो छे ने घडी रोकाई छे 'आदिल'
जगत ना मंच पर ज्यारे कवि नुं मौन बोले छे।

नई कविता मे सवेदना-बोध और मानव-मूल्य

नई कविता के किसी भी पहलू पर विचार करन से पहले कुछ प्रश्ना का समाधान करना प्रत्यन्त भावश्यक है। पहला तो यही कि पच्चीस वष पुराना हो जाने पर भी नई कविता के भ्रादोलन का नयापन, भ्रौर उसके विषया के प्रति ऊहापोह भ्राज भी बना हुभ्रा है, नई कविता भ्राज भी विवाद का विषय है।

कविता मात्र में वादो की रचना कवि नही करता है भ्रौर न भ्रपन भ्रपने कटघरे में खड़े होकर सामने वाले की निन्दा करता है। वाद मे बाँटने भ्रौर निन्दा करने के प्रतिप्रश्न भ्रालोचको के दिए हुए हैं, जो सहानुभूति के भ्रभाव मे कविता पर विभिन्न 'लेबिल' लगा दिया करते हैं।

नई कविता भ्राज चर्चा का विषय नही है क्योकि उसके वाद (जसे छायावाद की मृत्यु 'कामायनी के बाद घोषित कर दी गई थी, नयी कविता भ्रभी तक वैसी किसी घोषणा की शिकार नही हुई है) कविता के प्रकारो भ्रौर नामा मे बरसाती पौधा की तरह भरमार हो गई है। फिर भी, गुटो से भ्रलग कविता का यदि निरपेक्ष मूल्याकन किया जाए, तो सप्तक के इक्कीस कविया के भ्रतिरिक्त भ्रनगिनत ऐसे कवि मिलेंगे जो स्वय को 'नया' कवि कहते हैं भ्रौर इनमे से कुछ कवि सप्तक के कविया की तुलना मे ऊचा स्थान प्राप्त कर चुके हैं। वास्तव म सप्तका म भ्राए हुए सभी कवि न तो महत्त्वपूण है भ्रौर न उनक बाहर के सभी कवि महत्त्वहीन।

यह समस्त काव्य 'दूसरा सप्तक' तक जो भ्रारोप सुनता रहा भ्रौर भ्रपने प्रयागवादी होने का निराकरण करता रहा भ्रचानक 'तीसरा सप्तक' म भ्रपने को नयी कविता की सज्ञा देने लगा। प्रयोगवाद नाम का स्पष्टीकरण काफी ऊबा देने वाला हो चुका है किन्तु जबरदस्ती के भ्रोढे हुए इस नाम ने, काव्य को कवियों के लाख प्रतिवाद करने पर भी, प्रयोगवादी सिद्ध कर दिया है। भ्रर्थात प्रयोगवादी वे हैं जो भाव भ्रौर भ्रभिव्यक्ति दोनो के क्षेत्र मे क्रातिकारी प्रयोग कर रहे हा।

काव्य का विषय कभी निश्चित नही किया जा सकता। कविता को सुनिश्चित विषयो

मे बाँध देना, उसके प्रति अन्याय के अतिरिक्त और कुछ नही है। फिर भी प्रत्येक समय की कविता की अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं और कुछ विशिष्ट संवेदनाओ और विषय मे साम्य, व्यक्तित्व वैभिन्य के बाद भी, कवियो मे मिल जाता है।

नयी कविता पर आरोप लगाया जाता है कि वह उच्छृंखल मन की अभिव्यक्ति है जो किसी प्रकार का अंकुश स्वीकार नही करती जिसमे पश्चिम की नकल मे कुण्ठा, अवसाद विघटन आदि विजातीय और विदेशी शब्दो की भरमार कर दी गई है। और 'अभिव्यंजना के नाम पर उसमे कठोर 'भदेस और कितने ही अप्रचलित शब्दो का प्रयोग है। छन्द के नाम पर मुक्तछन्द (जो कुछ पक्तिया बदल देने से गद्य हो जाता है) निरंकुश राज्य कर रहा है—और कविता नाम से जो एक कोहरा भरा, किसी और दुनिया का—सितारो से परे का चित्र उभरता है वह इस कविता को पढकर खडित हो जाता है। ये कवि उधार ली हुई एक ऐसी सृष्टि का सृजन करते हैं जो पाठक की दृष्टि मे 'एब्स्ट्रैक्ट' आर्ट की तरह हर ओर से देखने पर भी अर्थहीन हो रहती है। और इसके अतिरिक्त यह कि समाज से कटा हुआ यह काव्य केवल अपने चारो तरफ प्रकाश का एक दायरा—प्रभामण्डल देखता है।

इन तमाम आरोपो के उत्तर मे वे दृष्टान्त उद्धृत हैं जो कवियो ने अपने वक्तव्यो मे दिए हैं। वक्तव्य अपनी भावनाओ का आलेख है जिनमे कवियो के अपने विचार हैं किसी प्रकार का स्पष्टीकरण देने का प्रयास उनमे नही मिलता है। एक बात जो पहले कह देने की है वह यह कि कविता केवल शृगार की दुहाए वीर की चिंघाड या शान्त की करुणा नही रह गई है। वह केवल कोमलकान्त पदावली नहीं है और न ही कान्तासम्मितयोपदेश युजे है। काव्य का प्रयोजन भावनाओ की अभिव्यक्ति है यश और अर्थ तो उनकी लोकप्रियता और प्रामाणिकता के बाद प्राप्त होते हैं।

पहला प्रश्न है कुण्ठा अवसाद का। कुछ सीमा तक आरोप सही हो सकता है यह इसलिए कि स्वतन्त्रता के बाद जो कवियो की पीढ़ी आई है वह स्वतन्त्रता के विषय मे किसी गलतफहमी का शिकार नही है। अवसरवादिता और झूठा आदर्श जिसके बाद हर स्वप्न टूट गया था—युवको के मन मे स्वाभाविक रूप से ही कुण्ठा को जगाते थे।

सन ४७ से लेकर ६० तक तरह बरसो मे एक विकासशील देश के प्रति सबके मन मे श्रद्धा थी। नेहरू मानव नही देवता की तरह पूजे जाते थे और उस समय मे आस्था का अभाव नही था। अपने सामाजिक परिवेश से असतुष्ट कवि के मन मे कुण्ठा है किन्तु आस्था वहाँ खण्डित नही हुई है। 'तारसप्तक' की अधिकाश कविताओं पर मार्क्सवाद का प्रभाव स्पष्ट है। पूजी और परम्परा के दम घोटनेवाले बन्धन बोझ तो लगते हैं सच्ची साँस लेने का मन तो करता है किन्तु उन सब मे कहीं उस परिस्थितिजन्य हताशा के सामने गिर भराकर बैठ जाने का भाव नहा है—

किन्तु मैं हारा नहीं हूँ
फडफडाती है अभी बाँहें
कि अपने मार्ग के अवरोध सारे तोड दूँ
धमनियों मे रक्त बहता है अभी इतना
कि जग सूँ

उस बिखरती अथिर छलनामयी को
आश्लेष मे
जो तोड दे व्यवधान
कर दे एक, एकमएक
दो इन दूर पर चलते सितारो को ।[1]

अथवा

प्रलय से निराशा तुझे हो गयी
इसी ध्वस म मूर्च्छिता हो कही
पडी हो नयी जिन्दगी, क्या पता ?
सृजन की थकन भूल जा देवता ।[2]

तीसरा सप्तक मे कुण्ठा का आभास मिलता है पर कुण्ठा के लिए स्वय व्यक्ति जिम्मेदार नही है । कुण्ठा को फशन कहना उचित नही है । इस साहित्य म कुण्ठा फैशन के रूप म नही, मजबूरी के रूप मे आई है, उसका दायित्व साहित्य को प्रभावित करनेवाले सामाजिक मूल्यो पर है । यह कुण्ठा कोई प्रदर्शन करने वाला भाव नही है और न ही गले मे ढाल डाल बजा-बजाकर अपने को कुण्ठित घोषित करने का प्रयास है । मन की अभिव्यक्ति होने के कारण हर बात का सही चित्रण करने की शक्ति कविता म रहती है—

तुम्हारी एक लाइन ने मेरे बाग को निगध कर दिया,
मेरे रगीन इन्द्रधनुष पर रोशनाई पोत दी,
मेरे आकाश से वह एक हसमुख तारा अस्त हो गया,
कि जिसके सहारे ही मैं चलता रहा था ।[3]

कवि समाज से कटा, अपने दायरे मे कोल्हू के बैल की तरह अपनी ही धुरी से बधा हुआ भटक रहा है—कितना सत्य है इस कथन मे ? कवि समाज को स्वीकार नही करता किस सीमा तक ? यह द्रष्टव्य है—

आज के वैविध्यमय उलझन से भरे, रग बिरगे जीवन को यदि देखना है तो अपने वयक्तिक क्षेत्र से एक बार तो उड़कर बाहर जाना ही होगा ।"[4]

और—

कला का सघष समाज के सघर्षो से कोई अलग की चीज नही हो सकती और इतिहास आज इन सघर्षो का साथ दे रहा है ।'[5]

इसके अतिरिक्त—

"कोशिश तो यही रही है कि सामाजिक यथाथ के प्रति अधिक-से अधिक जागरुक रहा जाए और वज्ञानिक तरीके से समाज को समझा जाए ।

१ नेमिचन्द्र जैन तार सप्तक, पृष्ठ २६-३०
२ धर्मवीर भारती दूसरा सप्तक, पृष्ठ १८१
३ मदन वात्स्यायन तीसरा सप्तक, पृष्ठ १७३
४ ग० मा० मुक्तिबोध तार सप्तक, वक्तव्य
५ शमशेर बहादुर सिंह दूसरा सप्तक, वक्तव्य

"विचार वस्तु का कविता में खून की तरह दौड़ते रहना कविता को जीवन और शक्ति देता है, और यह तभी संभव है जब हमारी कविता की जड़ें यथार्थ में हों।"[1]

'कविता मेरे लिये कोरी भावुकता की हाय हाय न होकर यथार्थ के प्रति एक प्रौढ़ प्रतिक्रिया की मार्मिक अभिव्यक्ति है।'[2]

ये उक्तियाँ यह प्रमाणित कर देती हैं कि कविता कहीं आसमान में भटकती नहीं है अपितु उसके पैर पूरी तरह से जमीन को छूते हैं। वास्तव में समकालीन कविता के प्रति न्याय इस कारण नहीं हो पाता क्योंकि तत्कालीन होने के कारण हम उसके प्रति निरपेक्ष और तटस्थ दृष्टिकोण नहीं रख सकते। परिणाम यह होता है कि या तो इस कविता का केवल समर्थन किया जाता है या फिर केवल विरोध। इस पर लगाए गए अन्य आक्षेप क्योंकि अभिव्यंजना से सम्बद्ध हैं अतः उसी संदर्भ में उनका निराकरण उचित है।

जिन विषयों के प्रसार के विषय में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने निर्देश दिए थे वे सतही थे। वास्तव में परिस्थितियाँ और परिवेश दोनों ही काव्य में नए विषयों के समागम के लिए उत्तरदायी रहते हैं। द्विवेदी युग सुधार और माधुर्य पर विशेष बल देता है, छायावाद अपनी रोमानी दुनिया के स्वप्न में लिप्त रहा, प्रगतिवाद कविता के नाम पर सामाजिक यथार्थ का अनुभूतिविहीन स्वरूप प्रस्तुत करता है और प्रयोगवाद—ऐसा नहीं है कि उसमें दोष नहीं है पर एक दृष्टि से देखा जाए तो नयी कविता ने अपने विषय-क्षेत्र का प्रसार किसी एक दिशा में नहीं किया अपितु जितने भी जीवन के अनुभव हैं वे सब कविता के विषय हो गए हैं।

इन विषय-क्षेत्रों में जो निरर्थक विषय काव्य में अनुभूतियों के सहभोक्ता बन कर आए हैं उनके काव्य प्रवेश के पीछे एक ठोस कारण है—

"हुआ यह है कि कवि की परम्परागत प्रतिमा अचानक खण्डित हो गयी है। वह न तो अब द्रष्टा है न समाज का विशिष्ट नागरिक। यहाँ तक कि वह अजनबी भी नहीं है—क्योंकि वह चीजों को पहचानता है और इस पहचान के परिणामों से बचने की कोशिश नहीं करता। इस विडम्बनापूर्ण स्थिति का असर उसकी कविता पर यह पड़ा कि वह वस्तु के आकर्षण से खिंचकर गद्य के और निकट आ गयी। फलतः एक नये प्रकार के वस्तुबोध का उदय हुआ, जो वस्तुस्थिति का सामान्य बोध न होकर, वस्तु की स्वतंत्र सत्ता का विशिष्ट बोध है। इससे पूर्व शायद वस्तु की सार्थकता अथवा निरर्थकता को इतनी तीव्रता के साथ कभी महसूस नहीं किया गया था। कुर्सी, टेबुल, जूते, पेंसिल और लैम्पपोस्ट पहली बार कविता में मानव अनुभूतियों के सहभोक्ता बनकर आए। पूर्ववर्ती पीढ़ी की कविता में दैनिक जीवन की वस्तुएँ प्रायः एक आलंकारिक प्रयोजन की पूर्ति के लिए प्रतीकात्मक रूप में लायी जाती थीं और उनके प्रति कवि की रागात्मक प्रतिक्रिया लगभग निश्चित होती थी। पर अब एक कुर्सी अथवा टेबुल अपने स्वतंत्र आकार की विलक्षणता के साथ मानवीय अस्तित्व के सक्रिय साझीदार बन गये हैं।"[3]

---

१ रघुवीर सहाय तीसरा सप्तक वक्तव्य
२ कुंवर नारायण तीसरा सप्तक वक्तव्य
३ केदारनाथ सिंह धर्मयुग, ४ जुलाई, १९६५

अध्ययन की सुविधा के लिए कविता को साठ-पूर्व और साठोत्तर काव्य के अतगत बाँटा जा सकता है क्योंकि स्वतत्रता प्राप्ति के बाद के पहले अठारह बरसो और इधर के आठ बरसो म विषयो म जो महत्त्वपूण अतर आया है वह ध्यान देने योग्य है।

यह कविता नितात व्यक्तिधर्मी नही है। यदि इसे अपने युगबोध और समयबोध के प्रति अतिरिक्त सचेत पाया जाय तो कोई आश्चय नही है। एक बात महत्त्वपूण है, इसम घटनाओ के प्रति वह सवेदना नही है जो बाद की कविता को अभिभूत किए हैं। घटना घटती है—कवि उसका तटस्थ दशक होता है और उसकी प्रतिक्रिया एक ऐसे व्यक्ति की प्रतिक्रिया होती है जो घटनास्थल से दूर समाचारपत्र से या रेडियो से उस किसी घटना का साक्षी होता है। स्वतत्रता एक सद्य प्राप्त उपलब्धि थी जिसके प्रति कवि (एक साधारण भारतीय) की उत्सुकता एक विस्मय विमुग्ध बच्चे सी है जो आसमान मे ओझल होते हुए गुब्बारे को उचक उचक कर देखता रहता है।

गिरिजा कुमार माथुर की 'नई भारती स्वतत्रता की पाँचवी वरसगाँठ पर एक अदम्य विश्वास, पूज्य भावना से भरी है जिसमे तमाम सभावनाए थी। भारत का विश्व भर का धमगुरु होने का दम्भ तब दम्भ नही, प्रयास मात्र था—

हाथ लेकर सभ्यता का रग निकेत
शांति की सदेश श्री मुख पर सुशोभन
तुम चढो जनमुक्ति मगल कामना सी
इस धरा के भाल पर बन लाल चदन।[1]

और

निकटपूर्व-पूर्व-पूर्वदक्षिण म
जनगणमन इस अपूर्व शुभ क्षण मे
गाते हैं घर मे हो या रण म
भारत की लोकतत्र भारती।[2]

इतना ही नही, अतीत की जुगाली करने की आदत और जोर पकडती चली गई। स्वाधीनता प्राप्ति के तत्काल बाद के दिन, सीमाओ पर सडकें बनने और सनिक जमाव के बावजूद, हिन्दी, चीनी भाई भाई के दिन थे। हमे अहकार था कि विश्व भर के आँसू पोछने का काम हम करना है। अज्ञेय की कविता 'छब्बीस जनवरी' इस मुग्ध भाव का सबसे अच्छा उदाहरण है—

आज हम अपने युगो के स्वप्न को
यह नयी आलोक मजूषा समर्पित कर रहे हैं।
सुनो हे नागरिक
अभिनव सभ्य भारत के नए जनराज्य के
सुनो। यह मजूषा तुम्हारी है।[3]

---

१ गिरिजाकुमार माथुर धूप के धान, पृष्ठ १७
२ रामशेरबहादुर सिंह दूसरा सप्तक, पृष्ठ १०६
३ स० ही० वात्स्यायन अज्ञेय बावरा अहेरी, पृष्ठ ४४

और उनकी इस अवस्था का सही वर्णन मिलता है सोलह साल बाद भी इन पंक्तियों में—

"लोगों के दिमाग में एक काल्पनिक बिम्ब था आजादी का, कि हम आजाद होंगे, सुखी होंगे, यह होंगे, वह होंगे। यह कल्पना ही कवि और कलाकार जैसे (यह भी उस युग के कवि) प्राणी को खुश रखने और मुग्ध करने के लिए काफी थी।

कविता और उच्चकोटि की कला उस समय (प्रेमचन्द की मृत्यु के बाद) गौण हो गई जैसा कि हमेशा ऐसे अवसरों पर उनका गौण हो जाना अनिवार्य हो जाता है। लेकिन *जिन्होंने इसका प्रतिनिधित्व किया उन्होंने यह भी घोषित किया कि वे एक नए युग को* जन्म दे रहे हैं। यह भी घोषणा उसी मुग्ध भाव की प्रतीक थी ठीक वैसे ही जैसे बच्चे रंग बिरंगे गुब्बारों को पाकर एक धागे में बाँध खुशी से दौड़ते और उन पर हाथ फेरकर चूँ-चूँ बजाते हैं।

'इस तरह आजादी के नाम पर भारतीय अनुभव प्रक्रिया का जो विभाजन किया गया वह पूर्णतः नकली था। उस समाज की देन जो नकली कपड़े पहनकर निकलता है और एकदम चुस्त, चुस्त और फुर्तीला दिखता है और भीतर एकदम ढीला-ढाला आलस्यपूर्ण परोपजीवी कायर तथा दुःखी और बेहद निराश होता है। इस नकलीपन में एक युग की शुरूआत का ढिंढोरा पीटा गया। जो यथार्थ के निकट थे वे तब भी चुप रहे और आज भी चुप हैं। जिन्होंने मुग्ध भाव से यह सारा उद्घोष किया वे अपने गुब्बारे दूसरे बच्चों के हाथ में थमाकर खुद किसी जिम्मेदार जगह में रोजी रोटी की फिक्र में चले गए। नए बच्चों ने देखा कि गुब्बारे पिचके थे। उनमें हवा नहीं थी और वे उन्हें फुला नहीं सकते थे। सब में अनेक छेद थे। जिस 'आलोक मंजूषा' को नयी पीढ़ी ने आदरभाव से ग्रहण किया उसमें केवल अँधेरा था। जिसके दरक गये शीशे में उल्लू बैठे थे—चारों तरफ भूखे बेसब्र भ्रष्ट प्रजातांत्रिक खोल ओढ़े अत्याचारी लोगों की भीड़ थी। जिनके पास बड़ी बड़ी प्रोजेक्ट की फाइलें थीं। जो भाग्यशाली थे। उस अँधेरे में टटोलने पर बेसहारा लोग भी थे—चुप और असहाय, जिन्हें उन कागजों में कहीं अन्न का दाना नजर नहीं आता था। उनमें सूखते पेड़, बौखलाती नदियाँ भी थीं—चुपके से अनायास अर्थतंत्र के दबाव में छिन जाते स्नेह के टुकड़े भी थे।

नयी पीढ़ी ने हारकर एक तीली जलाई और जलाकर बुझा दिया। उसे सब कुछ दिख गया। इस देखने का वह क्या करे—उस प्रजातंत्र का उस आजादी का उस भाईचारे का उस कागजी कारवाई का, बड़ी बड़ी बहसों और विशाल फाटकों के पीछे भूखे लोगों का वह क्या करे ?[1]

कवियों ने बापू और नेहरू को हीरो बनाकर मुग्ध भाव से जो उनका स्तवन किया है उसमें केवल स्तवन नहीं है अपितु उन नेताओं के चरित्र की कमजोरियों को उभार कर अपनी प्रतिक्रियाओं का पात्र बनाया है। जिसे राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता कहा गया है उसके समान यह कवि ललकारता नहीं है और न ही नेता विशिष्ट का पूरा जीवन चरित बखानता

---

१ दूधनाथ सिंह अपनी शताब्दी के नाम, पृष्ठ १३१-३२।

है। पूय भाव से पीडित वह अवश्य है किन्तु इतना नही कि आखें मूँद कर अँधेरे को भी उजाला कहने लगे—

अव न बनना मोम का पवत
न दबना भार से।
क्योकि तेरी छाह मे
मासूम और सुकुमार बच्चे
स्नेह ममता मूर्ति माँ बहनें वतन की
ले रही हैं निज पनाह।[1]

स्वाधीनता के आसपास की घटनाओं के प्रति उसका दष्टिकोण, बुद्धजीवी का ही दष्टिकोण है। हिरोशिमा का विस्फोट तमाम प्रगति पर एक प्रश्नचिह्न था—

एक दिन सहसा
सूरज निकला
अरे क्षितिज पर नही,
नगर के चौक
धूप बरसी
पर अतरिक्ष से नही
फटी मिटटी से
मानव का रचा हुआ सूरज
मानव को भाप बन सोख गया।
पत्थर पर लिखी हुई यह
जली हुई छाया
मानव की साखी है।[2]

फिर विभाजन—आग और लपटो के बीच अग्निपरीक्षा देकर निकल आए व्यक्तिपूय जिन्हें शरणार्थी' कहा गया। क्या अपने ही देश म शरणार्थी थे? अवसरवादियो ने हिन्दू मुस्लिम एकता और साम्प्रदायिकता पर सैकडा कविताएँ लिख दी होगी पर उनकी नजर स उन शरणार्थियो का मानसिक आदोलन कसे छिपा होगा?

गिर रही चारा तरफ हमदर्दियो की फुलझडी
पूछता प्रत्येक जन
निलज्जता की वह कहानी
जो हमारे वास्ते रह गई पुडिया पुरानी
दद से भरपूर।[3]

जख्म की पीडा की टीस उतनी नही होती जितनी कि उन तमाम नजरों म होती है

१ हरिनारायण व्यास दूसरा सप्तक, पृष्ठ ६५
स० ही० वात्स्यायन अज्ञेय अरी ओ करुणा प्रभामय पृष्ठ १५४-५५
२ हरिनारायण व्यास दूसरा सप्तक, पृष्ठ ७५

जिससे करुणा टपकी पड़ती है—

हम हमेशा अन्धियारे में बसते ही यह शरण की
'साधना सज्जा' पहन
जीते नहीं रह पायेंगे ।[1]

एक अन्य तथ्य जो इस समय की विश्व दृष्टि को पर्याप्त प्रभावित किए हुए है वह उसकी मार्क्स की अन्धभक्ति है। और साम्यवाद का था निस्सन्देह, और प्रगतिवाद का प्रभाव सर्वनिष्ठ था, पर तारसप्तक के सभी कवि मार्क्सवाद से प्रभावित रहे हैं। नेमिचन्द्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल और रामविलास शर्मा ने तो घोषित कर दिया शेष कवियों में सम्भवत पूर्ववर्ती काव्य के प्रभावस्वरूप यह विचारधारा मिलती है।

मुक्तिबोध पूँजीवादी समाज में सड़ांध पाते रहे। ज्ञान, संस्कृति, सौन्दर्य, सभ्यता के बावजूद मरणशील है—भले ही अब तक यह भावना बिल्कुल 'विज़न' ही रही है—

तुझको देख मितली उमड़ आती शीघ्र
तेरे ह्रास में भी रोगकृमि हैं उग्र
तेरा नाश तुझ पर क्रुद्ध, तुझ पर व्यग्र।

तू है मरण, तू है रिक्त, तू है व्यर्थ
तेरा ध्वंस केवल एक तेरा अर्थ।[2]

या प्रभाकर माचवे निम्नमध्यवर्ग का चित्रण 'दास्द्रास्त्वुयुते सोवित्स्की सोयूज़—सोवियत यूनियन ज़िन्दाबाद' कह कर अपनी भावनाओं को अभिव्यक्ति देते हैं। दूसरी ओर शमशेरबहादुर सिंह स्पष्ट कहते हैं—

पथ प्रदर्शिका मशाल
कमकर की मुट्ठी में किन्तु उधर
आगे आगे जलती चलती है

भारत का आत्मराग
भूत और भविष्य का वितान लिये
काल मान विज्ञ
    मार्क्समान में तुला हुआ
वाम वाम वाम दिशा—
    समय साम्यवाद।[3]

---

१ हरिनारायण व्यास दूसरा सप्तक, पृष्ठ ७६
२ ग० मा० मुक्तिबोध तारसप्तक, पृष्ठ १६-१७
३ शमशेर बहादुर सिंह दूसरा सप्तक, पृष्ठ ११३

यह प्रभाव केवल पढने मात्र की प्रतिक्रिया नही है अपितु जीवन को भी उन्ही घोषणाओ के अनुकूल ढालने का प्रयास उसम है। अमीर और गरीब—प्रगतिवादी भाषा मे शोषक और शोषित —या बुर्जुआ और प्रोलितेरियत, इन दो वर्गों के बीच मुह फलाए खडी खाई को पाटने की कोशिश हल्की सी ही सही, इन कविताओ म मिलती है—

जो भी जहा भी पिसता है
पर हारता नही न मरता है—
पीडित श्रमरत मानव
अविजित, दुर्जेय मानव
कमकर, श्रमकर, शिल्पी, स्रष्टा—
उसकी मैं कथा हूं।[1]

अविभाज्य भारत की, जो एकता के लिए लडता लडता कट गया, असलियत क्या थी ? एक बाहरी सत्ता हुक्म चलाती रही हम मानते रहे पर उनके विरुद्ध लडने वालो के प्रति क्या भाव था, साधारण व्यक्ति का—

हिदुस्तान हमारा है—
प्राणा से भी प्यारा है
उसकी रक्षा कौन करे
सैंत मेत मे कौन मरे
पाकिस्तान हमारा है
प्राणो से भी प्यारा है
इसकी रक्षा कौन करे
बठो हाथ पै हाथ घरे
गिरने दो जापानी बम
× × ×
हिन्दी हम चालीस करोड
क्यो बैठे हैं साहस छोड
यह आजादी का मदान
जीतेंगे मजदूर किसान
एक यही है राह सुगम।[2]

इसका अथ यह नही लेना चाहिए कि कविता एकदम बहिमुखी तथ्य इस बात के साक्षी हैं कि छायावाद जहा केवल प्रेम छाया, स्वप्न मदिर के इद गिद भटकता रहा और प्रगतिवाद लाल रूस की ढाल को का जवाब देता रहा वहा यह कविता उस ढाल को लिये हुए स्वप्न करती है। अन्तर महत्त्वपूण है छायावादी और प्रगतिवादी कविता

---

१ स० डो० वात्स्यायन ? न धनु रादे हुए, पृष्ठ ७०
२ रामविलास शर्मा तारसप्तक, पृष्ठ ६८

भौतिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय दर्शन का एक प्रभामण्डल है जो इस कविता में नहीं है। एक साधारण व्यक्ति की हैसियत से वह अपने को स्थापित करने की कोशिश करता है।

पहले की कविता धीरोदात्त नायक की कविता थी। जैसे साधारण व्यक्ति जीने का भी अधिकारी नहीं होता उसी भांति कविता भी उसके स्वप्न के बाहर की वस्तु थी। एक औसत आदमी की कल्पना में कवि, व्यक्ति कम अजूबा अधिक रह जाता था। जैसे कवि आदमी नहीं चिड़ियाघर से छूटा हुआ कोई जीव है या देवलोक से उतरा हुआ कोई शापभ्रष्ट गंधर्व जिसके पैर धरती से सदा ही कुछ ऊपर रहते थे। आज का कवि स्वयं को मंदिर का दीप नहीं मानता और न ही नीरव जलते रहने की कोई अभिलाषा उसके मन में शेष है। वह जो कुछ करता है उसके लिए वह स्वयं उत्तरदायी है वह केवल अपने लिए नहीं सभी के लिए उत्तरदायी है—

मैं तुम्हारे साथ जिया हूँ
✓ तुम्हारे साथ मैंने कष्ट पाया है
यातनाएँ सही हैं
किन्तु तुम्हारे साथ मैं मरा नहीं हूँ
क्योंकि तुमने तुम्हारा कष्ट भोगने के लिए मुझे चुना
मैं अपने ही नहीं—तुम्हारे भी सलीब का वाहक हूँ
जिसके आसपास तुम्हारे प्रेत मँडराते हैं
और मेरे उस प्रयास पर चौंकते हैं
जिसे तुमने अधूरा छोड़ दिया था।[1]

जीवन के प्रति इन कवियों का दृष्टिकोण अत्यन्त स्वस्थ रहा है। पश्चिमी अस्तित्ववादी दर्शन को ओढ़ लेने के प्रयास में भारत की कविताओं में भी जीवन की व्यर्थता असारता और अनिश्चितता का चित्रण हुआ है किन्तु यह कविता जीवन के प्रति एक जिज्ञासु का दृष्टिकोण रखती है।

मृत्यु एक अवश्यंभावी अनिवार्यता है और उसकी विभीषिका जीवन की तमाम विकृतियों को जन्म देती है। मृत्यु को अस्वीकार नहीं किया जा सकता किन्तु उसकी प्रतीक्षा करते हुए हम जीवन के तप से मुँह नहीं मोड़ सकते—

क्रमशः मृत्यु मृत्यु भी सत्य ही है
उसे हम छोड़ नहीं सकते
हाँ शिवता सुन्दरता हम उसे दे सकते हैं
अभी किन्तु जीवन अन्तहीन तपस्या जिससे
हम मुँह नहीं मोड़ सकते।[2]

जीवन का अर्थ संत्रास है जो इन समस्त अनिश्चितताओं से उपजा है पर मृत्यु पूजा की भावना उसमें नहीं मिलती। अस्तित्ववादियों की भाँति मृत्यु का उन्नयन करने का प्रयास

---

१ स० ही० वात्स्यायन 'अज्ञेय' इन्द्रधनु रौंदे हुए ये पृ० ३९
२ वही, पृष्ठ ४०

इसम कही नही है। जीवन वास्तव मे समय का अनथक विस्तार है जो सास तक लेने का अवकाश नही देता है—

खत्म होने को न आएगी कभी क्या
एक उजडी मांग सी यह धूल धूसर राह ?
एक दिन क्या मुझी को पी जाएगी
यह सफर की प्यास, अबुझ अथाह ?[1]

सदा से यह विधान रहा है—

सभी जगह जो शास्ता है—जो बागडोर थामे है, उसकी दीठ मद है
आंखो पर चढा है मोटा चश्मा—जो
प्राय धूमिल भी होता है।
सभी जगह
जिसकी मुट्ठी म ताकत है
उसका भेजा है एक ओर भेडिए
दूसरी ओर मकट का।[2]

नियति भी इसी विधान को स्वीकार करती आई है। हर किसी की महत्वाकाक्षा या तो सेठो द्वारा खरीद ली गई है या फिर राजसम्मान के बोझ से दब गई है। उसकी तमाम ईमानदार अनुभूतिया उसका समस्त विचार मथन लक्ष्मी की झकार म दम तोड देता है—

सत्य है एक मणिजटित दुपट्टा, एक
मुद्रा मजूषा, एक पालकी।
सत्य है आत्मा पर थोपी हुई सीमाएँ
सोने के जाल की।[3]

सच्चाई से काम करने वाले के पास केवल अभाव की व्यथा को छोडकर और क्या बच रहता है ?

हल्दी से सनी साडी ठीक कर
सर ढँक लो
आटे से भरे हाथ धो डालो
आओ अपनी फटी हथेली फलाओ
लो
सौंपता हू—
ये थाती है तीन दिन तक तपने की
मुना के दूध मुनी की फ्राक
और तुम्हारी टिकुली की कसक म

१ धर्मवीर भारती सात गीत वर्ष, पृ० १७५
२ स० ही० वात्स्यायन 'अज्ञेय' अरी ओ करुणा प्रभामय, पृ० ३८
३ धर्मवीर भारती सात गीत वर्ष पृष्ठ ८८

पुटन की,
आकाश के नील पृष्ठ पर
सपना के अक्षर
तुम्हारे मुरझाए होठों की लाली के गीत लौटा
इस मौलश्री के बिरवे पर अश्रुजल चढ़ाने
या पलने को झुला झुला
लोरी की कलियाँ खिलाने—
की साधा में सुलग-सुलग
जलती उगलियाँ से साँझ तलक
नतमस्तक
कलम घिसने की
घिसने की ।[1]

परम्पराओं की प्रति का निषेध स्वर उभरने लगा था । 'हम लोग अपने संस्कारों और परम्पराओं की चकाचौंध में यह भूल चुके थे कि इन संस्कारों की और परम्पराओं की चमक उधड़ गई है । टूटते हुए किसी राजशाही महल के झाड़ फानूसों की चमक दमक में भी लोंसें निपोरे दीवार की ललौरी ईंटें दिखाई पड़ने लगी हैं । वास्तव में अनुभूतियों का लावा जब पिघलकर फूट पड़ने को उतारू हो जाता है तो फिर प्रचलित मान्यताएँ अपने आप टूट पड़ती हैं ।'[2]

परम्पराओं की बर्फ कभी पिघलती नहीं, उसकी परतों पर परतें घनी ही होती जाती हैं—

सघन बर्फ की कड़ी परत सी
एक एक कर अमित रूढ़ियाँ
सदियों से जमती जाती हैं
तह पर तह
मानव जीवन पर ।[3]

आने वाली पीढ़ियाँ अपने पूर्वजों के प्रताप के बोझ में दबी है क्योंकि किसी और के किये अपराधों का दण्ड भुगतने के लिए उन्हें चुना गया है—

आज तक जिसने तुम्हारे शापवश
बिना हर्ष विषाद
काटे महा चौदह वर्ष
उसने लौटकर
अपनी नयी संतान को फिर

---

१ मलयज नयी कविता ८ ६ पृष्ठ ५४
२ हरिनारायण व्यास दूसरा सप्तक, वक्तव्य
३ भारतभूषण अग्रवाल सारसप्तक, पृ० ३४

उसी मन से बिना हृष विषाद
गम म ही दे दिया बनवास ।
आज हमने फिर किया है शब्द का आखेट
मत हमे देना पुराना शाप ।
कब तलक यह पूवजो से मिली प्रतिहिंसा
कब तलक, अर्घ तपस्वी कब तलक
अजन्मी पीढियो पर ?
कब तलक नतशीश कधो पर चढा यह तीथ सयम
कब तलक यह हर नयी आवाज का बनवास ?[1]

इस 'कब तलक' को अपने कधो से हटा देने की शक्ति और साहस जिन लोगो म है उन लोगो की भी अपनी विवशताए हैं—

लडने वाली मुट्ठी जेबो म बन्द
नया दौर लाने मे असफल हर छन्द ।[2]

महानगर—जो बढती हुई औद्योगिकता के कारण आज एक विभीषिका हो गया है जहाँ हर कोई एक ऐसी जल्दी मे है जसे कोई कोडा लेकर भागता चला आ रहा हो और सब यातायात, सारे लोग चीखते पुकारते बिना यह जाने कि सामने दीवार है या नाला है भागते चले जाते हैं। यही आज के कवि का सत्य है। पर बढ़ता हुआ औद्योगीकरण पहले मानव के लिए एक प्रश्न था। सिर उठाए हुए ऊचे-ऊँचे मकान मनुष्य को कितना बौना बना देते हैं, फिर भी तब की कविताओं मे उसका जादू ऐसे सिर चढकर नही बोला करता था—

और सभ्यता
बहुत बडी सुविधा है
सभ्य तुम्हारे लिए
किन्तु क्या जाने
ठोकर खाकर कही रुके वह
आँख उठाकर ताके
और अचानक तुमको ले पहचान
अचानक पूछे
धीरे धीरे धीरे
'हाँ पर मानव
तुम हो किसने लिये ?[3]

तीसरा सप्तक तक कवि प्रकृति से पूरी तरह परिचित था। एक समय था जब साँझ को उगते हुए तारो की स्थिति से समय का ज्ञान हो जाता था जब तारो के तमाम नाम

1 विजयदेवनारायण साही नयी कविता, पृष्ठ २००
2 धर्मवीर भारती सात गीत वष, पृष्ठ ४१
३ स० ही वात्स्यायन 'अज्ञेय', इन्द्रधनु रौंदे हुए ये पृष्ठ ६०

याद थे किन्तु अब तो आकाश का उतना हिस्सा हर किसी के भाग में पड़ता है जितना कटे-पिटे बिजली, टेलीफोन, गैस और ट्राम के तारों के बाद खिड़की से दिखाई पड़ता है।

प्रकृति के विभिन्न दृश्यों के चित्र सहज ही मिल जाते हैं। अज्ञेय की 'बावरा अहेरी' की अधिकांश कविताएँ—गिरिजाकुमार के 'धूप के धान', दूसरा सप्तक में भवानी प्रसाद मिश्र, नरेश मेहता की समय देवता और उषस् सम्बन्धी कविताएँ और तीसरा सप्तक में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविताओं में प्रकृति का केवल चित्रण नहीं है अपितु उनमें वह अनुभूति भी जागृत होती है जो प्रकृति की विशेष भंगिमा का प्रसाद है।

यहाँ पर उषा प्रसाद की 'नवल मुकुल रस गागरी' भरने वाली सुन्दरी ही नहीं, बहुत कुछ है—

मैंने कहा—
उठ री लजीली भोर रश्मि, सोयी
दुनिया में मुझे कोई
देखे मत भर भीतर समा जा तू
चुपके से भरी यह हिमाहत
नलिनी खिला जा तू।
वो प्रगल्भा मानमयी
बावली-सी उठ सारी दुनिया में फैल गई।[1]

नरेश मेहता ने तो अपने वक्तव्य में उषा के प्रति अपने मुग्ध भाव को स्वीकार भी कर लिया है, एक अजीब मोह उषा के प्रति मिलता है—

उदयाचल से किरन धेनुएँ
हाँक ला रहा वह प्रभात का ग्वाला।[2]

या

प्रथम बार
इस गँवार नारि के सिंगार पर
कोटर-कोटर से छिप झाँकती
सखियाँ खिलखिला उठीं,
पीछे से आ पिय ने
चुपके से हाथ बढ़ा
माथे पर चाँदी की बिंदिया चिपका दी
लज्जा से लाल मुख
हथेलियों में छिपा
भोर भट भाग
ओट हो गयी

१ स० ही० वात्स्यायन बावरा अहेरी, पृष्ठ ५२
२ नरेश मेहता दूसरा सप्तक पृष्ठ १२५

माथे से छूट गिरी बेंदी
बस पडी रही।[1]

प्रकृति केवल सुदरता के लिए स्पृहणीय नहीं है। वह नाश भी करती है। पर कवि नाश को उतना महत्त्व नही देता जितना कि नाश के बाद के निर्माण को। तमाम नाश के बाद भी दु ख भरे ससार मे सुख की रचना करने की चेष्टा रहती है—

इस दु खी ससार मे जितना
बने हम सुख लुटा दें,
बन सके तो निष्कपट मृदु हास के
दो कन जुटाएँ[2]

प्रकृति का प्रयोग मानव-सवेदनाओ को स्पष्ट करने के लिए बिम्बो के रूप मे होता आया है किन्तु मानव चेष्टाओ से प्रकृति के व्यापार को स्पष्ट करने का प्रयास नया ही है—

इजन के हेडलाइट सा, शोरगुल के बीच
सूरज निकल गया।
गाड की रोशनी सा पीछे गुमसुम अब
शुक्रतारा जा रहा है।
शहर को अँधेरा कर, हवाई जहाज से
मिनिस्टर चले गये
'जनता से एम० एल० ए० सा पीछे पीछे यह
शुक्रतारा जा रहा है।[3]

इन सबके अतिरिक्त, प्रकृति सात्वना देने मे भी पीछे नहीं है—

आज पहली बार
थकी शीतल हवा ने
शीश मेरा उठाकर
चुपचाप अपनी गोद मे रखा
और जलते मस्तक पर
काँपता-सा हाथ रखकर कहा,
'सुनो, मैं भी पराजित हूँ,
सुनो, मैं भी बहुत भटकी हूँ,
सुनो मेरा भी नही कोई
सुनो, मैं भी कहीं अटकी हूँ
पर न जाने क्यो पराजय ने मुझे शीतल किया,
और हर भटकाव ने गति दी

---

१ सर्वेश्वरदयाल सक्सेना तीसरा सप्तक, पृष्ठ २५६
२ भवानी प्रसाद मिश्र दूसरा सप्तक, पृष्ठ २०
३ मदन वात्स्यायन तीसरा सप्तक, पृष्ठ १४६

नहीं कोई था
इसी से सब हो गये मेरे
मैं स्वय ही बाँटती फिरी
किसी ने मुझको नही यति दी ।'
लगा मुझको उठाकर कोई खडा कर गया
और मेरे दद को मुझ से बडा कर गया ।[1]

व्यक्तिवाद, यदि वाद शब्द हटा भी दें तो व्यक्ति की प्रमुखता का आभास इसी समय होना प्रारम्भ होता है। प्रगतिवाद म व्यक्ति का कही कोई स्थान नही रहा—व्यक्ति वहाँ यदि शोषक था तो गालियाँ खाता था और यदि शोषित था तो दुनिया भर की सहानुभूति म डूबा रहता था। छायावाद म मैं की भावना आई थी किन्तु आज की कविता की तरह मैं और केवल मैं का भाव उसम नही था। वह बाढ म फँसे हुए सरकण्डे की तरह था जो बहाव के साथ झुक जाता था पर अब व्यक्ति कबीर की भाषा वाला अक्खड है—उसका अह उसे तोड देता है पर झुका नही सकता।

चेक बुक पीली हो या लाल
दाम सिक्के हो या शोहरत—
कह दो उनसे
जो खरीदने आए हो तुम्हे
हर भूखा आदमी बिकाऊ नही होता है ।[2]

इस न बिकने की भावना की शुरुआत कहाँ से मानी जाए ?

छायावाद मे व्यक्ति ने अपनी मानसिक दासता के लिए अपनी एक मौलिक एव मधुर दाशनिक वृत्ति को अपना लिया था। यह दाशनिक वृत्ति वस्तुत मन की माया के अतिरिक्त कुछ और नही हो सकती।

'शेखर एक जीवनी मे वयक्तिकता ने अपना रूप बदला। शेखर एक व्यक्तिवादी पात्र है किन्तु उसका व्यक्तिवाद दास मन का रुदन नही है अपितु वह एक शोषित व्यक्ति की विद्रोहमयी वृत्ति का अकन है। शेखर वह व्यक्ति है जो प्रचलित मान्यताओ के खोखलेपन को देखकर उनके प्रति अपनापन समर्पित नही करता है बल्कि वह नयी मान्यताएँ गढ़ता है। पुरानी से लडता है उनसे घृणा करता है, उन्हे तोड फेंकने की चेष्टा करता है। वह विद्रोह के द्वारा अपनी माँगो का महत्त्व समझा सकता है वह रिरियाता नही है और न ही भीख मागता है।

शेखर का यह व्यक्तिवाद वस्तुत नयी चेतना की प्रथम किरण थी। यही वयक्तिकता कविता के क्षेत्र म चिन्ता के बाद तारसप्तक के साथ नए विचार नयी प्रेरणा और नई अनुभूति लेकर हिन्दी म आई। चिन्ता म व्यक्तित्व के गतिरोधी तत्वो से उसकी टकराहट का अकन हुआ है और तारसप्तक के कवियो म भी व्यक्तित्व की टकराहट सामने आई है।[3]

---

१ सर्वेश्वरदयाल सक्सेना तीसरा सप्तक पृष्ठ २१२
२ धर्मवीर भारती सात गीत वर्ष, पृ० ८६
३ हरिनारायण व्यास दूसरा सप्तक वक्तव्य

व्यक्तित्व की यही टकराहट है जो कवि को जिस की सीमा तक सिद्धान्तो पर चलन और अन्याय का सामना करने को बाध्य करती है। गलत बात को वह इसलिय स्वीकार नही करता कि उसम उस लाभ नही है अपितु इसलिए कि उसका हृदय उस गलत बात का विरोध करता है—

न खेलू मैं अगर शतरज ऐसी गलत शर्तों पर
कि जिसमे सभी चालें बस तुम्हारी हो ?
न हो स्वीकार यदि यह खेल मुझको
जीतना जिसको तुम्हारी बदनियत हो ?
और जिसम हारना मेरी नियति हो ?[१]

यही वह उसके मन को अपने उन 'बडो' के लिये आक्रोश से भर देता है जो छल कपट से अपने शिष्यो की उन्नति नही होने दते और उनके व्यक्तित्व को खण्डित कर देते हैं—

ओ महाप्रलय के बाद के उगते नए शिखरो
है कसम तुम्हे इन ध्वस्त विन्ध्यमालाओं की
मत शीश झुकाना तुम अपना।
असूय तुम्हारा तेजस्वी यह भाल देख
कितने अगस्त्य आएँगे गुरु का वेश धरे
आशीष वचन कहने वाले
चिर विनत तुम्हारा मस्तक या ही झुका छोड,
ये गुरुवर वापस नहीं लौट कर आएगे।[२]

चापलूसी को, आज का कवि, कविता का धम नही मानता और न ही किसी की दुखती रग पर मलहम लगाने का काम ही वह करता है। वह सत्य कहता है और वह भी कडुआ सत्य—

मैंने कब कहा कि मेरा धम है—
मम सहला कर व्यथा भुला देना
मैंने कब कहा कि मेरा कम है
पिचके गुब्बारो को गस भर फुला देना ?
यह तो वे करते हैं
जो असत्य के चश्म
आंख पर चढाकर कम हरा हरा ग्यान है
ये तो वे करत हैं
जो सूखी बाल पर
प्यासे बवण्डरो मा मृगजल देखते हैं।

---

१ [illegible]वर नारायण तीसरा सप्तक, पृ० २७७
२ विजयदेवनारायण साही तीसरा सप्तक, पृ० २६६

सत्य कहता हूँ
चाहे मन भकभोर उठे
आँखें छलछला आएँ
क्योंकि आहत दुर्बलता भी
एक बार दर्प से सिर उठा देती है,
मुट्ठियाँ मीचकर
सूखी शिराएँ तानती है
वक्ष से भी टूटी पसलियाँ अड़ा देती है।[1]

रहा प्रश्न अनास्था का। अनास्था वास्तव में परिस्थितिजन्य अवसाद से उत्पन्न होती है जिसके लिए काफी सीमा तक हमारा परिवेश उत्तरदायी है। व्यक्ति में अनास्था का उदय बेबात नहीं हो जाता। चोट लगती है उसी के बाद कराह निकलती है, बिना कारण कोई नहीं कराहता। यही बात इस आस्था अनास्था के सन्दर्भ में भी लागू होती है। सन् साठ तक की कविता में चोट का बोध तो है किन्तु उसकी आशा उसकी आस्था सर्वथा खण्डित नहीं हो जाती। वह भविष्य में विश्वास करे या न करे लेकिन अपने पर से उसका विश्वास नहीं टूटा है।

कुछ देर भले लग जाए
दिन ढले चाँद भी उग आए
मैं कर्मशील
मैं जागरूक,
दायित्व सँभाले बैठा हूँ—
जब होगा तो मुझसे होगा
इस आशा में।[2]

कवि अनास्था पर जबर्दस्त प्रश्नचिह्न लगा देता है—

रात
पर मैं जी रहा हूँ निडर
जैसे कमल
जैसे पथ
जैसे सूर्य
क्योंकि
कल भी हम खिलेंगे
हम चलेंगे
हम उगेंगे
वे सब साथ होंगे

१ सर्वेश्वरदयाल सक्सेना तीसरा सप्तक पृ० २६३ ६३
२. कीर्ति चौधरी तीसरा सप्तक, पृ० ७६

आज
जिनको रात ने भटका दिया है।[1]

जहाँ तक वैयक्तिक स्तर की अनुभूतियों का (प्रणय आदि का) प्रश्न है वहा साठ पूर्व और साठोत्तरी कविता मे पर्याप्त अन्तर आ गया है—पहले की कडवाहट बाद मे और तीखी हो गई है क्योंकि जीवन केवल प्रेम का पर्याय नही रह गया है—इस सत्य को कवि समझता है।

सन् साठ के बाद की कविता, क्योंकि एकदम जीवन के बीच गुजर रही है अत उसके प्रति कोई निष्पक्ष दृष्टिकोण रखना सभव नही है। दो ही मत हो सकते हैं—एक तो स्वीकारात्मक, जो इस कविता के समर्थक और प्रवर्तक लोगो की दृष्टि है और दूसरा नकारात्मक जिसमे इस नए दल को उखाडने की प्रवृत्ति प्रमुख है। वास्तव मे कविता के नाम पर जिस तरह का दगल और अखाडेबाजी इन दिनो हो रही है जिस प्रकार हर यश प्रार्थी महत्वाकाक्षी व्यक्ति अपना नाम छपा हुआ देखने के लिए नित नई पत्रिकाओ का प्रकाशन करने लगा है (जिनकी सख्या म दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि हो रही है), इस प्रकार का वातावरण पहले शायद ही कभी रहा हो। इतनी सारी लिखी जाने वाली रचनाओ म साहित्य कौन कहला सकेगी इसका निर्णय अभी नही किया जा सकता।

समकालीनता के सदर्भ मे पहला प्रश्न जो उठता है वह समकालीन शब्द की व्याख्या है। कविता मे आधुनिकता (modernity) और समकालीन (contemporary) तत्वो पर पर्याप्त बल दिया जा रहा है। किन्तु इन दो दृष्टिकोणो मे अन्तर स्पष्ट है। जो कुछ भी आज लिखा जा रहा है वह क्या समकालीन है ? समय की दृष्टि से देखें तो उत्तर होगा 'हाँ' किन्तु यदि भावबोध की दृष्टि से देखें तो आधुनिक—माडर्न, अथ पर अनेक प्रश्नचिह्न लग जाएँगे। कविता या साहित्य के नाम पर बहुत कुछ लिखा जाता है पर उसमे कितना है जो काल सापेक्ष है ? हमे समकालीन उसे ही मानना होगा जो भाव की दृष्टि से प्राचीन—छायावादी या प्रगतिवादी दोहराई गई बातो का ही पिष्टपेषण न करे अपितु उस समय से हटकर कुछ 'नया'—नयी कविता के अर्थ का नही बल्कि जो पहले नही कहा गया हो, आन्दोलन देने का प्रयास करे। वास्तव म, 'कला मे आधुनिकता जीवन के ही समान विचार और सृजन का रूप है और वह तभी तक प्रभावशाली रह सकती है जब तक वह एकदम मुखर न हो जाए।'[2]

आधुनिक दृष्टिकोण मे नवीन के प्रति एक स्पष्ट झुकाव मिलता है। कुछ सीमा तक नया और आधुनिक एक दूसरे के पर्याय हैं। नया दृष्टिकोण वस्तुओ को उनके यथातथ्य रूप म स्वीकार करता है। परम्पराओ का विरोध कही नही करता किन्तु परम्पराओ के

---

१ धर्मवीर भारती सात गीत वर्ष, पृ० ७६
२ 'Modernity in art as in life, is just a mode of thought and creation and it can be effective as long as it does not become obvious
—डा० नगेन्द्र के शिमला म "Modernity in Hindi literature" पर दिये गए भाषण से उद्धृत।

रूढ रूप को स्वीकार भी नही करना। परम्परा, उसके लिए उस प्रवाह के समान है जो आगे बढते हुए परिवर्तित होता रहता है। प्राचीन और बासी का विरोध नए कर्मों के प्रति आकर्षण, नवीनता और विविधता के प्रति मोह आधुनिकता की कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं। परिणामत स्थापित मान्यताओं के प्रति विद्रोह की भावना और जीवन मे प्रयोग के माध्यम से परिवर्तन लाने की भावना आधुनिकता के लिए आवश्यक है।

किन्तु हर समकालीन साहित्यकार आधुनिक नही हो सकता। आधुनिक काल के रत्नाकर किसी भी अर्थ मे आधुनिक नही है और उपन्यासकार गुरुदत्त समकालीन होने पर भी अपने विचारो और शैली म पुरातनपंथी हैं। अत आधुनिकता का एक विशेष अर्थ है जो समकालीन से भिन्न है।

सन '६० के बाद हिन्दी कविता म नये के नाम पर आन्दोलन की भीड उमडी पड रही है—वह सब क्या आधुनिक है ? इसके अन्तर्गत हम अपनी कुण्ठाजन्य, अस्वस्थ और रोगी दिमाग की अभिव्यक्तियो को कविता नही कह सकते। नारी शरीर के कुछ गिने चुने अगो को लेकर यौन कुण्ठाओ और सभोगजन्य विकृतियो को ही स्वर दिया जा रहा है।

सन् '६४ मे बगाल की भूखी पीढी—जो शायद अमेरिका की बीट (आहत) और इंग्लड की एग्री यग-मैन (नाराज पीढी) का भारतीय सस्करण है, पर अश्लीलता का आरोप लगाकर मुकदमा दायर किया गया था। वयोवद्धो को मुखौटे भेज भेजकर य लोग अपना आक्रोश जताते थे जिससे वे गत मूल्यो का नकाब उतार फेंकें।' कवि की स्वमुख म पेच्छाब करने की इच्छा या 'ईश्वर का पाँद चूमने' की इच्छा या नायिका की कमर के नीचे फूल-बागान देखना जैसी कुत्सित अभिव्यक्तियाँ साहित्य मे दिया करते थे—वसे ही लेस्बियाँ, होमोसेक्सुएल आदि विचार जो निश्चय ही पश्चिम की युद्धवर्ती विकृति की भोडी नकल है—हिन्दी म अकविता के नाम पर लिखी जा रही है। या शब्दो का ताण्डव करा भूषण की कविता की लय पर केवल कुछ ढोग किये जा रहे हैं जिसम 'द्र द्र द्र क्ष क्ष क्ष लिखा गया है। ऐसा लगता है कि जमीन पर घिसटता हुआ कोई पगु व्यक्ति अपनी कटी हुई जबान से बोल रहा हो।

पश्चिम के बीटल्स और हिप्पीज तो ऋषीकेश मे आध्यात्मिक सुख की खोज म लगे हैं—

Too much of meditation or too much of music is boring'[१]

इस कारण साधना के मध्य पॉपम्यूजिक क स्वर लहराने लगते हैं। सभव है ये मुखौटो की बात करनेवाले 'सुकवि' भी अपनी साधना की चरम प्राप्ति ऋषीकेश जाकर पा सकें। एल० एस० डी० और मारीजुवाना क प्रभाव स यलोग ईश्वर की प्राप्ति चाहत हैं। अकविता आन्दोलन कुछ भी हो लकिन उसके कवि अपने को बीट कवि से अलग ही जताना चाहते हैं—जिसकी पुष्टि 'बीट बीटल नाराज और भूखे' श्याम लेख म अकविता के एक कवि ने की है—

हिन्दी म अकविता को अक्सर इनके साथ जोडने की एक भोडी कोशिश की जाती है

---

१ स्टेट्समैन दिनांक ३ मार्च, १९६८

मगर अकविता जसी कोई स्वतत्र चीज पश्चिम मे नही हुई ।'[१]

एक दूसर अकवि 'अपने का इस तमाम आदोलन स अलग बताने की असफल कोशिश करत हैं—

"आक्रोश शब्द क साथ एक स्पष्टीकरण जरूरी लग रहा है जिसे अकविता का प्रत्यक कवि महसूस कर रहा है। उसे भूखी पीढी, बीटनिक या एग्री यगमन के रोमानी आक्रोश स तनिक भी लगाव नही है। नग बदन गाजा पीन लम्पपोस्ट क सामने सडक पर कुत्ते की तरह लेट जाने या युवा प्रचंड कवियो के समलगिक व्यवहार के प्रदशन के प्रति उसे कोई अनुरक्ति नही है। उसे कोढ दिखाकर सहानुभूति पाने से नफरत है। वह अच्छे रेस्त्रों म खाना खाता, अच्छी शराब पीता और अच्छे व्यवसाय म सलग्न दिखाई पडता है।'[२]

अब यहा यह नही कि कुण्ठाजनित साहित्य साहित्य नही है। अभाव कुण्ठा बन जाते है और वही अभाव साहित्य के माध्यम स अभिव्यक्त होते हैं अत उन्ह अनफुलफिल्ड डिजायर' कह ल या कुछ और। य कवि स्वय घोषणा करत हैं—

मैं और मेरे समकालीन कवि कविता नही लिखत, कविता का धोखा खडा करत हैं और उन सब धोखा के बीच हमे यह स्वीकार करना पडता है कि यही असली कविता है।'[३]

केवल 'मुझे अज्ञेय न मारा है, मुझे जग द्र न पीटा है कहकर अपने को नया कहलाने का लोभ इन कवियो मे है। जो कुछ भी अधिक से अधिक पच्चीस वष पुराना है, वह परम्परा है और उन पुराने कवियो से अपनी तुलना मे कहा जाता है—

'तारसप्तकीय अधिकाश कवियो की तरह साठ क बाद के कवियो मे झूठा पोज नही है।[४]

सन '६० के बाद कविता किन अर्थों म पहले की कविता से अलग हुई है ? धमयुग म एक अक म प्रकाशित डा० रामदरश मिश्र के लेख का एक अश यह स्पष्ट करने मे पर्याप्त मदद देगा—

साइनबोर्डों से अलग हटकर अगर विचार किया जाय तो इसमे इकार नही किया जा सकता कि सन '६० के आसपास नयी कविता की धारा अपने से कुछ अलग होती दीखती है। यह महत्त्व की बात नही है कि किस भगीरथ ने नयी धारा का अवतरण कराया है महत्त्व की बात है चली आती हुई धारा मे एक नए जल का दीखना या जल की नयी भूमियों के स्पश से नया रग और मोड धारण करना। साठ के बाद जो नया मोड लक्षित होता है वह एकाएक दीखनेवाली कोई नवीन वस्तु नही है वरन नयी कविता से ही फूटा हुआ है। अकवितावालो न भल ही कविता को अलगाने के लिए अकविता नाम दे दिया, किन्तु किसी मौलिक आधार पर अकविता को कविता से अलग नही कर सके। उनके पास कोई स्पष्ट दृष्टि नही है सन साठ के बाद की कविता म असतोष अस्वीकृति और विद्रोह के स्वर बहुत साफ तौर पर उभरे है साठ के बाद इस स्वर ने और तीखे व्यग्य और

१ ज्ञानोदय, महानगर विशेषाक, पृ ठ २११
२ लहर, कविताक उत्तरार्ध, पृष्ठ १०
३ उत्क १, कविताक, पृष्ठ १०
४ उत्क १, कविताक पृष्ठ १४

विद्रोह का रूप धारण कर लिया है। जीवन की टूटती मूर्तियों के बहुत करीब आकर उनके टूटने की तल्खी, व्यथा और उसमें से फूटती अस्वीकृति की उग्रता को पहचाना है।

नयी कविता के साथ सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि नीरज और बच्चन की तरह उसके श्रोता समाज के हर भाग में नहीं हैं। नयी कविता की सम्प्रेषणीयता केवल एक सीमित पाठक वर्ग तक सीमित रह गई है, जो या तो स्वयं नया कवि है या नया आलोचक है। नया कवि प्रेषणीयता के बारे में कोई दावा नहीं करता है क्योंकि उसके निकट प्रेषणीयता की स्थिति बहुत सुखद और स्वाभाविक नहीं है—

'अंग्रेजी के युवा नाटककार हैरल्ड पिण्टर ने कहीं कहा है कि आदमी यदि अपनी बात को दूसरे तक नहीं पहुँचा पाता, तो इसलिए नहीं कि उसमें सम्प्रेषण की क्षमता का अभाव है अपितु इसलिए कि वह इस स्थिति की भयानकता से बचना चाहता है। आज की अधिकांश कविताएँ पिण्टर के इस कथन को चरितार्थ-सी करती जान पड़ती हैं। उनकी शैली बहुत कुछ दो व्यक्तियों के बीच होनेवाले उस प्रेमालाप की तरह होती है, जिसमें फूल-पत्तों और मौसम की बात तो बार-बार की जाती है, पर वह मूल बात हर बार अकथित ही छोड़ दी जाती है जो कि सारी वार्ता का केन्द्र होती है। और ऐसा सम्प्रेषण के अभाव के कारण नहीं, बल्कि उसकी विवश कर देनेवाली अपरिहार्यता के कारण होता है।'[1]

और अब अकविता, विकविता, युयुत्सावादी कविता आदि भाँति भाँति की कविताओं की भीड़ में से पसठोत्तरी पीढ़ी की कविता आवाज उठा रही है जिसके सामने केवल धमाका करके ध्यान खींचना ही एकमात्र लक्ष्य है। यह धमाका कोई उल्लेखनीय बात कह कर नहीं अपितु घिनौनी बातों को कहकर किया जाता है जिसके समर्थन में कहा जाता है—

'वह विसंगतियों को सर्वांगत देखता है, उनसे भागता नहीं, उन्हें भोगता है। निश्चय ही इस कविता का मानक भिन्न है। वह न छायावादियों की तरह उदात्त महामानव है और न 'नयी कविता'वादियों का लघुमानव (जो विघटित मूल्यों का दर्द ओढ़कर शहादत का चोला पहने अपने प्रति दया की माँग करता था)। आज की कविता का नायक (जो स्पष्ट ही मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी है) स्वयं अपने प्रति निर्मम है।'[2]

शहीद उनकी दृष्टि में नयी कवितावादी हुए हैं जो दया की भीख माँगते फिरा करते हैं। दया की भावना तो उनकी स्वयं की हर बात में झलकती है जो अतिशय प्रतिभा के विस्फोट से इन्हें हर प्रकार के वक्तव्य देने को बाध्य करती है। अपने प्रति ये निर्मम हैं—उत्तरदायित्व से भागना अपने नाम के साथ पिस्सू खोटा कुत्ता जोड़कर स्वयं के प्रति निर्मम होने का दंभ कविता को केवल तमाशा बनाए हुए है।

वास्तव में सन् साठ के बाद की कविता नयी कविता का ही विकसित रूप है। नयी कविता की प्रयोगशील स्थिति समाप्त हो गई है। नये नाम आए हैं किन्तु वह नयी कविता की परम्परा ही है पर इन कविताओं में अनुभूति सत्य नहीं है। पश्चिम में बीटनिक सनक घुस गई है—भूखी पीढ़ी गिंसबर्ग की नकल में बंगाल में एक भावुक उबाल की तरह उठी और

१ केदारनाथ सिंह धर्मयुग, ४ जुलाई ६५
२ उत्कर्ष कविताक, पृष्ठ ४५

उसमे दरारें पड गई। बीट कविता ने तो अमेरिकी भाषा साहित्य को एक नया संस्कार दिया था। उसके पहले कविता केवल ड्राइंगरूम की कविता थी, उसे एक नया परिवेश दिया, लेकिन बीटनिको की कविता का उतना महत्त्व नही है जितना उनके अपने जीने का। पिछले कुछ वर्षों मे भारत की सभी भाषाओ मे कवि, दूसरो को अपना आदर्श माने हुए हैं—भूखी पीढी, अकविता, दिगम्बर पीढी सभी मे यही आदर्श मिलता है। एक ओर ये कवि पुरानी 'नयी कविता' पर आक्षेप लगाते हैं कि उसके कवि पोज करते हैं, दूसरी ओर इनकी अपनी रचनाएँ किसी-न किसी ग्रंथ म पहले कही हुई बातो से जुडी है और इन सबसे यदि नाम हटा दिये जाएँ तो सारी कविताएँ किसी एक व्यक्ति की कविताएँ हो सकती हैं—या सभी कविताएँ एक ही कविता या महाकाव्य हो सकती है। आत्माभिव्यक्ति मे कवि कहता है—

मुझे आईने मे
अपनी शक्ल की जगह कुत्ते की शक्ल दिखी,
सामने की दराज मे रखे पोर्ट्रेट
और
चिपफ्लोर पर फली स्याही मे
मुझे अपने चेहरे की समानता दिखाई दी[1]

तब इससे बडा झूठ और क्या हो सकता है? कम-से-कम आईना किसी के चेहरे को कुत्ते की शक्ल नही बना सकता, लम्बा, मोटा, भद्दा भले ही कर दे या य कवि अपनी निगाह मे जो कुछ हैं आईने के सामन अपने का बता पाते हैं। इस पर भी दभ यह कि यह कवि पोज नही करता है।

एसा नही है कि सन साठ के बाद लिखा जानेवाला तमाम साहित्य झूठ और दिखावे पर आधत है। आन्दोलना से अलग जो लोग लिख रहे हैं उनके काव्य मे विस्फोटक सामग्री भले ही कम हो किन्तु अनुभूति के स्तर पर सभी सच्ची और प्रामाणिक हैं। यह कहना कि यदि कवि लिफाफे म जूता रखकर कहे कि यह कविता है तो सबको उसे कविता मानना होगा—क्या इस दृष्टिकोण का परिचायक नही है कि कविता के नाम पर जो कुछ भी दे दिया जाए उसे झख मारकर कविता मानना ही होगा—भले ही कविता से वह कोसा दूर हो।

कविता के क्षेत्र मे सबसे बडी विशेषता पुराने मूल्यो का विघटन और नए मूल्यो की स्थापना है। कवि स्वाल अपने को सदर्भ से कटा हुआ पाये लेकिन कही न कही वह अपने आस पास के परिवेश से बेहद जुडा रहता है। विरासत मे उसने एक टूटता हुआ समाज पाया जहाँ इकाई ही सब समस्याओं का केन्द्र बन गई थी। टूटते हुए परिवार जो अब तक अपने बुजुर्गों की छत्रछाया म पनप रहे थे। उन सिमटते हुए दायरो और बिखरते हुए दृष्टिकोणो (नैतिक धार्मिक सब) से घबराकर व्यक्ति का मन अब नए आयामो की खोज करने लगा। साहित्य के क्षेत्र म एक प्रक्रिया चल रही थी—समाज-व्यक्ति व्यक्ति-समाज के बीच। द्विवेदी युग एक शुद्धता का आदेश देता रहा छायावाद ने प्रकृति का माध्यम ले अपने मन की अभिव्यक्ति दी। प्रगतिवाद मे वही व्यक्ति अपने को किसान, मजदूर, शोषित के साथ जोडता रहा और

१ प्रारम्भ, पृष्ठ २३

प्रकृति और प्रेम जसे विषया के प्रति इन कवियों की प्रतिक्रिया एकदम बदल गई है। इनकी दृष्टि मे प्रेमिका की प्रतीक्षा, वसन्त की प्रतीक्षा और प्रसबार की प्रतीक्षा में कोई मूलभूत अन्तर नही रह गया है। मानव के हँसने-बोलने और हर शाम लौटकर अपने घर आ जाने जसे चिरपरिचित काय भी उन्हें चमत्कार जसे लगते हैं। सन् '६० के बाद की कविता इन्ही सीधे सादे पर खौफनाक चमत्कारों की प्रतिक्रिया है। प्रणय के प्रति बदले हुए दृष्टिकोण मे पहले की कविता जसा दुराव छिपाव नही है और न ही नारी के प्रति वह लिजलिजा व्यवहार है जिसमे देखो मत, छुओ मत का सिद्धांत काम करता है।

वास्तव मे यह दृष्टिकोण प्रयोगवाद से ही बदलने लगा था लेकिन अब पश्चिम की बीट और एग्री यगमन पीढी की तरह एक झोखलाहट इस कविता मे आ गई है। बगाल की भूखी पीढ़ी और हिन्दी मे अकविता एक रुग्ण विचारधारा से पीडित हैं। सुविमल बसाक बडे जोर शोर से रज से कुल्ला करने की बात करते हैं। मुद्राराक्षस गव से स्वीकार करते हैं कि हिन्दी मे पहली बार फँचलेदर शब्द का प्रयोग उन्होंने ही किया है। उनके इस दृष्टिकोण को केवल इसी तरह स्वीकार किया जा सकता है कि अब तक यौन-वजना ही साहित्य को घेरे रही है इस कारण यह दृष्टिकोण कुछ सीमा तक तो उचित लगता है पर जहाँ घूम फिर कर बार बार नग्नता चुने हुए अगो की बात की जाती है तो खीझ होने लगती है कि ये आसपास के सामाजिक सत्यो की ओर आँख खोलकर देखने का प्रयास क्यो नही करते।

प्रेम नाम के तथ्य को स्वीकार करना सम्मान खोना है फिर भी प्यार एक अनिवार्यता बन जाता है—

अपनी झुँझलाहट मे बसा हुआ
गर्वीला, अकिंचन
किन्तु फिर भी
सर्प-सा उभरता
सिर पर सवार
यह दुर्निवार प्यार।[1]

बार-बार विषय बनाए जाने पर भी प्यार की अनिवार्यता समाप्त नही हुई है पर वह आध्यात्मिक अर्थ खोकर भौतिक बन गया है। इसे साहस के साथ स्वीकारना है—

प्यार शब्द
घिसते घिसते चपटा हो गया है
अब हमारी समझ मे
केवल सहवास आता है।[2]

स्वाधीनता से पहले सपना गढने की वत्ति साहित्यकार की थी पर इस पीढी ने स्वप्नभग की प्रक्रिया के साथ आत्मरति का सौभाग्य भी नही पाया था। स्वाधीनता के बाद भारत की कल्पित मूर्ति के खण्ड खण्ड होने की यातना से वह अजनबी ही रहा। जो वेदना

---

१ इन्दु जैन चौसठ कविताएँ, पृष्ठ ६०
२ ममता कालिया क ख ग

उसकी अपनी है वह कृषि प्रधान भारत के औद्योगीकरण से सम्बद्ध है। जिस तेजी से यत्रो की चीख पुकार यहाँ बढ गई है उसम चारो तरफ एक भगदड-सी मच गई है। सारा आकाश तरह-तरह के तारो से कट कट कर विभाजित हो गया है। निरभ्र आकाश केवल साहित्य मे देखने-पढने को मिलता है। नगर मे रहनेवाले कवि के पास कविता करने के अतिरिक्त और भी काम रहते हैं—उसे अवकाश ही कहाँ है चाँद तारो का सौंदय देखने का। चाँद तारे दिखें तो देखे—उसके दामन मे तो उतनी ही प्रकृति आती है जितनी जाली बँधी उसकी खिडकी के हिस्से मे है। तीसरा सप्तक तक प्रकृति के मनोरम रूप कविता मे मिल जाते हैं लेकिन उसके बाद प्रकृति के उपकरण केवल प्रतीक बनकर रह गये हैं—

जल कही था नही, रेतीले थाल मे किरन एक टूटी थी
स्वण कही था नही, हिमगिरि के शिखर पर साँझ आ रूठी थी
रग कही थे नही, होकर फुहार से चिंगारी छूटी थी
मृगजल, स्वणशिखर, इन्द्रधनु साक्षी हैं
कि तम नही आलोक
एक दिन आँखो को धोखा दे जाता है।[1]

इस प्रकार हम इस साठोत्तरी पीढी का, हर क्षेत्र के प्रति दृष्टिकोण, पहले से पर्याप्त बदला हुआ पाते हैं। पर जीवन से घबराकर भागनेवाली इस कविता में षड्यन्त्र की भावना नही है। मूल्य, मान और परिप्रेक्ष्य तो अपना युगीन सदभ देखकर बदलते ही रहते हैं अत यह कहना कि सन् साठ के बाद की कविता प्राचीन का एकदम निषेध कर उन तमाम बातों को लेती है जिसे उसके पहले किसी ने छेडने का साहस नहीं किया था—एक अथ मे ठीक है, किन्तु यह निणय लेना कि इन मूल्यो मे से वास्तव मे कौन-कौन से स्थापित हो पायेंगे, कविता के प्रति अन्याय करना है। समकालीन कविता के प्रति पूर्वाग्रह मुक्त दृष्टिकोण रखना कठिन है, फिर भी इन तमाम कविताओं म जो नित नए स्वर हमे मिल रहे हैं वे सभी कविता की जीवन्तता और उसकी शक्ति के परिचायक हैं।

एक बात और, कविता मे इस सम्पूण विघटन का दोष द्वितीय महायुद्ध के सिर थोप दिया गया है, वह युद्ध, जिसने योरुप का सम्पूण रूप बदल दिया, कई देशो को नक्शे से मिटा दिया। उसका भारत पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नही पडा। अत कविता का अपने पर लगाए गए किसी आरोप को द्वितीय महायुद्ध या विदेश के किसी दशन पर मढ देना किसी भी प्रकार स्वीकार नही किया जा सकता। वास्तव म नयी कविता को जो भी परिप्रेक्ष्य मिला, वह हमारे अपने देश का परिप्रेक्ष्य था। विदेशी भार से हमारा देश स्वय इतना टूट रहा था कि यहाँ महायुद्ध का वैसा प्रभाव पडता जो हिटलर और तोजो की विजय के बाद पडता तो हम युद्ध के प्रभाव से सीधे ही सम्बद्ध रहते, किन्तु ऐसा नहीं है। हम इन तमाम विघटनकारी मूल्यों को विदेशी कहकर, देश के तत्कालीन अभिशाप को नहीं भूल सकते। विदेश का प्रभाव पडा होगा किन्तु भारतीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र म वह राजनीतिक रहा हो

---

१ कैलाश वाजपेयी सक्रान्त, पृष्ठ ६६

प्रकृति और प्रेम जैसे विषयो के प्रति इन कवियों की प्रतिक्रिया एकदम बदल गई है। इनकी दृष्टि म प्रेमिका की प्रतीक्षा, वसन्त की प्रतीक्षा और अखबार की प्रतीक्षा मे कोई मूलभूत अतर नही रह गया है। मानव के हसने-बोलने और हर शाम लौटकर अपने घर आ जाने जसे चिरपरिचित काय भी उन्हें चमत्कार जैसे लगते हैं। सन् '६० के बाद की कविता इन्ही सीधे सादे पर खौफनाक चमत्कारो की प्रतिक्रिया है। प्रणय के प्रति बदले हुए दृष्टिकोण मे पहले की कविता जसा दुराव छिपाव नहीं है और न ही नारी के प्रति वह लिजलिजा व्यवहार है जिसम देखो मत, छुओ मत का सिद्धात काम करता है।

वास्तव मे यह दृष्टिकोण प्रयोगवाद से ही बदलने लगा था लेकिन अब पश्चिम की बीट और एग्री यगमन पीढी की तरह एक बौखलाहट इस कविता मे आ गई है। बगाल की भूखी पीढ़ी और हिन्दी म अकविता एक रुग्ण विचारधारा से पीडित हैं। सुविमल बसाक बडे जोर शोर से रज से कुल्ला करने की बात करते हैं। मुद्राराक्षस गव से स्वीकार करते हैं कि हिन्दी मे पहली बार फ्रॅचलेदर शब्द का प्रयोग उन्होंने ही किया है। उनके इस दृष्टिकोण को केवल इसी तरह स्वीकार किया जा सकता है कि अब तक यौन-वर्जना ही साहित्य को घेरे रही है इस कारण यह दृष्टिकोण कुछ सीमा तक तो उचित लगता है पर जहाँ घूम फिर कर बार बार नगनता चुने हुए अगो की बात की जाती है तो खीझ होने लगती है कि ये आसपास के सामाजिक सत्यो की ओर आँख खोलकर देखने का प्रयास क्यो नही करते।

प्रेम नाम के तथ्य को स्वीकार करना सम्मान खोना है फिर भी प्यार एक अनिवामता बन जाता है—

अपनी झुँझलाहट मे बसा हुआ
गर्वीला, अकिंचन
किन्तु फिर भी
सर्प-सा उभरता
सिर पर सवार
यह दुर्निवार प्यार।[1]

बार-बार विषय बनाए जाने पर भी प्यार की अनिवायता समाप्त नहीं हुई है पर वह आध्यात्मिक अर्थ खोकर भौतिक बन गया है। इसे साहस के साथ स्वीकारना है—

प्यार शब्द
घिसते घिसते चपटा हो गया है
अब हमारी समझ में
केवल सहवास आता है।[2]

स्वाधीनता से पहले सपना गढ़ने की वृत्ति साहित्यकार की थी पर इस पीढ़ी ने स्वप्नभग की प्रक्रिया के साथ आत्मरति का सौभाग्य भी नहीं पाया था। स्वाधीनता के बाद भारत की कल्पित मूर्ति के खण्ड-खण्ड होने की यातना से वह अजनबी ही रहा। जो वेन्ना

---

१ इन्दु जैन चौसठ कविताएँ, पृष्ठ ६०
२ ममता कालिया क ख ग

उसकी अपनी है वह कृषि प्रधान भारत के औद्योगीकरण से सम्बद्ध है। जिन ट्रकों [illegible] की चीख-पुकार यहाँ बढ़ गई है उसमे चारों तरफ एक भगदड़-सी मच गई है। [illegible] आकाश तरह-तरह के तारों से कट-कट कर विभाजित हो गया है। निरभ्र [illegible] साहित्य मे देखने-पढ़ने को मिलता है। नगर मे रहनेवाले कवि के पास [illegible] के अतिरिक्त और भी काम रहते हैं—उसे अवकाश ही कहाँ है चाँद-तारों का [illegible] देखने का। चाँद तारे दिखें तो देखे—उसके दामन में तो उतना ही प्रकृति आती है [illegible] जाली बँधी उसकी खिड़की के हिस्से मे है। तीसरा सप्तक तक प्रकृति के [illegible] कविता म मिल जाते हैं लेकिन उसके बाद प्रकृति के उपकरण केवल प्रतीक [illegible] गये हैं—

> जल कही था नही, रेतीले थाल में किरन एक टूटी थी
> स्वर्ण कहीं था नही, हिमगिरि के शिखर पर साँझ था रूठी थी
> रंग कहीं थे नही, होकर फुहार से किरण छूटी थी
> मृगजल, स्वर्णशिखर, इन्द्रधनु साक्षी हैं
> कि तम नही आलोक
> एक दिन आँखों को धोखा दे जाता है।[1]

इस प्रकार हम इस साठोत्तरी पीढ़ी का हर क्षेत्र के प्रति दृष्टिकोण, [illegible] बदला हुआ पाते हैं। पर जीवन से घबराकर भागनेवाली इस कविता में [illegible] नहीं है। मूल्य, मान और परिप्रेक्ष्य तो अपना युगीन संदर्भ देखकर बदलते ही [illegible] यह कहना कि सन् साठ के बाद की कविता प्राचीन का एकदम निषेध कर [illegible] को लेती है जिसे उसके पहले किसी ने छेड़ने का साहस नहीं किया था—[illegible] है, किन्तु यह निर्णय लेना कि इन मूल्यों म से वास्तव म कौन-कौन से [illegible] कविता के प्रति अन्याय करना है। समकालीन कविता के प्रति पूर्वाग्रह-युक्त [illegible] कठिन है, फिर भी इन तमाम कविताओं में जो नित नए स्वर [illegible] कविता की जीवन्तता और उसकी शक्ति के परिचायक हैं।

एक बात और, कविता मे इस सम्पूर्ण विघटन का दोष द्वितीय [illegible] दिया गया है, वह युद्ध, जिसने योरुप का सम्पूर्ण रूप बदल दिया, [illegible] मिटा दिया। उसका भारत पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ा। [illegible] लगाए गए किसी आरोप को द्वितीय महायुद्ध या विदेश के किसी [illegible] भी प्रकार स्वीकार नही किया जा सकता। वास्तव में नयी कविता को [illegible] मिला वह हमारे अपने देश का परिप्रेक्ष्य था। विदेशी भार से [illegible] रहा था कि कहीं महायुद्ध का वैसा प्रभाव पड़ता जो हिटलर और [illegible] पड़ता तो हम युद्ध के प्रभाव से सीधे ही सम्बद्ध रहते, किन्तु ऐसा नहीं है। [illegible] विघटनकारी मूल्यों को विदेशी कहकर देश के तत्कालीन [illegible] विदेश का प्रभाव पड़ा होगा किन्तु भारतीय जीवन के प्रत्येक अंग म [illegible]

---

१ कैलाश वाजपेयी सक्रान्त, पृष्ठ ६६

या आर्थिक, सामाजिक या धार्मिक, हम जो भीतर से कहीं टूटती हुई व्यवस्था पा रहे थे—यही नई कविता को तमाम मुखौटे तोड़ने का अवसर देने के लिए पर्याप्त थी।

गुजराती नयी कविता में संवेदना, बोध और मानव मूल्य

प्राय ऐसा होता आया है कि देशभर में रच जानेवाले साहित्य में समय-समय पर जो तत्त्व विद्यमान रहते हैं उनमें समानता रहती है क्योंकि कविता या साहित्य का जन्म किसी अनोखे आकाश में नहीं होता वह बहुत कुछ इसी धरती की वस्तु रही है। इसी कारण से जीवन से निरपेक्ष रहने का दम वह नहीं भर सकती। जीवन के मूल्य बदलते रहे हैं, वे युग सापेक्ष्य होते हैं और युग परिवर्तन के साथ साहित्य में भी परिवर्तन होता है।

एक बात का स्पष्टीकरण आवश्यक है। गुजराती की नयी कविता सम्भवत आधुनिक का पर्याय है—इसी कारण वे समस्त तत्त्व जिनके आधार पर हम हिन्दी नयी कविता की व्याख्या करते हैं गुजराती कविता में अधिक नहीं मिलते। कविता का एक वर्ग छान्दस रचनाओं के साथ गीतों की भी रचना करता है। तात्पर्य यह नहीं कि जो कुछ भी अछान्दस हो वह नयी कविता हो जाएगा किन्तु यह, कि नया यहाँ केवल ढाँचा नहीं है अपितु संवेदना भी परम्परा से कटी हुई है। नानालाल सुन्दरम् और मेघाणी के गीतों को शुद्ध गीत ही कहा जाएगा क्योंकि गीत केवल हृदयतत्त्व प्रधान होता है, कोई बौद्धिक उलझाव उसमें नहीं रहता, यह बात गुजराती की नयी कविता के एक बड़े वर्ग में है जिसमें प्रकृति का केवल आलम्बन रूप लिया गया है—चाँद सुन्दर है, सूर्य प्रखर है हरी पत्ती कोमल है और इसके बाद चाँद यदि सुन्दर है तो हम कैसा लगता है, सूर्य प्रखर है तो उसकी प्रतिक्रिया क्या है और पत्ती हरी है तो वृक्ष से झर जाने की वेदना कैसी है—यह सब कुछ नहीं।

लोकगीतों के अतिरिक्त घर घर गाए जानेवाले प्रचलित गीतों की भाँति कविताओं की रचना की गई है प्रियकान्त मणियार का नया काव्य ग्रंथ—स्पर्श' और हरीन्द्र दवे के 'मौन की रचनाएँ इसी वर्ग में अन्तर्गत रखी जा सकती हैं। गीत यदि केवल छन्द में गीत होते तो भी कोई बात थी पर यहाँ उनका विषय 'यमुना तट पर खड़ी मुग्धा गोपी है जिसका घड़ा नहीं भर रहा है।[1] या फिर प्रिया के सौन्दर्य को सर्वश्रेष्ठ ऐसे बताया जाता है कि वनों में नन्दनवन के समान केवल उसी की स्मृति, उसी का हृदय उसे स्वीकार है जैसे जीवन केवल पियामिलन' के समय सार्थक होता है।[2] या फिर हाठ हँसे तो फागुन गोरी, नन झरे तो सावन, मौसम मेरा तू ही है बस, मिथ्या काल की आवन जावन।[3]

कविता को किन्हीं विषय विशेषों के वर्ग में बाँट कर उसकी छानपरीक्षा उचित नहीं रहती और कविता के प्रति इससे बड़ा अन्याय भी और कुछ नहीं होता किन्तु आज की कविता जिन विशेष सदर्भों से गुजर रही है उसमें किसी शास्त्रीय दृष्टिकोण की अपेक्षा एक सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण आवश्यक है। नयी कविता—याने वह कविता जिसका प्रारम्भ

---

१ प्रियकान्त मणियार स्पर्श, पृष्ठ ५७
२ हरीन्द्र दवे मौन, पृष्ठ ?
३ वही, पृष्ठ ३

मार्क्स और गांधी का प्रभाव उतर जाने के बाद हुआ। एक नयी काव्यधारा जिसका प्रवर्तन नही तो जिसका आरम्भ उमाशंकर जोशी के काव्य से माना जा सकता है, परम्परागत कविता के समानान्तर चलती रही।

स्वाधीनता के बाद अवसाद और निराशा की जो लहर देश भर में व्यापी उसे लोग पश्चिम के अनुकरण में किया गया फैशन मानते हैं। किन्तु यह मात्र फैशन नही है। दूर से देखने पर ये सारी भावनाएँ और उचाटपन आरोपित लगता अवश्य है, किन्तु किसी न किसी अंश में इसकी संवेदना सही है। अब तक का व्यक्ति अपने चारों ओर एक अजीब आतंक भरा वातावरण पा रहा था। अंग्रेजों का शासन, अंग्रेजी की शिक्षा, अंग्रेजी रहन-सहन, अंग्रेजी सभ्यता—अपना क्या है? केवल नाममात्र को अपने को भारतीय पानेवाला व्यक्ति विद्रोह कर उठा था किन्तु यह विद्रोह देशव्यापी विद्रोह था—सत्ता अपनाने का संघर्ष था। अन्य लोग तो लाठी सहकर चुप रह जाते थे किन्तु कवि उसी लाठी से फूटे सिरों और असहाय परिवारों की असहाय अवस्था के प्रति अधिक संवेदनशील था। उसकी कविता विरोध की कविता थी।

सत्ता हाथ में आने के बाद जब साँस लेने का अवकाश मिला तो चारों तरफ सब बदल गया था। वे मुट्ठी भर अवसरवादी जो सत्ताधारी बन गए थे, अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए सीमा विवाद, भाषा विवाद और अनेक विवादों के जाल में सबको उलझाते चले गए। कवि को लगा कि जिस डाल के सहारे वह रह रहा था, वही टूट गई है। गाँधी जब छूटे तो जमाना बेहद बदल गया था—सत्याग्रह और अहिंसा केवल किंवदन्तियाँ बनकर रह गई थीं। जिन अमीर लोगों का धन छीनकर गरीबों में बाँटने की बात चला करती थी, स्वराज्य के बाद वे ज्यादा अमीर हो गये और गरीब ज्यादा गरीब हो गया। पर कवि तो न अमीर की तरह अमीर होता है और न गरीब की तरह देशकाल से निरपेक्ष। मध्यवर्ग का होने के कारण वह उन दोनों स्थितियों के मध्य त्रिशंकु की तरह झूला करता है। वह जानता है कि केवल कलम घसीटने से रोटी नहीं मिलेगी और आज काम नही करेगा तो आनेवाले कालों में उसे भूखा ही रहना पड़ेगा। इसी से वह अपने समय के प्रति सचेत रहता है। अतीत से और बुद्ध, अशोक और गांधी की बातों से पेट नही भरता और न आनेवाले रामराज्य के सुख की कल्पना किसी तरह मदद करती है। राह केवल एक बचती है—आज कमाओ खाओ, कल की कल देखी जाएगी। वक्त उँगलियों की संधों से जान कैसे फिसल जाता है इसलिए मन भर जी लो फिर कौन पूछने आता है कि रात को नींद आई थी?

आधुनिक जीवन में आधुनिक क्या है? कमरे में जलते बल्ब? दफ्तर जाने की बाइक या स्कूटर? या फिर एक जैसे बने हुए सौंदर्यरहित माचिस की डिबिया जैसे फ्लैटस? अथवा चेहरों पर अपरिचय की नकाब पहने एक ही मकान में रहनेवाले पड़ोसी?

कहते हैं कि झूठ बोलना अधर्म है—पर झूठ बोले बिना जीवन में कदम नही बढ़ाए जाते। कहते हैं कि ईमानदार बनो—पर ईमानदार सबसे बड़ा मूर्ख समझा जाता है। कहते हैं रिश्वत नहीं लो—पर कदम-कदम पर पैसा चबानेवाले लोग आँख दिखाते रहते हैं। कहते हैं कि सबको समानाधिकार मिलना चाहिए—पर हर कोई इस कोशिश में रहता है कि कैसे दूसरे का हिस्सा हड़प लिया जाए? कैसे दूसरे की पीठ पर पाँव रखकर आगे

निकल आया जाए—यह सब दोहरापन, अन्दर और बाहर की असामंजस्यता, दोनों का अन्तर, कंधों पर पड़े सत्य, ईमानदारी और बड़े-बड़े मूल्यों के जुए का उभार फेंकने को बाध्य करता है। जो नहीं करता वह या तो बेहद हताश हो किसी अंधेरे कुएँ में मुँह छिपा लेता है या फिर कुंठित होकर आत्महत्या कर लेता है। एक मसीहा सूझ कि ईश्वर कहा है जो मृत्यु के बाद न्याय करेगा, कैसे प्रतीत हो कि धर्म भी कुछ होता है या नैतिकता भी मानदण्ड समाज के लिए आवश्यक हैं। प्रलय का आभास तभी होता है जब सिर पर छत गिर जाए अन्यथा किसे पड़ी है कि हमारे अधिक ... सने से कई लोग भूख रह जाएँगे। अपने आप सुखी हो तभी समाज के लिए काम करें वरना समाज नाम की यह चीज बन्धनों को छोड़कर हम और क्या दे सकती है? वास्तव में पहली रेखा होनी अवश्य है, पर व्यक्ति भी तो केवल ... के भरोसे जीवित है। अब अपने पर ही उसे विश्वास नहीं है तो वह किसी और पर कैसे विश्वास कर सकता है?

नए कवि को विद्रोही माना जाता है—यह शायद इसलिए कि वे अपने को भीड़ से अलग करके देखने का प्रयास करते हैं। वे उस सबको महसूस करते हैं जिन्हें भुगत कर भी हम अनजान बने रहते हैं।

सन् '५६ में प्रकाशित कविता में उमाकान्त जोशी की 'छिन्न भिन्न छू' कविता प्रकाशित हुई थी। व्यक्तित्व के खण्डित होने को पहली बार स्वर मिला किन्तु उसका अनुभव पहले से किया जा रहा था। जीवन से हर प्रकार से समझौता करने के प्रयास में वह कुछ बाकी नहीं रह गया जिसे व्यक्तित्व कहते हैं। और एक बार स्वर मिलने के बाद उसकी चेतना दूर नहीं भास्वर हो उठी। किन्तु खण्डित व्यक्तित्व की बात इतनी अधिक दोहराई जा चुकी है कि अब वह झूठ लगने लगी है। 'कवि लोक' के ३१वें अंक में रघुवीर चौधरी ने *'अछांदस कविता'* शीर्षक लेख में कविता की इस प्रवृत्ति पर काफी आक्षेप किये हैं जिससे कुछ अंश उद्धृत हैं—

( ) "ये कवि खण्डहर जैसे कल्पित अपने व्यक्तित्व को, अलग अलग कोणों से दृष्टि के बिना देखने का प्रयास करते हैं। सभी खंडित व्यक्तित्व की बात करते हैं। छिन्नभिन्नता की बात हमारे यहाँ अत्यन्त प्रिय हो गई है। कथन की दृष्टि से इन कवियों में नवीन क्या है? कुत्सित जगत् का निरूपण? कितने ही शब्दों को कविता में प्रवेश करवाने की अनुमति इन कवियों ने दे दी है। खाया हुआ शव, अस्थि पंजर सित्कार, कीड़ा, तीव्र दुर्गंध, वंध्यत्व, नपुंसकता आदि शब्द असीमित हो गए हैं।"

श्री मनसुख लाल झवेरी भी '५० से पहले की कविता को ही कविता मानते हैं क्योंकि उनके समीप नयी कविता का अर्थ यह है—

'गांधी युग में काव्य के अंतरंग और बहिरंग दोनों का महत्व था पर अंतरंग पर विशेष बल दिया गया था। गांधीयुग की ही नहीं किसी भी युग की सच्ची और ऊँची कविता का प्राण यही समन्वय होता है।

इसमें विशेष महत्व सत्य और शिव तत्व का था पर '५० के बाद कविता आकार निर्माण मात्र रह गई। काव्य का वस्तु गौण हो गया और कुत्सित दुर्भग और जुगुप्सोत्पादक व आलंबन में रुचि हो गई। पीला सूर्य—पस से भरा फोड़ा सध्या—६ग

ग्रस्त रोगी। सड़े हुए शव। शृंगार केवल स्थूल शरीर सम्बन्ध के रूप में आया है, और विप्रलंभ वासनाओं की अतृप्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।"[१]

इस वक्तव्य के पीछे एक आलोचक की नए को अस्वीकार करने की ज़िद के अतिरिक्त और कोई भावना नहीं है। कवि यदि ऐसी अभिव्यक्तियां करता है तो उसके लिए ज़िम्मेदार उसका समय है, उसका परिवेश है जो उसे बाध्य कर देता है।

ईश्वर का अर्थ अब सर्वशक्तिमान विश्वपालक नहीं है। उसके उस रूप के प्रति किसी को विश्वास नहीं है और न ही इतना अवकाश कि आंख मूंद कर अपने कष्टों का निवारण करने के लिए प्रार्थना कर सके। ईश्वर में रही-सही श्रद्धा भी समाप्त होती जा रही है—

मैं तुम्हें ईश्वर मान बैठा
यही मेरी भूल थी ?
एक सौ आठ मनके मुझे दो
उनकी माला बनाकर
उसके हर मनके से
मुझे छू गए बनावटी ईश्वर का कांटा
निकाल फेंकूंगा।[२]

ईश्वर के प्रति एक दृष्टिकोण दया का है। है कोई 'एक' जो ईश्वरत्व ओढ़कर आसमान में अकेला जा छिपा है—

आकाश की पोली दीवार के पीछे
कहां तक छिपे रहोगे ?
एक दिन
एकान्त की भयावहता
तुम्हें खा जाएगी।[३]

प्रार्थना की जाती है किसी सत्ता को स्वीकार करके, किन्तु इससे बड़ा स्वीकार और क्या हो सकता है कि अस्तित्व की भ्रांति को ही सत्य मान लिया जाए—

मालूम है कि कभी-कभी मेरे शब्द
कपूर बन गंध रूप में तेरी तरफ बढ़ते हैं

---

१ फार्बस गुजराती सभा का शताब्दी अंक—पृष्ठ २६७-३०४

२ हुं तमने ईश्वर मानी बैठो
एज मारी भूल ने ?
मने १०८ मणका तो मेळववा दो
एना माळा बनावुं त्यार जो-जो
मने स्पर्शी गयेला बनावटी ईश्वर ना कांटा
हुं काढी नाखीश

—ज्योतिष जानी पथ्थर नी दीवालो, पृष्ठ २७

३ आकाश नी पोली दीवाल पाछळ
क्यां सुधी भताई रहेशो

—आदिल

कभी मंदिर के कलश के पास
ध्वजा बन फहराना चाहते हैं

या केवल श्रुतिसुख के लिए
सदा तेरा नाम रटते हैं
तू इससे प्रसन्न रहे
और मैं
तेरे अस्तित्व की भ्रांति को
सत्य मान जीता रहूं।[1]

स्वीकार के नाम पर और कुछ नहीं है। हर ओर नकारात्मक दृष्टिकोण, हर बात का अस्वीकार ही द्रष्टव्य है। मृत्यु के विकराल रूप का जो भयंकर चित्र खींचा गया है यह कविता उससे अलग, मृत्यु को एक अवश्यम्भावी अनिवार्यता के रूप में स्वीकार करती है। मृत्यु जीवन की समाप्ति नहीं, है बल्कि एक पड़ाव है जिसके बाद जीवन की एक नई यात्रा प्रारंभ होती है। दिन डूबता है, आग सी लालिमा फैल जाती है चाँद निकलता है—डूबने उगने का यह क्रम जीवन-मृत्यु की तरह चलता रहता है—

सागर की आँखें पानी भरी
डूब गई जिसमें सौ यादें
बीतता दिन
चिता-सा धधकता, सूर्य को निहारता।
चन्द्रधारा कब्र पर ढलती है
जो कुछ हुआ वह समझा कि अभी ही
फिर जन्म लेता है—
क्या मृत्यु का जन्म बार बार होता है?[2]

प्रेम जीवन का अनिवार्य अंग माना गया है। काव्य में वर्णित तमाम प्रेम वासना रहित कोई पारलौकिक तत्त्व माना जाता रहा है जिसकी पवित्रता का ढिंढोरा बार बार पीटा गया। आज उस 'पवित्र प्रेम' की निस्सारता स्पष्ट हो चुकी है और प्रेम के नाम पर बलि हो जानेवाले जान गए हैं कि प्रेम कोई ऐसी अहमन्य वस्तु नहीं है जिसके अभाव में जिया न जा सके या जिसके लिये नष्ट होकर शहीदों की सूची में अपना नाम लिखवाना बड़ी बात हो। नयी कविता में प्रेम दो अर्थों में आया है। या तो वह किसी के साथ जुड़ी अतीत की चुकी घटना है जो कभी एक सूल बनकर याद आ जाती है। या फिर प्रेम का अर्थ केवल शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के माध्यम के रूप में लिया गया है।

बीत जाने पर जब कभी याद आता है व्यक्ति तो उलझाव या पश्चात्ताप बनकर—

मून सा उमण हुआ यन वन

---

१ मुरली ह० जोशी अस्मिता, पृष्ठ १
२ प्रियकान्त मणियार सन्दर्भ ?

देख कर लगा—
यह तो एक बला का आडम्बर—
हमारा सम्बन्ध
मूल से उखड़ा हुआ यह वृक्ष[1]

या फिर लिंगवादी कविता ही प्रेम की अभिव्यक्ति करती है जिसमें कुछ अस्पष्ट प्रतीकों और बिम्बों का आश्रय लेकर विकृत यौन भावनाओं का ही चित्रण रहता है। 'कई बार गुप्त शब्दों का प्रयोग निडरतापूर्वक किया जाता है। वहाँ 'अवचा परमोधम' के अतिरिक्त और कोई लक्ष्य नहीं है। आवश्यकता न होने पर भी निरावरण करने में संतोष पाने का फैशन बढ़ता ही जा रहा है'[2]—

रक्त में बहती आकाश योनि
शून्यता के स्तूप को ढलते हुए देखता
सूर्य से छूटा हुआ मैं
अँधेरे में आँख खोलता हूँ।
चारों दिशाओं पर स्पर्श का पर्दा पड़ा है
मौन की घाटी में उभरता
काली चीटियों का शब्द।
और पागल बन घूमता है पवन
अस्तित्व के खण्डहर में।
चन्द्र के दो टुकड़े।
छाती पर आ पड़े।
मांस का ज्वालामुखी फटा
अचानक
वासना की ठठरी खड़क उठी
स्तब्ध चाँदनी की मुस्कराहट
बन्द पलकों में चुभती रही।[3]

अपने परम्पराजनित अर्थ में कुछ भी प्रयुक्त नहीं हुआ है। परम्परा का सहज विरोध हर ओर प्राप्त हो जाता है। जो कुछ भी पुराना है प्रचलित है वह हेय है अतः नये आयाम और नये मार्ग खोजने के प्रयास में यह कविता केवल ध्वंस में विश्वास रखती है।

प्रकृति का स्वरूप साहित्य में, आलम्बन और उद्दीपन दोनों रूपों में आता है पर

---

१ मूल थी उखड़ी गयेलु वृक्ष आ
जोतो मने थातु
आ तो एक वेदा नो धगधन आपणो सम्बन्ध
मूल थी उखड़ी गयेलु वृक्ष।

—सुरेश दलाल एकान्त, पृष्ठ २३

२ रघुवीर चौधरी कवि लोक, पृष्ठ ११
३ आदिल मंसूरी सदम-२

य उद्दीपन पर ही अधिक बल रहता है। नयी कविता के लिए प्रकृति एक अजूबा होकर रह गई है। महानगर में रहनेवाला कहाँ से चन्द्रमा और सूर्य का सौन्दर्य देख सकता है? उसके लिए तो हरियाली वही होती है जो गमले में लगे फूल में होती है या मोहल्ले के मकानों के सिरों पर से दीखती, कोई हरी लकीर होती है। ऐसे में प्रकृति का जहाँ कहीं वर्णन है वहाँ एक सहज उल्लास है। पर गुजराती कविता में यह वर्णन केवल वर्णन मात्र होकर रह गया है। प्रकृति के अन्तर्गत हरी पत्ती से लेकर टील तक और आषाढ़ के पहले दिन से लेकर चिड़िया, काँटा, आलस भरी दोपहर—सभी को समेट लिया जाता है। आषाढ़ के प्रति अतिरिक्त अनुराग मिलता है—

अभ्र का स्वरूप अब्धि अमृत गया झर
अभी आषाढ़ से भरा भरा है व्योम
ग्रीष्म दग्ध मौन
सूखी हुई घास हुई हरी भरी,
छलती हैं क्यारियाँ और खेत

खुली आँख में स्वप्न जगते हैं
अपूर्व दृश्य इस धरा के लगते हैं
कल्प वृक्ष के तले यह कौन कामधेनु चरे ?[1]

प्रकृति केवल विस्मय नहीं है। उसके कुछ मोहक चित्र भी उसके अन्तर्गत मिल जाते हैं जो न किसी की स्मृति से जुड़े हैं और न केवल 'अरे!' में अभिव्यक्त होते हैं—

दूर—
पश्चिम में क्षितिज सागर में
डोंगी
स्थिर मध्य पानी में तरती है
उसमें बैठा रात्रि का मछेरा
पानी में बंसी फेंक डोरी पकड़ लेता है।

---

१ अभ्र नों स्वरूप अब्धि, अमृत गयाँ झरी
हजी अषाढ़ नी भयुं भयुं छे व्योम।
ग्रीष्म दग्ध मौन
नील नीर घास थई हवे हरी भरी,
छले छे क्यारडा नले अने खेत रे
उघाड़ सूर्य नो नरोक थाय साथ त्यां समीर वाय
तेज ने सुवर्ण भावि पाक दृष्टिए भराय,
उघाड़ी आँख माँहि स्वप्न जागतुं—
अपूर्व दृश्य आ धरा नुं लागतुं
कल्पवृक्ष नी तले शुं कामधेनु को चरे ?

—प्रियकांत मणियार स्पर्श, पृष्ठ ५

(हम फसाएँगे मछली
अचानक किसने डोरी भीतर खीची ?)
मछली धीमे से डोरी खीचती है
वहाँ तरगो पर ऊचा नीचा जल झलमल होता है
फिर न दिखे सुनहरी इस मछली की
सो गान्त हलचलें।[1]

और

थक गया मध्याह्न का सूर्य
तेज का बोझ लिए
जूही के कधे पर—
मस्तक रख शिशु सा सो गया।[2]

समस्त उलझी हुई सवेदनाओ म जो सीधा बचाव सामने आता है वह कुण्ठा की सज्ञा पाता है। कुण्ठा का अर्थ होता है जो कुद हो, हर प्रकार से अपनी रक्षा करने मे असमर्थ। बहुत स्वप्न देखे जाते हैं पर वे सब मोहभग मे परिणत हो जाते हैं—

बाग म
बडी सवेरे
आँख मीचकर चलती
हवा की ठोकर खा
भरी नीद म
किसी
पासती स्वप्न मे
खोई
नाजुक कली की
आँख खुली
कि अचानक पतझड चढ़ आया।[3]

और इसके बाद की हताशा अवश्यभावी है। हर कही से ठोकर खाकर व्यक्ति मे इतना साहस कहा बच रहता है कि दृढ होने का दम कर सके ? अपने लिए उत्तरदायी व्यक्ति जब अपने को खण्ड-खण्ड होकर समाप्त होते देखता है तो उसके पास इतना समय भी नही

१ जयन्त पाठक मजन
२ सुरेश जोशी प्रत्यचा
३ बाग मां
डेलो सवारे बसतो स्वप्न मां खोवायलो
आँख मींची चालता नाजुक कली नी
वायुनी ठोकर वागता आँख ऊघडी
भर भर नींदर मां ने अचानक
कोई पानखर आवी चढी। —आदिल मसूरी पगरव, पृष्ठ १८

होता कि अपने दुर्भाग्य पर रो सके। एक बच्चे की तरह जो कोशिश करके बिल्डिंग-ब्लॉक्स का मकान बनाता है हर व्यक्ति एक बेकार के प्रयास में जुटा रहता है। रोज, सुबह होते ही एक संघर्ष प्रारंभ हो जाता है जिसका आदि या अंत नहीं है। एक ऐसा सिलसिला जो होश संभालने के साथ प्रारंभ होता है और फिर चलता ही जाता है—सुबह से शाम, शाम से सुबह, कभी न रुकनेवाले उस पहिये की तरह जिसे हम सिर पर लिए घूमते हैं। दिनचर्या—युद्ध है पानीपत का चौथा युद्ध जो हर व्यक्ति अपनी सीमाओं में लड़ता रहता है—

घर से मैं करता हूँ कूच
आफिस की टेबल
फाइल रखा हुआ फोन और पानी का गिलास
कैसे लेता हूँ श्वास
    इसके साक्षी हैं।
    लंच अवकाश
घर का टिफिन बातचीत (वल्गर जोक्स)
शाम को घर
    श्रीमती
    परिवार
डूबता हूँ पारावार में
(बाजार के भाव जैसे मिजाज के आधार पर)
कथा कहते महराज के
एक रस स्वर जैसे दिवस से थक गया हूँ
कब होगा पूरा
यह अध्याय ?[1]

---

१ घर थी करूँ छुँ कूच
आफिस नुँ टेबल
फाइल—छेके पडेलो फोन अने पानी नो ग्लास
हुँ केम लउँ छुँ श्वास
एना साक्षी छे
लंच अवकास
घर नुँ टिफिन—वातचीत (वल्गर जोक्स)
साँजे घर
श्रीमती—
परिवार
डूबुँ पारावारे
(बजार ना भाव जेवा मिजाज ना आधारे)
कथा कहेता महाराज ना
एक धारा अवाज जेवा दिवस थी थाको गयो छुँ
क्यारे पूरो थाय
आ अध्याय ?
—सुरेश दलाल एकान्त, पृष्ठ ८१

हर कोई अपने मे ही खोया हुआ एक ही धुरी से कोल्हू के बैल की तरह एक ही परिधि म चक्कर काटता रहता है। उसकी नियति ही यही है कि आसपास सब अपने चेहरो पर अपरिचय की नकाब ओढे निलिप्त से चले जाएँ। सब परिचित चेहरे हैं पर उन चेहरो के पीछे कई रहस्य हैं। शीशे मे अपना ही प्रतिबिम्ब देखकर जो सुख मिलता है वही उन अपरिचित परिचितो से मिलता है—

इस पथ्वी पर
कैसा रूप, कैसा शोक।
अनगिनत लोग जगह जगह
पथ, विजन यहाँ वहाँ रोज मिलते हैं
एक भी परिचित नही, परिचित हैं सबके चेहरे
शीशे म अपना चेहरा देखने का सा सुख देते है मुझे।[1]

अकेलापन वरदान है—पर पीडा मरा। अपने पर से जैसे विश्वास एकदम टूट गया है। हँसना बोलना रोना सब झूठ है, म्यूजियम के किसी पुराने वस्त्र की तरह एक स्पश से भर जाने को तैयार अस्तित्व, केवल एक वचना ही तो है—

सूखे शाही तालाब-सी
वध्या मेरी वेदना।
रोता हूँ तो झूठा लगता हूँ
बोलता हूँ तो घातक लगता हू
हँसता हूँ तो दभी लगता हूँ
भारी दु ख अपने को देता हूँ
तो इद्रियाँ झनझना उठती हैं
इसी स पडा हूँ,
म्यूजियम के कक्ष मे रखे
किसी अनजान व्यक्ति के
सुनहरे किमखाबी चोगे की तरह।

---

[1] अहीं पृथ्वी लोके
कशा रूप शोके
सवलख मनुष्यो रयले रयसे
पथ, विजन, ज्यॉंत्यॉं नित मडे
अजाण्युँ एकेला, परिचित बधा ने मुख मने
अरीसा माँ भाळे निज मुख निहाळ्युँ सुख मने
—निरजन भगत ३३|११|५०, पृष्ठ

गुलाम मोहम्मद शेख चितिन

इस अकेलेपन को जब दूर करने की चेष्टा की जाती है तो वह दूर होने के बदले और अधिक भयावह हो उठता है--

चित्त शून्य
बिल्कुल हुआ लाओ इसे भर दूं।
मित्रों स गप्पें,
सिनेमा के गीत
थोड़ा बहुत कथारस
अखबार के समाचार
इसम ऊपर तक भर दू
भरूं तब तक ऐसा होता है
लाओ फिर खाली कर दू
इससे भला तो पहले का शून्य है।[1]

जिसकी शरण ली जाती है वह उपहास करता प्रतीत होता है—

जब अंतिम मित्र भी चला गया
तब मेरी दृष्टि आगन के अँधेरे म
दूर दूर क्षितिज तक फैल गई

लगा
धधकती दोपहर म
किसी गहरे कुए मे नीचे और नीचे उतरता
डोल हूँ मैं।
भ्रम से बचने को

---

१ चित्त
शून्य
खालीखम
थयुं, लाव ओने भरी दऊ
मित्रो साथे टोळटप,
सिनेमा ना गीत
नर्यो मर्यो कथारस
छापा नो कै केटलो भगार
एम भयु भारोभार
भारोभार भयु त्यारे एम थतु
लाव, पाछु खालीखम करी दऊ
एवी तो छे मन्नो पेलो सूनकार।

—दिनेश कोठारी शिल्प, पृ० २५

पानी की सतह पर अपना प्रतिबिम्ब देख
सिसकता रहा
और पानी की लहरें
मेरे सामने हँसती रही
हसती रही ।[1]

अस्तित्ववादी विचारधारा म क्षण का महत्व इसलिए है कि युद्धजनित होने के कारण जीवन की अनिश्चितता भली भाति समझी जा सकती है, पर भारतीय साहित्य पर इस विचारधारा का प्रभाव, उसकी सारी मा यताग्रो को ज्या-का-त्या आरोपित कर देन के प्रयास म दिखाई पडता है। यह विचार सही नही है कि जिस युद्ध ने योरुप का नकशा बदल दिया था जिसने पूरे-के पूरे परिवारा को तहस-नहस कर दिया था उसका प्रभाव किसी भी प्रकार भारत पर नही पडा। जो कुछ भी थोडा बहुत अवसाद या कुण्ठा आई है वह भीषण युद्ध के फलस्वरूप नही, अपितु स्वतत्रता के बाद बडे पैमाने पर हुए मोहभग के कारण आई है। हमारे लिए अस्तित्ववाद केवल एक दशन के रूप म आता है। एक नयी धारा है, इससे उसे भी बीटल्स, बीटनिक और एग्री यगमन की परम्परा मे स्वीकार कर लिया गया। कि तु गुजराती काव्य म क्षण एक पलविशेष के लिए नही आया है वह अनुभूति का एक क्षण है जिसके सुख को सचित करके चिरनिधि बनान का प्रयास सतत जारी है। यह क्षण 'नदी के द्वीप' की रेखा का क्षणवाद नही है अपितु एक विश्वास है जिसके आगे पीछे किसी तथ्य मे विश्वास का प्रश्न नही है। हर बात के बाद मन की रेत मे सिर गडाकर निविड एका त म अस्तित्व के एकातिक सुख का भोग ही लक्ष्य है।

१ ज्यारे मारो छेक छेल्लो मित्र पण अस्त थयो
त्यारे मारी नजर आमाड ना अधराये
दूर-दूर विरम जती चितिजों न रूप लीधु
मारी अदर ना बधा य शब्दो,
ऊडी ऊडी ने कोई अगोचर,
अधकार ना माला माँ भराई नव।
एक ज दिशा माँ ऊटवा लाग्या
अने त्याँ, ग्हने
आवा धीरता बपोरे
कोइ ऊ डा कुवा माँ नीच ने नीचे ऊतरतो
हु टोल होऊ
एवो भ्रम न थई वाय ते मारे
मे पाणी नी सपाटी उपर
मारु न प्रतिबिम्ब जोवा नोकियु कयु
अने पाणीना मोचा
मारी सामे हसता ज रह्यां
हसतां ज रह्यां

—अब्दुल करीम शेख तरस

विज्ञान के कंधों पर टिकी हुई यह सभ्यता व्यक्ति को कितना अधिक आत्मिक बना चुकी है। केवल सुख सुविधाओं के सामान जुटाने में अपना मन के सुख पर कहीं ध्यान नहीं जाता। हर सुख, हर सुविधा और विलास में, तमाम साधनों के बीच मन—वही शून्य खाली, संवेदना की अधिकता के कारण संवेदनाशून्य हो चुका। इन सबके बीच कहीं मन के सुख का प्रश्न यदि गलती से याद आ जाए तो एक गहरी खराश ही दिल पर छूट जाती है।

सभ्यता का चरम, क्लब की आड़ी तिरछी टेबल्स पर ब्रिज के दौर, व्हिस्की रम और बियर की झनझनाहट, बैंड का शोर जाज और पॉप म्यूज़िक का चीखता संगीत ही रह गया है। इन सबसे सम्बन्धित गुजराती कविताओं में वह दर्द नहीं है जो शहर की व्यस्तता से जाती है, वह केवल वर्णन मात्र है। पर सभ्यता से अलग जहाँ इस जीवन की विडम्बनाएँ हैं वे सफलतापूर्वक चित्रित हुई हैं। शहर क्या है? मिलों से पटा हुआ एक जंगल जहाँ नियोन की रोशनी में रात भी दिन की तरह ही प्रकाशित रहती है ऊँची-ऊँची बिल्डिंग्स पर सूरज, सिर धुनकर रह जाता है—

मिल की चिमनी में
डूब गया सूरज
एक चीख,
आघात से रोशनी टुकड़े-टुकड़े हुई।
नियोन के लैम्प्स वहाँ प्रदीप्त
तोड़कर बिल्डिंग और स्काई स्क्रेपर।[1]

सबके स्वप्न शहर में सीमेंट के हो गये हैं—सब भागते ही चले जा रहे हैं बिना समझे कि गंतव्य कहाँ है?

मैं जा रहा था कहीं
शायद घर।
मार्ग में ऊँघते
अनेक सीमेंटी स्वप्न
काँच पर बिखर गई
एक अर्जित मुस्कान
काल जागता है चौंककर
भागता ही जाता है

---

१ मिल नी चीमनी माँ
डूबी गयो सूरज
एक चीस
आघात थी आम थतु पडु पड
नियान ना लैम्प्स थी थया प्रदीप्त
तोडी दर्या बिल्डिंग स्काईस्क्रेपर।

—दिनेश कोठारी शिल्प, पृष्ठ २२

निस्सहाय कठ
वृक्ष की छाया को हिलाता
कहता है
तेरे माग के प्रकाश पर
तैरा करता है अधकार।[1]

ऐसा शहर जहाँ केवल बस, लोकलट्रेन, कारो की आवाजें डराती रहती हैं, कोशिश कर इस शोरशराबे से नजर हटाएँ तो लहराता हुआ सागर निगलने को आता है। आसमान केवल सुनहरी रेख-सा कफन के समान छतो से चिपका हुआ है। होता क्या है उसस—एकात खोजने के प्रयास मे हर रास्ता गलत लगन लगता है और तने सख्त चेहरे देखकर इतना साहस नही होता कि सम्पर्क किया जा सके—

हम दूसरो को दखते हुए
सकल समूह को भूल राह चलते हैं
पर
तुम्हारी राह विभक्त हो गई
और एकात कहाँ
कितने चेहरा पर पहरे
कितनी आँखें खीचती हैं अँधेरे से
कि एक पग तो अब चल सकूं।[2]

इन सब स्थितियो के व्याख्यान म हम इतना अवश्य पाते हैं कि ये स्थितियाँ एकदम झूठी या आरोपित नही हैं। सवेदनाओ की सच्चाई कविता की ईमानदारी से प्रमाणित हो जाती है और परम्परागत रोमानी काव्यधारा के साथ साथ यह सम्पूर्ण 'नया काव्य अपने को बनाए रखने म सफल हो सका है।

गुजराती नयी कविता पर भी प्राय वही सब आक्षेप लगाए गए हैं जिन्ह हिन्दी की नयी कविता भोग रही है। तमाम नए आदोलन को पश्चिम की नकल कहा जाता रहा है—

"१९६४ म न्यूयाक मे हुए कवि सम्मेलन के अध्यक्ष जान साईन ने कहा था कि आधुनिक कविता की स्थिति युद्ध की स्थिति है। अमेरिका म आज के नवोदित कवि का हर

---

१ रावजी पटेल कविलोक, पृष्ठ ४३

२ आपणे अन्योन्य ने जोता
सकल समुदाय ने भूली जई रस्ते पड्यॉ
पण
तमारो राह फट्यो
अने एकान्त क्यॉ
केटला चेहरा मरे पहेरा।
केटली आँखों अन्तरद्ध अध थी
के एक डगलु तो हवे चाली शक।
—हरीन्द्र दवे मौन, पृष्ठ ११

काय युद्ध के समान उग्र और गभीर है। हमारे देश म इसके अगारे उडकर आ गये हैं। युद्ध जनित छिन्नता, भग्नता और रिक्तता की चीख आधुनिक कविता म सुनाई पडती है। पर उससे कविता के प्रदेश म अराजकता फल गई।"[1]

छन्दविहीनता और छन्द सम्बन्धी सब नियमा के बहिष्कार तथा भाषा के स्वतत्र प्रयोग क प्रति भी आक्रोश-सा ही दिखाई पडता है—

पद्य का खुला बहिष्कार कर आज के कवि न लयविहीन गद्य का आश्रय लिया है। अभिव्यक्ति के पुराने साधनो को छोडकर विशिष्ट वक्तव्य नयी 'अछादस रचना करने को प्रेरित करे यह पृथक बात है किन्तु कवि द्वारा प्रयुक्त गद्य सामान्य गद्य स भिन्न होता है। अछादस या गद्य का वहन अनिवाय है, नयी कविता पढते समय ऐसा नही लगता है। टेकनीक कोई साधन नही है, कवि कम है।"[2]

कविता को स्वीकार करने पर भी कही आलोचका के मन की वह गाँठ नही खुल पाती है जो 'अछद' म लिखी गई कविता ने डाल दी है। छन्दविहीन कविता पूणत गद्य नही हो जाती है। गद्य का सामीप्य कविता को काव्यत्व विहीन नहीं कर देता है।

नयी कविता के प्रति एक आक्षेप सामान्य रूप से यह लगाया जाता है कि वह पाठक वग की चिन्ता नही करती है। सम्प्रेषण के प्रति वह सचेत नहीं रहती है। वह अपने दायरा मे सदर्भों मे सिमटी, उत्तरदायित्व से पलायन की अभिव्यक्ति है। समाज के प्रति अपने कतव्य को पूरा नही करती। वास्तव मे कवि का लक्ष्य किसी प्रकार का समाज कल्याण न कर आत्माभिव्यक्ति अधिक हो गया है और इस आत्माभिव्यक्ति मे यदि उसकी अनुभूतियाँ जनसामान्य के अनुभव से विपरीत पडती हैं तो क्या उस असामाजिक होने का दोषी ठहराया जा सकता है? धीरूभाई ठाकर की दृष्टि म—

भावक से निरपेक्ष अभिव्यक्ति की हिमायत कर उत्तरदायित्व स भागने का प्रयास कवि करता है। उसे जीवन पर ही नही समाज और सामाजिक पर भी श्रद्धा नही रही है। यह अश्रद्धा दभ की कीरती उलटबासी बन जाती है। उसक साथ तकरार नही है किन्तु उसका अतिरेक कविता के गूढाथ को अथहीन प्रलाप बना देता है—

थूकें, नग्न हो, पर कुलाँचें मारें
वस्त्र जलाएँ ठठाकर हसें पतग उडाएँ
जेल जाएँ मदिर जाएँ कच्ची मछली खाएँ

१ १९६४ मा न्यूयाक मा मळेला कविसम्मेलन ना प्रमुख आन साइन ने जाहेर कयु हतु के आधुनिक कविता नी स्थिति युद्ध नी छे। अमेरिका माँ आजे नवोदितो नो पदकार, युद्ध ना जेटलो उग्र अने गभीर छे। युद्धे पेदा करेलो छिन्नता, भग्नता अने रिक्तता ना चीस आधुनिक कविता माँ समडाय छे। पण तेना थी कविता ना प्रदेश मा अराजकता फैलाइ गई।

—धीरूभाई ठाकर गुजराती साहित्य नी विकास रखा, पृष्ठ ३९९

२ पद्य नो खुल्लो बहिष्कार जाहेर करीने आज ना कवि ए साधनो कामयाब न नीवडे अने विशिष्ट वक्तव्य नव। अछान्दस रचना करवा प्रेरे ते जुदी वात छे। कवि ए अख्त्यार करेलु गद्य नु साधन सामान्य गद्य ना करता जुदु होय छे। परन्तु अछान्दस के गद्य नु वाहन अनिवाय क बाजवा नवी कविता विशे हमणां लागतु नथी।

—वही पृष्ठ ३९९

वेश्यागृह जाएँ, चलो जिए

—रे प्रबोध पारीख

"असम्बद्ध प्रलाप जैसी इस उक्ति मे उन्माद के चिह्न स्पष्ट दिखाई देते हैं। सरलता से यह अश्लील हो जाती है। यह छिन्नभिन्नता है या रोगी मन की अभिव्यक्ति? उपेक्षित कविजनो की समाज का ध्यान खीचने की यह चेष्टा तो नही है? ऐसे कई प्रश्न पाठक के मन म आते हैं। परम्परा को तोडने निकली यह कविता पुन परम्परा म जकड दी जाए ऐसी स्थिति दिखाई देती है।"[1]

अपनी बात को सिद्ध करने के लिए जो उदाहरण दिया गया है, उसकी असम्बद्धता के विषय मे कोई सन्देह नहीं हो सकता किन्तु किसी एक उदाहरण के आधार पर समस्त कविता म अश्लीलतत्व खोजने लगना या समस्त कविता को असम्बद्ध प्रलाप की सज्ञा देना उचित नही है। गुजराती नई कविता के साथ एक कठिनाई यह है कि एक ही कवि जहाँ गीतो की भावुकता म खोया रहता है वही दूसरी ओर उसके काव्य म वे तमाम तत्त्व भी मिलते हैं जिनके आधार पर कविता के प्रति अनेक आक्षेप किये जाते हैं। गेयता और भावतत्त्व प्रधान होने के कारण काव्य का अधिकाश सुर्रियलिज्म के नाम पर लिखे जानेवाले काव्य से बहुत दूर पडता है। ठीक से व्याख्या न हो पाने के कारण कविता के मनमाने अर्थ लगाए जाते हैं और कविता अधिक उलझती जाती है।

एक तथ्य और। गुजराती की नयी कविता को मान्यता सन '५६ के आसपास मिलनी आरम्भ हुई है और उसके अन्तर्गत जो कुछ भी लिखा जा रहा है उस सबको कविता की सज्ञा देना उचित नही है, क्योकि प्रसिद्धि पाने के आतुर प्रयास म तो व्यक्ति 'घडा तोड देता है, कपडे फाड डालता है गधे की सवारी करने लगता है, उससे सभी कुछ सम्भव है।"[2]

गुजराती नयी कविता की समस्त विशेषताएँ इन पक्तियो म सिमट आती हैं—

मूल्यो के खण्डन के लिए मृत्यु का माहुरा लिए नयी कविता मद-मद मुस्करा रही है। इसकी अभिव्यक्ति मे अनेक मुश्किलें और नवीन सभावनाओं के क्षितिज उभरे है। अर्थ और आकृति का समन्वय साध कर शुद्ध कविता का स्वरूप सिद्ध करने के लिए पश्चिम म तो सघर्ष चल रहा है किन्तु हमारे यहाँ नवीन को प्रवास दिया जा रहा है। सूक्ष्म (एब्सट्रक्ट) और सक्षिप्त (ब्रीफ) कथन की ओर उसका झुकाव है। आज की रचनाओ मे अनेक रचनाएँ क्षणिक चमक वाले जुगनुओ जैसी हैं। बहुत-सी अँधेरे मे खडे वृक्ष के ठूठ की तरह है किन्तु उसमें कहीं-कही वसन्त का आभास देनेवाली कोंपलें है। काव्य पुरुष भाषा के अजायबघर मे छिपा हुआ है ऐसा मानकर तमाम नयी प्रवृत्तियो को स्नेहपूवक स्वीकार करना होगा।[3]'

---

१ धीरुभाई ठाकर गुजराती साहित्य नो विकास रेखा, पृष्ठ ३९९ ४००

२ डॉ० जगदीश गुप्त के लेख 'किसिम किसिम की कविता' से उद्धृत, धर्मयुग २९ अप्रैल, १९६८, पृष्ठ ५२

३ 'मूल्यो ना भगार वच्चे मृत्यु नु महोरु पहेरी ने ऊभेलो नवीन कविता मिक्कु हँसी रहे छे। एनी अभिव्यक्ति मा अनेक मश्केलियाँ छता नवीन शक्यताओ नी क्षितिज उघडी छे। अर्थ अने आकृति नो समन्वय साधीने शुद्ध कविता नु स्वरूप सिद्ध करवा पश्चिम मां ने मथामण चाली रहे छे त्यारे आपण आ नवीनो नो प्रवास चालु छे। सूक्ष्म अने सक्षिप्त कथन तरफ तेनु झोक छे। आज नी कविता

यह प्रवृत्ति भले ही अभी मंद है और कवि का प्रयास असम्बद्ध, बांका और टेढ़ा है, किंतु उसकी उपेक्षा या अवहेलना करने का पाप कोई भी पीढ़ी नहीं कर सकती। उसके समान जीवन द्रोह और कोई नहीं हो सकता।

जहाँ तक हिंदी और गुजराती काव्य में संवेदना-बोध और मानवमूल्य का प्रश्न है—दोनों काव्यों में पर्याप्त साम्य है।

बदलती हुई संवेदना का कारण हिंदी कविता ने, द्वितीय महायुद्ध विभाजन और स्वाधीनता के बाद की परिस्थितियों को ठहराया। गुजराती कविता भी द्वितीय महायुद्ध को विघटन का कारण मानती है—

'द्वितीय विश्वयुद्ध की गरम राख, उसका धुआँ और उसकी गंध अभी वातावरण में थी कि हमें स्वतंत्रता मिली। अविश्वास, स्वार्थ, जड़ता और भूख ने उथलपुथल मचा दी थी। हमारी स्वतंत्रता ऐसी हवा में उपजी थी। दूसरे महायुद्ध के भूखे पंजों की परछाई उस पर भी पड़ी। विभाजन हुआ और उसके साथ हुआ रक्तपात, दुराचार और बरबादी। प्रमत्त भावनाओं के खप्पर में गांधी का भोग लगाया गया। उसकी भस्म को पूजती प्रतियोगिताओं और छीनाझपटी में कमी नहीं हुई।

"इस भयंकर उथलपुथल और असीमित परिवर्तन में संवेदनशील, मननशील विधायक कवि उलझ गया था। नवसृजन की खुमारी का रोमांच उसके सामने झूठा पड़ गया था।"[1]

एक दृष्टि से देखा जाए तो हिंदी और गुजराती ही नहीं, अन्य भारतीय भाषाओं में भी जो रचना हो रही है उसमें एक सी ही विसंगतियाँ दिखाई पड़ती हैं। हिन्दी में नयी कविता का स्वर प्रायः बौद्धिक ही रहा है। मनस्तत्व जहाँ कहीं हैं—बौद्धिकता से बोझिल है, उसमें वह गीतात्मकता और भावुकता नहीं है जो पहले की कविताओं में प्राप्त होती थी। लेकिन अब यह बुद्धितत्व इतना अधिक हावी हो गया है कि साधारण वर्ग को, कविता पढ़ने से रोचक किसी अँगूठा टेक नेता का भाषण सुनना लगता है। कविता एक विशिष्टप्रबुद्ध पाठक वर्ग की अपेक्षा करती है जो सोचने विचारने के स्तर पर निश्चय ही केवल जी करता है 'प्रिये तुम्हारी अलकों में जुगनू चिपका दूं' से तादात्म्य नहीं कर पाता है। उत्तरदायित्व से वह भगना नहीं चाहता है क्योंकि जो कुछ घटता है जो कुछ बीतता है, अपने को वह, उसका अंग

मां थी घणी रचनाओ धार्मिक तरवराट करीने होलवाइ जता आगिया जेवी छे। घणा अधाल ओड़ी ने कमेला वध ना ठूठ जेवा छे। पण तेमां क्याक वसत नो प्रादुर्भाव दखाडनारी कूपलो हशे। 'काव्य पुरुष भाषा ना अजायबघर मां संताई रह्यो छे' एम मानी ने तमाम नवीन प्रवृत्तिओ धीरज थी रसपूर्वक मोणी नजरे जोवी घटे। —धीरूभाई ठाकर गुजराती साहित्य नी विकास रेखा पृष्ठ ४०१

१ बीजा विश्वयुद्ध नी गरमराख अेनो धुमाडो अने अेनी वास हजी वातावरण मां हतां त्यां ज आपणी स्वतंत्रता नो उदय थयो। अविश्वास, स्वार्थ, जडता दोड अने अकरा निवारण नी पकड मां मलमला भावो गया हता। आपणुं स्वातंत्र्य आवी हवा मां जन्म्युं। बीजा विश्वयुद्ध ना भूख्या पंजा नो ओळो ते पर हतो ज भागला पड्या, ने साथे ज थयां रक्तपात, दुराचार कल्पांत पायमाली। प्रमत्त भावना अ रा नां खप्पर मां गांधी ने भोग लेवायो। अेनी भस्म पूजतां अडसानडसी अने झूटा झूट तो चाली ज।

आवा जब्बर उथलपाथल अने बेफाम वाघाचार पलट वच्चे कवि संवेदनशील, मननशील मन विधायक कवि अमस्य छे। नवसृजन ना खुमारी ना रोमांच सामे ए कुंठो छे।

—हमिन बूच। नवी कविता मां युगनव मंजरी २५

ही समझता है । यह ठीक है कि सन साठ के बाद वे कवि का 'व्यक्ति' अपने ही मे ऐसे निकट आया है जसे घाघा आसपास से कटकर अपने ही केन्द्र मे सिमट आता है। सबके प्रति वह सचेत है किन्तु अपने ही सन्दभ मे। कविता के विभिन्न आदोलनो म 'नवगीत' ने स्वर मिलाने की चेष्टा की थी किन्तु 'नवगीत' मे गीत से भिन्न कुछ विशेष नहीं है और नयी कविता की परिधि से वह आज भी पर्याप्त दूर है ।

दूसरी ओर गुजराती कविता मे गीतात्मकता उसकी अनिवार्यता सी है। गुजरात का रास, यहा की लोकसस्कृति का महत्त्वपूर्ण अग होने के कारण, सबक मन पर एक तरह से हावी रहा है। गुजराती नयी कविता मे विषय के दो विभिन्न छोर मिलते हैं। एक छोर तो वह है जिसमे मीरा, प्रेमानन्द और अखा की मुग्धा भक्ति मिलती है नमद और झवेरचन्द मेघाणी की-सी सचेत देशभक्ति मिलती है और विषय का क्षेत्र भी मध्यकालीन काव्य के राधा, कृष्ण, रास, प्रिय आदि तक सीमित है। और उसका दूसरा सिरा उसका वह अन्त है जहाँ कविता अतियथार्थवादी (सुरियलिस्टिक) कही जा सकती है। सुरियलिज्म वास्तव म चित्रकला का शब्द है। चित्रकला के अतियथार्थवादी दृष्टिकोण का ही साहित्य रूप यदि इस कविता को माना जाए तो अतिशयोक्ति नही होगी। किन्तु गुजराती कविता मे यह बात आ गई है कि अपनी समस्त विशेषताओ के बाद भी कविया को सीमा की अतिशयता खलती नही है। समकालीन कविता मे उत्कृष्ट और निकृष्ट का प्रश्न नही उठाना चाहिए क्योंकि यह काम इतिहास का होता है। फिर भी यह कह सकते हैं कि हिन्दी नयी कविता की भाँति गुजराती नयी कविता भी पश्चिम के दाय को अस्वीकार नही करती है—वह दाय भले ही नवीन परिदृश्य का हो अथवा किसी नए चिन्तन का।

गुजराती कविता मे गीत और नयी कविता के बीच कोई सीमारेखा नही है। यहाँ छन्द का बहिष्कार नही किया गया है और केवल उसी आधार पर इसे नयी कविता न मानना सवथा दुराग्रह होगा।

'छन्द गुजराती कविता ने भी तोडा है लेकिन समग्र सर्वागीण अभिव्यक्ति के लिए सभी शक्यताओ का उपयोग कर लेने पर भी छन्द की सामर्थ्य कम पडने पर ही तोडा है। नही तो प्रियकान्त मणियार, गुलाम मोहम्मद शेख लाभशकर ठाकुर के साथ गीत शब्द का उच्चारण करने पर लगता है कि यह कविता से कुछ भिन्न चीज है जबकि गुजराती मे कविता की ही कक्षा के नवीनतम गीत मिलते हैं।'[1]

जहा तक विषय का प्रश्न है हिन्दी और गुजराती दोना ही कविताएँ एक समान परिवेश से घिरी हैं। दोना की समस्याए एक है उलझाव एक है और यदि देखा जाए तो चिन्तन का धरातल भी दोना का एक ही है और सभवत इसी कारण विषया के क्षेत्र म दोनो में कविताएँ एक ही परिधि म आ जाती हैं। अस्तित्वबोध, आत्मघमृत्यु खण्डित व्यक्तित्व, महानगर का दानव और क्षण आदि विषय नयी हिन्दी और गुजराती दोनो कविताओ मे मिलते हैं। प्रकृति के प्रति मुग्ध भाव के स्थान पर उसमे जीवन की विसगतिया देखने का भाव दोनों कविताओ म मिलता है।

१ ज्योत्स्ना मिलन नयी कविता, अक ८

सिविल लाइंस की उजड़ी दोपहर ,
धीमे से दूर कहीं बारह बजे
स्कूलों में पहुँचा बच्चों का शोर
थमी गया है नौकर दफ्तर की ओर
थम गई ससाई-सा गुमसुम घर
सिविल लाइन्स की उजड़ी दोपहर।[1]

या

मिल की चिमनी में
डूब गया सूरज
एक चील
आघात से प्रकाश हुआ खण्ड-खण्ड
नियॉन के सम्मुख सभी जले
तोड़कर बिल्डिंग और स्काय स्क्रेपर।[2]

हिन्दी और गुजराती नयी कविता केवल इसलिए नयी नहीं है कि उसकी रचना इन दिनों हो रही है, अपितु नयी वह इस कारण है कि उसने विषय और अभिव्यक्ति सभी क्षेत्रों में नयी सीमाएँ खोजी हैं। अन्तर यदि कर सकते हैं तो केवल इतना कि हिन्दी में नयी कविता एक सीमा पर पहुँचकर बंगाल की भूखी पीढ़ी और अमेरिका के बीटनिक्स से होड़ लेने लगती है और गुजराती नयी कविता प्रतियथार्थवाद को स्वीकार करने के साथ ही भावना, कल्पना और भावुकता का बहिष्कार नहीं करती है।

इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि हिन्दी और गुजराती नयी कविता में जहाँ तक संवेदना और मानवमूल्यों का प्रश्न है, यदि भाषा का अन्तर न हो तो दोनों ही कविताओं में किसी प्रकार का भेद नहीं किया जा सकता।

---

१ विजय तेलंग नयी कविता, ५-६ –
२ दिनेश कोठारी रे

नयी कविता की काव्यक्रिया

शिल्प शब्द का अर्थ निर्माण है, वह वास्तु से सम्बन्धित हो अथवा काव्य से। अन्तर की किसी भी रचना को कोई रूप देने के लिए रचयिता स्वतन्त्र होता है किन्तु जिन उपादानों को जोड़कर वह उस मानसिक कृति को एक निश्चित रूप देता है उनका महत्त्व उस कृति से किसी प्रकार कम नहीं होता। ऐसा प्रायः सम्भव नहीं होता कि एक विषय विशेष को कई ढंगों से या विभिन्न विधानों द्वारा प्रस्तुत किया जाए, और इसका कारण है रूपतत्त्व और वस्तुतत्त्व का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध। वस्तुतत्त्व और रूपतत्त्व इतने अधिक अन्तरविलम्बित हैं कि एक विशिष्ट विषय के लिए एक विशिष्ट रूप ही उपयुक्त होता है।

काव्यशिल्प से साधारणतया जो अर्थ ग्रहण किया जाता है वह काव्य की सम्पूर्ण विधाओं के भीतर अभिव्यञ्जना का वह अनुक्रम है, जो रचना के प्रारम्भ से अन्त तक कुछ विशिष्ट तत्त्वों के माध्यम से शिल्पभूत किया गया है। काव्य के रूप तथा वस्तु दोनों तत्त्वों में निहित होने के कारण 'शिल्प' शब्द को अधिक व्यापक अर्थों में ग्रहण किया जाता है। काव्य कृति के निर्माण में जिन उपादानों द्वारा काव्य का ढाँचा तैयार किया जाता है वे सब काव्य के शिल्प तत्त्व होते हैं।

'शिल्प विधि' का बोध अंग्रेजी के टेकनीक (Technique) से किया जाता है। टेकनीक का अर्थ है ढंग, विधान, तरीका जिसके माध्यम से किसी लक्ष्य की पूर्ति की गई हो। यह लक्ष्य भौतिक जीवन में किसी वस्तु अथवा मनोवांछित तत्त्वप्राप्ति से सम्बन्ध रखता है और कला के क्षेत्र में उसका अभिप्राय है सम्पूर्ण भावाभिव्यक्ति का प्रकार। कला के विभिन्न तत्त्वों अथवा उपकरणों की योजना का वह विधान वह ढंग जिसमें कलाकार की अनुभूति अमूर्त से मूर्त हो जाए। प्रत्येक कला की सृष्टि और प्रेरणा दोनों रूपों में अनुभूति और लक्ष्य मुख्य हैं जिसे वह अपनी रेखाओं और विभिन्न रंगों के आनुपातिक संयोग से अभिव्यक्त करता है, अमूर्त अनुभूति को मूर्त करता है।[1]

---

१ लक्ष्मीनारायण लाल : भूमिका—हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास

काव्य के अतिरिक्त विज्ञान की समस्त शाखाओं और क्षेत्रों में जहाँ यही टेक्नीक या शिल्प शब्द का प्रयोग होता है वहाँ इसका अर्थ किन्ही विशिष्ट तथ्यगत उपलब्धियो से होता है जबकि काव्य के क्षेत्र में इस शब्द का अर्थ बड़े व्यापक रूप में ग्रहण किया जाता है। काव्य की शिल्पविधि किन्ही विशिष्ट तथ्यो पर उतनी आधारित नही होती जितनी कि स्रष्टा की उर्वर कल्पना और मौलिक सूझ पर इसलिए कि काव्य की शिल्पविधि विज्ञान की अपेक्षा स्वच्छन्द और व्यापक है। विज्ञान उन विधियो का अक्षरश पालन चाहता है जबकि काव्य में शिल्पविधि के तथ्यो से अवगत होकर भी कवि पूर्वनिर्दिष्ट टेक्नीक का प्रयोग करने के लिए बाध्य नही है। वह हर नवीन कृति में पूर्वविदित शिल्पविधि के तत्त्वो के साथ नवीन प्रयोग भी कर सकता है।

कलाकार किसी पूर्वनिश्चित रूपरेखा के तथ्यगत आधार पर अपनी रचना भले ही न करे, लेकिन उसके दिमाग में समस्त उपादानो द्वारा निर्मित काव्य का एक धुँधला सा ढाँचा ज़रूर रहता है। शिल्पविधि के इंद्रियगत तथा विविक्त, सभी उपकरणो द्वारा अनुभूति से अभिव्यक्ति तक की दूरी में यह काय अपने आप सम्पन्न होता है। कल्पना, स्मृति, संस्कार, सौन्दर्यप्रियता सभी के समवेत प्रयास का वह उत्कृष्ट रूप रचना कहा जाता है, जिसमें शिल्प विधि के अंगो को सरलता से खोजा जा सकता है। शैली इन्ही उपकरणो में से है जो कल्पना में आए दृश्यजगत् का प्रतिनिधित्व कलाकृतियो में रूप में करती है।[1]

भाषा और नयी कविता का शब्द भण्डार

'भाषा, मानवीय विचारो और भावो का सर्वाधिक सहज, सरल एव सशक्त माध्यम है। भाषा एक स्वत प्रत स्फूर्त प्रतीक योजना द्वारा विचारो, भावावेगो तथा इच्छाओ के सम्प्रेषण का एक विशुद्ध मानवीय आयासजन्य माध्यम है।'[2]

इस प्रकार भाषा के मूलत दो काय होते हैं—विचारो, भावावेगो और इच्छाओ का सप्रेषण और हमारे मन मे उद्भूत आकारहीन विचार आदि को प्रतीको द्वारा आकार प्रदान करना जो आयासहीन नही होता लेकिन अपने सहज रूप मे मानवीय होता है।

प्रत्येक साहित्यिक कर्म मूलत मानवीय है। इस कर्म का सम्प्रेषण आयासहीन कभी नही हो सकता, प्रयास की इस विधि का सार्वकालिक और सार्वभौमिक नाम ही भाषा है।

आकारहीन विचारो को रूपायित करनेवाला यही माध्यम गद्य और पद्य दोनों ही क्षेत्रो मे भिन्न स्वरूप ग्रहण करता है। दोनो की भाषा म तात्त्विक अन्तर है। गद्य की भाषा

---

1 Rhys Carpenter The Basis of Artistic Creation in Fine Arts—page 41

2 Language and Reality part I W Marshall Urban—page 71
Language is a purely human and noninstinctive method of comm unicating ideas emotions, desires by means of a system of voluntarily produced symbol

दनन्दिन प्रयुक्त होनेवाली जनभाषा का रूप है, जबकि काव्य की भाषा रागप्रेरित भावो च्छवास जन्य और लययुक्त होती है। यही लय शब्दबद्ध होकर छन्द बन जाती है।

भाषा का अर्थ केवल शब्दो के प्रयोग से लिया जाता है, किन्तु भाषा अभिव्यक्ति का साधनमात्र नहीं है और न ही केवल शब्दो का सार्थक समूह है। भाषा के अन्तर्गत हम बिम्बन प्रतीक, प्रधानत रूढिया और वे तमाम मिथक लेते हैं जो काव्य के सही अर्थ को सम्प्रेषित करने मे सफल होते हैं। भाषा हमारी सवेदना का कथित रूप है। वह सब जो अन्तर की किन्ही सतहो म अभिव्यक्ति के लिए आकुल होता है, उन्हें अभिव्यक्ति भाषा देती है। भाषा हमारी सवेदना को एक सीमा तक नियमित और अनुशासित करती है या नही इस विषय मे दो मत हो सकते हैं पर इसमे दो मत नही हो सकते कि सवेदना को अपने अनुपम क्षेत्र का अग, हम भाषा के माध्यम से ही बना पाते हैं।

जितनी विकसित भाषा होगी जितना ही सदर्भों के अनुरूप हमारी भाषा का प्रयोग होगा, उतनी ही स्पष्टता और सम्पूर्णता के साथ हम सवेदना को समझ सकेंगे, समझा सकेंगे। यही मूल कारण भूमि है जो प्रत्येक सवेदनशील रचनाकार को गहरे स्तरो पर भाषा के सघर्ष और असतोष का अनुभव बराबर कराती है।

आज का रचनाकार किसी गहरी अनुभूति के सुनिश्चित रूप के स्थान पर उस अनुभूति को जो एक व्यापक रेंज (श्रेणी) की है, सम्प्रेषित करना चाहता है। उसका मुख्य कारण यह है कि ज्ञान और विज्ञान के विकास और पिछली कई शताब्दियो के अनुभव के आधार पर वह ध्वनियो और शब्दो की प्रकृति और सीमा को कुछ और स्पष्टता से समझने लगा है। वास्तविकता यह है कि शब्द अपने आप मे एक निश्चित अर्थ को व्यक्त न करके उस अर्थ व्यापकता के अन्तर्गत आनेवाले अनेक मिलते-जुलते भावो को अभिव्यक्त करता है।"[1]

भाषा की प्रकृति अपने आप मे अमूर्तन की है। शब्द सतत किसी मूर्त वस्तु अथवा स्थिति के अमूर्त सकेत मात्र होते हैं। इस प्रकार सारी भाषा अमूर्तन और प्रतीकन की क्रिया है।

भाषा आज वह बर्तन नही है जिसमे सारा यथार्थ भर लिया गया है, जैसाकि अठारहवी शताब्दी तक माना जाता था, वरन् अब उसकी सगति का क्षेत्र सीमित है। वह क्रिया, विचार और सवेदना के सभी प्रकारो पर लागू नहीं होती और न ही उन्हें सघटित ही करती है। शब्द की दुनिया सकुचित हो गई है।"[2]

नयी कविता ने शिल्प के क्षेत्र मे जो चमत्कारपूर्ण अन्वेषण किये हैं उनके कारण लोग उसे रूपवाद के अर्थ मे ग्रहण करने लगे हैं पर शिल्प को महत्त्व देना इस कविता का एक अश मात्र है। भाषा के प्रयोग म छायावाद के घिस गए सस्कारहीन शब्दों को छोडकर उन्होंने गम्भीर, ककश और परुष शब्दो का उपयोग किया और साथ ही लोकतत्त्वो से युक्त जनभाषा की पदावली भी अपनाई। नयी कविता की भाषा न द्विवेदीयुगीन भाषा की तरह सपाट है और न ही छायावादी भाषा की तरह बोझिल है। तत्सम शब्दो का प्रयोग वहीं

१ रामस्वरूप चतुर्वेदी भाषा और सम्वेदना, पृ० २०

2 B B C Listner George Steener The retreat from the word

हुआ है जहाँ वह अपरिहार्य है और वहाँ उसमें छायावादी काव्य की सी दुरूहता आ जाती है—

जितनी स्फीत मेरी इयत्ता झलकाती है
उतना ही मैं प्रेत हूँ
जितना रूपाकार सारमय दीख रहा हूँ
उतना ही रेत हूँ।[1]

अथवा

शेष तुम तिमिराचल में एक स्मृति—
ज्यों चुरा ली हो—
किन्हीं वर्जित पलों में पा अचानक
काल रूपी सर्प की
अनमोल, दापित, अमर
समयातीत मणि शारदेन्दु।[2]

इस दुर्बोधता का कारण स्पष्ट करते हुए अज्ञेय ने ही कहा है—

'जब जब कवि की दृष्टि का विकास हुआ है तब-तब उसकी भाषा दुर्बोध हुई है। कवि की समस्या को इस रूप में देखें कि क्या वह उतना ही सत्य कहे जितना सब समझें, या इस सत्य को भी कहे जिसे कुछ समझें तो उसकी द्विधा से सहानुभूति की जा सकेगी।'[3]

आज के कवि की दृष्टि में काव्य की और बोलचाल की भाषा में भेद किया जाना उचित नहीं है। यहाँ प्रश्न केवल बोलचाल का नहीं है, वाक्य रचना का है, अन्विति का है और आज की कविता बोलचाल की अन्विति माँगती है। और यही कारण है कि नयी कविता की भाषा काफी सीमा तक बोलचाल की भाषा के समीप है और कहीं-कहीं यह सहजता ही उसका दोष बन गई है।

नयी कविता अपने शब्दों का चयन चौराहे पर से करती है। उसमें हर प्रकार के शब्द प्राप्त होते हैं जिन्हें किसी एक हिस्से में बाँधकर नहीं रखा जा सकता। एक दृष्टि से देखें तो ज्ञात होगा कि बोलचाल के साथ ही विदेशी साहित्य और संस्कृति तथा भारतीय धर्म और संस्कृति के अनेक शब्द, जिनका पहले के काव्यों में प्रयोग नहीं मिलता, नयी कविता के शब्द भाण्डार में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किये हुए हैं।

बोलचाल की भाषा—

काली सड़कें तारकोल की

---

१ अज्ञेय आँगन के पार द्वार
२ कुँवरनारायण चक्रव्यूह—स्मृति द्वन्द
३ अज्ञेय आधुनिक साहित्य का परिदृश्य, पृ० ४२

अगारे-सी जली पड़ी थीं ।[1]

और

किसी कठोर जिस्म के वश में
पत्थर बनकर पड़े हुए शहज़ादे सा ही
यह हरहरा उठें पल झपते ।[2]

दूर-दूर से
हल्के-हल्के धाना ने रूमाल हिलाए
बाँसो मे सीटियाँ बजाए,
गलियारो मे हाँक लगाए,
मन पर, बाँहो पर, कन्धो पर
हरसिंगार की डाल झुकाए ।[3]

यह शाम अपनी मुर्दार उँगलियो से छू लेती है
दिल की धड़कन भी इतनी बेमानी
जितनी वह टिक टिक करती हुई घड़ी
जिसकी दोनों सुइयाँ टूटी हों ।[4]

विदेशी साहित्य और संस्कृति अंग्रेजी

मैं अपने ही नहीं
तुम्हारे भी सलीब का वाहक हूँ ।
जिसके आसपास
तुम्हारे प्रेत मडराते हैं ।[5]

कितने डरे हुए दिखते हैं सभी लोग
छातियों पर हाथ बाँधे, सहमे से नतमस्तक
ज्यो गिलोटिन पर चढ़ाए जा रहे हो ।[6]
आजकल बहुत स्टैंडस्टिल है

साहित्यिक ग्रामर

---

१ शकुन्त माथुर दूसरा सप्तक—दोपहरी
२ भारतभूषण अग्रवाल अनुपस्थित लोग, पृ० २४
३ केदारनाथ सिंह तीसरा सप्तक, पृ० २१६
४ धर्मवीर भारती दूसरा सप्तक, पृ० १६७
५ अज्ञेय इन्द्रधनु रौंदे हुए ये—मैं तुम्हारा प्रतिभू हूँ
६ जगदीश चतुर्वेदी प्रारंभ—नख्लहीन नगर

कोई भी चीज फिट नहीं कर रही है।[1]

तालियाँ बजाते खेत
हाँफती सड़कें
सब पागल हँसी के नीचे
एक फुफकार दबाए हुए
ईसा को सूली देकर
महत्त्वाकांक्षी लोग
उत्सव मना रहे हैं।
और सम्मन की महानता
जुए में बँधी सिर पीट रही है।[2]

लाटरी पर जाने से पहले
समाचारों को बाँट दो
आर्ट गैलरी में मृत्यु
सिगरेट पर टैक्स
वित्त मन्त्री का वक्तव्य
पानी की व्यवस्था में सुधार
ध्यान दे रही है सरकार।[3]

उर्दू

कहते हैं हमें सिर्फ अपने ही हक में
बरतना बन्द करो हमको अब दीवारों का नहीं
मैदानों का छन्द करो, हमको फलाओ जैसे किसान
फलाता है बीजों को, ठहर कर सोचना पड़ता है मुझे
शब्दों की नयी तरह धरियो को तमीजों को
यानी अब, मैं और मेरे शब्द अलग अलग
नहीं हैं, एक हैं।[4]

बहुत से तीर बहुत सी नावें, बहुत से पर इधर
उड़ते हुए आए, घूमते हुए गुजर गए
मुझको लिए सब के सब। तुमने समझा
कि उनमें तुम थे। नहीं नहीं, नहीं।

---

१ नरेन्द्र धीर प्रारम्भ—टी हाउस के इम्प्रेशन
२ फेशु प्रारम्भ—माँ के समीप दो कविताएँ
३ श्रीकान्त वर्मा मायादर्पण, पृष्ठ २३
४ भवानीप्रसाद मिश्र नयी कविता २—शब्दों का महत्त्व

उनमे कौन था । सिर्फ बीती हुई
अनहोनी और होनी की उदास
रंगीनियां थी फकत ।[1]

पुरानी लकडी के मेरे मजबूत दरवाजे पर
एक कमजोर और उभरी नसो वाले हाथो की
ताबडतोड दस्तक है ।[2]

भारतीय धर्म और संस्कृति

ये दधीची हड्डियां हर दाह मे तप लें
कौन जाने कौन दधी आसुरी संघर्ष बाकी हो अभी,
जिसमे तपाई हड्डियां मेरी यशस्वी हो ।[3]

बांझ कामधेनुएं
रंभाती हुई आइ
और मेरे चारो ओर ठहर गई
हर आंख से झांकती
वरदान के अबूझ गुहा की तरह
कल्पवृक्ष की चबाई हुई पत्तियां ।[4]

तू उडा सपाति का अभिमान लेकर
सूर्य छूने का नया अभियान लेकर
तेजमय रवि व्यास जब आया निकटतर

पख झुलसे गिर पडा हतप्राण होकर ।[5]
मैं नवागत वह अजित अभिमन्यु हूं
प्रारम्भ जिसका गर्भ मे ही हो चुका निश्चित
अपरिचित जिन्दगी के व्यूह मे फेंका हुआ उन्माद
बांधी पंक्तियो को तोड
क्रमश लक्ष्य तक बढ़ता हुआ जयनाद ।[6]

---

१ शमशेर बहादुर सिंह कुछ और कविताएं—टूटी हुई बिखरी हुई
२ अशोक वाजपेयी शहर अब भी संभावना है, पृष्ठ ६१
३ कुंवर नारायण चक्रव्यूह, पृष्ठ १०७
४ विजयदेव नारायण साही मछलीघर, पृष्ठ ३४
५ गिरजाकुमार माथुर धूप के धान— दिवालोक का यात्री
६ कुंवर नारायण चक्रव्यूह—चक्रव्यूह

लोकजीवन से गृहीत शब्द

मैंने और तुमने
चाँदी की खेती की कल्पना उरेही थी
नहीं जानते थे तब
एक दिन काला भसा अमावस की रात-सा
आएगा और इस अकुराई चाँदनी को
देखते ही देखते चर जाएगा ।[१]

कभी-कभी तो वड़े सकारे कोयल ऐसे बोले
जसे सोते मे किसी बिसली नागन ने हो काटा ।[२]

बाहे ढीली-ढाली ज्यों टूटी डाल
अगुलियाँ जैस सूखी हुई पुआल ।[३]

भोर का बावरा अहेरी
पहले बिछाता है आलोक की
लाल लाल कनियाँ
पर जब खीचता है जाल को
बाँध देता है सभी को साथ
छोटी छोटी चिड़ियाँ
मझोले परेवे ।[४]

गुजराती नयी कविता और भाषागत प्रयोग

गुजराती नयी कविता मे अभिव्यक्ति-काव्य की भाषा, शब्द, अलकार, भाव और प्रतीक आदि म जो प्रयोग हो रहे हैं उनम पारस्परिक कविता का लक्षण भी देखा जा सकता है। कविता वाणी की कला है। कवि, शब्द जसे अमूर्त और वायव्य माध्यम द्वारा अपने सवेदन को भावक तक पहुँचाता है। एक प्रकार से देखें तो काव्यसृजन की प्रक्रिया म जाने अन जाने दो बातो पर ध्यान रखा जाता है पहला अपने अनुभव को यथातथ्य और पूर्ण अभिव्यक्ति देना और दूसरा कि इस अनुभव को यथासभव उसी रूप म भावक को अनुभूत कराना। कवि और पाठक के हृदयो के मध्य अ तर कम करने के लिए प्रयास कवि का होता है—और इसी कारण अभिव्यक्ति के नए प्रतिमानो की खोज होती है, अत कवि का काय हो जाता है कि जो भाषा पाठक आसानी से समझ सके उसी का प्रयोग करे।

---

१ शम्भुनाथ सिंह माध्यम मैं—चाँदनी का कगौठ
२ धमवीर भारती ठन्डा लोहा, पष्ठ २१
३ दुष्यन्त कुमार सूय का स्वागत—इनमे मिलिए
४ अज्ञेय बावरा अहेरी—पृष्ठ १६

भाषा का प्रश्न लें तो नयी कविता मे सीधी, घरेलू और बोलचाल के लहजेवाली भाषा का प्रयोग मिलता है। ग्राम्य और अंग्रेजी शब्दो का प्रयोग केवल औचित्य की ही कसौटी मानता है। कोई भाषा स्वतन्त्र रूप से योग्य या अयोग्य नही होती पर कविता की भाषा जन व्यवहार की भाषा से पृथक ही होनी चाहिए—ऐसा कोई आग्रह नही है। कविता मे सीधी, आडम्बर मुक्त भाषा और लोकभाषा का लहजा अपनाने का प्रचलन तीसरे दशक के कवियो के साथ ही प्रारम्भ हो जाता है पर नयी कविता इस विषय मे कुछ आगे ही है। कवि अपने वक्तव्य को सीधी, बोलचाल की भाषा मे ही प्रस्तुत करता है। अन्य शब्दो मे, वह अपने सवेदन को एक ऐसा स्वरूप, एक ऐसा मोड प्रदान करता है जिसे वह बोलचाल की भाषा मे अभिव्यक्त कर सके। जहाँ औपचारिकता और दुराव के स्थान पर आत्मीयता, मन की शान्ति और प्रेम का भाव अनुभव किया जा सके।

बोलचाल की भाषा

हा, एटलु तो याद छे
के पथ पर आ हु कदी चाल्यो हतो
—तेये तमारी साथ।
पण आज ज्यारे
अही ऊभा छिए मिलावी हाथ
त्यारे थतु
के एज छे आ हाथ
जेने हेत थी झाल्यो हतो ?
हा, एज
हु अने आ पथ पण,
पण।[1]

बे पाय घरवा जेटली
मारे जगा बस जोइए
एथी वधारे तो [illegible]
क्यारेय ते रोकी नथी ने कोइये।[2]

एक सूका वृक्ष नी
डाले कूणु पादडु
स्मित करतु
पानखर ने जोइ ने।[3]

काला काला बरफ नी रात

१ सुरेश दलाल एकांत, पृष्ठ ५८
२ निरजन भगत ३३ काव्यो पृष्ठ ७६
३ आदिल मसूरी पगल, पृष्ठ ७८

बरफ नी रात मही
पोलाद नी नदी
पोलाद नी नदी कांठे
पत्थर नु वन,
पत्थर ना वन विणे
घोतरेला वाघवरन
घूघवता थीजी गया घूवड नी घूक
ऊ शांति शांति शा—[1]

विदेशी साहित्य और संस्कृति—अंग्रेजी

काफी नी गरम वराडमा
नियान प्रकाश ना किरणो
सोड ताणी ने सूइ गयां[2]

अमरत्व विना कोण जुए
माटी नी टेब्लेटो भी
आ सपाटी पर जे जे थाय छे
ते ते सघडुघ, रे
पेली सपाटी ए मीसाता सत्य नी वितथता ज छे
वितथता आ पोला[3]

आ संसारे मानवी सघा ये
एक्प्रेसो मशीने जाणे काफी-बीआं जेवा।
एक पछी एक पछी एक एम अविरत धारे सघडाये
सहुनी समान गतिविधि अफर नियति प्रति धस्ये जाय केवा।[4]

युग ना सडियेरो माँ
आज तो ऊभो छे गाँडो थई
लीओनार्डो दो सी
अने सामे मंगार माँ हसी रही छे मोनालीसा[5]

उर्दू

जंजीर माँ घुंघरू कदी जमडाय नहीं,

---

१ दिलीप कोठारी शिल्प, पृष्ठ २६
२ ज्योतिष जानी रे, पृष्ठ १२
३ सितांशु यशश्चंद्र संदम ३, पृष्ठ १२
४ रमेश जानी कविता-जून ६८, पृष्ठ ४५
५ मणिलाल देसाई क्षितिज-२, पृष्ठ २६८

रेती थी सरिता कदी बाँधी न शकाय
'आदिल' ए दिशा माँ तमे कोशिश न करो
शब्दो माँ कविता कदी बाँधी न शकाय[1]

दरियादिल हशे जे
ते पर्वतो नी पीठो पर थी
नदी ने
मारी आंखना खाबोचिया माँ
खाबकशे नहीं
ने जगाडशे नहीं
मारा मरयु पामेला अपग वसूलो ने[2]

भारतीय धर्म और संस्कृति से गृहीत शब्द

वृक्षो मने गमे छे
अरण्य माँ अडाबीड ऊमेलाँ
एक बीजाओ खमे हाथ नाखी
पवन ना प्रवचन ने डोक हलावी वगावतां वृक्षो[3]

एकदन्त राक्षस माँ खुल्ला जडमाँ जेवुँ आ घर
अगर बरछट एनी सिमेन्ट त्वचा
दाखल थता ज हीचको
चीचवातो कनवातो डाकण डचकारो
झूले एना पर हवानु प्रेत[4]

पूर्वे द्रौपदी ने आज तु
वस्त्र थई ने आवीओ ।
हावा
हे प्रभु मुज देश मा
आवी शके तो
भूख्या करोडो लोक काजे
अन्न थइने आवजे ।[5]

---

१ आदिल मसूरी पगन
२ लाभशंकर ठाकर कविता जून ६८, पृष्ठ २१
३ जयत पाठक कविता जून ६८, पृष्ठ ७
४ सुरेश जोषी कविता जून ६८, पृष्ठ ४२
५ चम्पक लाल व्यास कविता, पृष्ठ २५

सूपार्त घातक नी भीत माँ भटकातु आवारा
अगस्त्य ना पेट माँ नु अतल जल
कुम्भकर्ण नी नासिका माँ गूँगडाती हवा
दुर्योधन नी सूच्यग्र धरा
अने
अघ नी आँखो माँ आडोटतो प्रकाश
कोई ने जोया छे ?
मारा माँ ना
क्षीण थये जता
पच महाभूतो ने
घडी भर विसामो लेवो छे।[1]

प्रतीक और मिथक

हिन्दी म प्रयोगवाद का विद्रोह किसी सीमा तक जड हो चुके शब्दो और प्रतीको के प्रति विद्रोह था। अभी तक भाषा मे पर्यायवाची शब्दो के प्रयोग से आतक जमाना ही महत्त्व पूर्ण समझा जाता था। किसी व्यक्ति के विशेषणो की सूची इतनी लम्बी हो जाती थी कि किस व्यक्ति के लिए वे विशेषण हैं, यह भूल जाना ही सहज था। अनेकार्थी शब्द के प्रयोग से मस्तिष्क की बाजीगरी दिखाना श्रेष्ठ समझा जाता था। शब्द के छायागत अन्तर को समझे बिना इनके प्रयोग ने भाषा को दूषित बना दिया था और इसी वातावरण का विरोध करने की मनस्थिति म अज्ञेय ने यह लिखा था—

देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच
बासन अधिक घिसने से
मुलम्मा छूट जाता है।[2]

किन्तु गुजराती नयी कविता म इस प्रकार का विद्रोह नही दिखाई पडता। नए प्रतीक यहाँ हैं किन्तु प्राचीन प्रतीको का स्थान अब भी उनसे श्रेष्ठ है, और नयी कविता की जो थोडी बहुत आलोचना गुजराती मे प्राप्य है उसम नयी कविता को स्वीकार करने के स्थान पर उसे नकारने का ही प्रयास मिलता है। उसके नए प्रयोग, परम्परागत न होने के कारण दुर्बोध घोषित कर दिये गए, और कोई ऐसा प्रयत्न नही किया गया जिससे नयी कविता के शिल्प की क्षमता पर गभीरता और गहनता से विचार किया जाए।

प्रतीक, शब्द की व्यजनाशक्ति का प्रसार होने के कारण उसी के विशिष्ट और परि पक्व रूप हैं। कार्लाइल ने प्रतीक का लगभग इन्ही शब्दो म लक्षण निरूपण करते हुए कहा है— 'प्रतीक म भावगोपन की प्रवृत्ति के साथ भावप्रकाशन भी रहता है फलत ईपत् कथन

१ प्रवीण दरजी कविता दिसम्बर ६८, पृष्ठ १६
२, अज्ञेय तार सप्तक, पृष्ठ ७८

और मौन के सह प्रयोग द्वारा उसका महत्त्व दोहरा हो जाता है।"[1]

प्रतीक सांकेतिक रूप में अप्रस्तुत या अप्रत्यक्ष कथन की एक सांकेतिक पद्धति है। यह व्यंजनामिश्रित होने के कारण उसी की भाँति कलात्मक एवं धार्मिक दोनों संदर्भों में उन भाषा प्रयोगों एवं भाव सम्प्रेषण के अन्य साधनों से सम्बद्ध है जिनका लक्ष्य प्रत्यक्ष अथवा शाब्दिक प्रस्तुति की अपेक्षा संवेद्य सम्प्रेष्य का संकेत अथवा मर्मोद्घाटन है। इस प्रकार प्रतीकों के विषय में दो तथ्य विचारणीय हैं—प्रतीक भाषा के धर्म हैं और वे भाव या अनुभूति के प्रत्यक्ष एवं प्रस्तुत कथन के विपर्यय हैं।

आधुनिक साहित्य में प्रतीक शब्द पाश्चात्य साहित्य में प्रतिष्ठित रूप से प्रयुक्त Symbol के अर्थ में आया है। आ० शुक्ल ने इसे उपलक्षण के साथ प्रयुक्त किया है। प्रतीक का स्वरूप भारतीय काव्यशास्त्र में उपलक्षण के समीप है। पाश्चात्य दर्शन और आलोचना में प्रतीक शब्द का प्रयोग संपूर्ण अभिव्यंजना के अत्यन्त व्यापक अर्थ में भी हुआ है फिर भी अपने विशिष्ट अर्थ में यह अभिव्यंजना की एक पद्धति है। प्रतीक अपने सहज भाव में अमूर्त विचार का प्रतिरूप मात्र न होकर किसी ऐसे आदर्श विषय सौंदर्यविहीन अर्थ के मूर्तिकरण का साधन है, जिसकी अभिव्यक्ति अन्य माध्यम से असम्भव है। हिन्दी में भी प्रतीक योजना को अभिव्यंजना की एक विशिष्ट प्रणाली के अर्थ में ग्रहण किया गया है।

संक्षेप में प्रतीक विधान भावाभिव्यंजना की वह विशिष्ट परोक्ष एवं अप्रस्तुत प्रणाली है जो इन्द्रियगोचर प्रस्तुत के माध्यम से किसी इन्द्रियातीत, अगोचर एवं सूक्ष्म अर्थ की अध्यवसान रूप में सांकेतिक व्यंजना करती है। अतः प्रतीक योजना में निम्न चार तत्त्वों की अवस्थिति अनिवार्य है—१ परोक्ष एवं अप्रस्तुत कथन शैली, २ इन्द्रियातीत विषय की इन्द्रियगोचर व्याख्या, ३ प्रस्तुत से भिन्न किसी सूक्ष्म अर्थ की व्यंजना, और ४ अप्रस्तुत की अध्यवसान रूप में व्यंजना, प्रस्तुत का कथन न करके केवल अप्रस्तुत का कथन।

सामान्यतः प्रतीक अप्रस्तुत विधान में अन्तर्भुक्त हो जाते हैं किन्तु, वे उसके पर्याय नहीं हैं।

प्रतीक, संकेत चिह्न और बिम्ब

समस्त प्रतीक विशिष्ट अर्थव्यंजक संकेत या चिह्न होते हुए भी समानार्थी नहीं हैं क्योंकि संकेत स्थूल प्राकृतिक या मानवीय व्यापारों के वाचक बनकर रूढ़ हो जाते हैं अतः उनकी अर्थशक्ति अत्यन्त सीमित होती है जबकि लाक्षणिक शक्ति के कारण प्रतीक की अर्थ शक्ति अत्यन्त विस्तृत और व्यापक होती है। संकेत या चिह्न निश्चित अर्थ के द्योतक होने के कारण अभिधा के अंग बन जाते हैं जबकि प्रतीकों का तो आधार ही लक्षणा व्यंजना है।

---

1 'In a Symbol there is concealment and yet revelation heance therefore by silence and by speech acting together, comes a double significance"

Quoted by Arthur Symons—The Symbolist Movement in Literture

इसलिए प्रतीकों में संकेत या चिह्न की अपेक्षा अधिक अप्रत्यक्षता रहती है। संकेत प्रतीक की भाँति अभीष्ट अर्थ के प्रतिरूप या स्थानापन्न न होकर उसकी ओर संकेतमात्र करते रह जाते हैं।

'प्रतीक किसी अमूर्त सांकेतिक अर्थ की चित्रात्मक पुनःप्रस्तुति की पद्धति नहीं है।'[1] चित्र की भाँति प्रतीक आकृति के साम्य पर आधृत न होकर प्रभाव साम्य पर आधृत होता है। बिम्ब चित्र इस अर्थ में भिन्न हैं कि वे प्रस्तुत चित्र न होकर अप्रस्तुत का चित्रात्मक मूर्तिकरण करते हैं। अप्रस्तुत की प्रस्तुत के माध्यम से चित्रात्मक व्यंजना के कारण जहाँ बिम्ब का स्वरूप अत्यन्त स्पष्ट और इन्द्रियग्राह्य होता है वहाँ प्रतीक किसी अगोचर अमूर्त तत्त्व की सांकेतिक व्यंजना के कारण इन्द्रियगम्य नहीं होते, इसी कारण बिम्ब की अपेक्षा प्रतीकों में व्यंजना का आधार अधिक विद्यमान रहता है लेकिन बिम्बों में भी प्रतीकों की भाँति भावसंवहन की शक्ति होती है अतः निरन्तर प्रयोग की पुनरावृत्ति से बिम्ब जब सूक्ष्म संवेदन की शक्ति अर्जित कर लेते हैं तो प्रतीक बन जाते हैं।

प्रतीक अपने प्रारम्भिक रूप में मिथक होता है, जिसे पुराणकथा भी कहा जाता है जिससे कथा की प्राचीनता और पवित्रता का संकेत भले ही मिले उसके पुराण से सम्बन्धित होने का भ्रम उत्पन्न होता है।

आख्यान और लोक कहानी के अतिरिक्त लोककथा या मिथ है। लोककहानी जहाँ काल्पनिक होती है और मनोरंजन के लिए सुनी कही जाती है वहाँ आख्यान और मिथ सत्य माने जाते हैं। आख्यान का आधार किसी-न-किसी सीमा तक सत्य होता है उसे विकृत इतिहास कहना इसी बात का प्रमाण है कि उसके मूल में कोई अतिरंजित ऐतिहासिक घटना रहती है। मिथ, सत्य नहीं होता। योरप में यह सत्य की विपरीतता के रूप में प्रयुक्त होता है। मिथ और आख्यानों को हम मनोरंजन के लिए गढ़ी हुई विचित्र या विदेशी कथाएँ नहीं वरन् वास्तविक घटनाओं और अभिप्रायों का विवरण मानते हैं। किन्तु मिथ और आख्यान के सत्य में एक उल्लेख्य भेद होता है। जहाँ आख्यान का सत्य भौतिक होता है, वहाँ मिथ का सत्य आधिभौतिक। आदिम जातियों में प्रचलित वसी कथाएँ जिनमें अति प्राकृत पात्रों द्वारा घटनाओं अथवा अतिप्राकृत पात्रों द्वारा प्रभावित प्राकृत पात्रों और घटनाओं का वर्णन पाया जाता है, मिथ कहलाती हैं। ये विश्व की उत्पत्ति और इसकी विचित्रताओं की व्याख्या करती हैं तथा सुदूर अतीत में घटित बतायी जाती हैं।

'प्रत्येक' मिथ अपने अन्तिम विश्लेषण में किसी-न-किसी प्राकृतिक व्यापार की कथात्मक अभिव्यक्ति है। इस अभिव्यक्ति के आधार मानवीकरण और प्रतीकात्मकता हैं किन्तु वुण्ट और मलिनोवस्की के अनुसार प्रकृति में आदिम मनुष्य की विशुद्ध कलात्मक या वैज्ञानिक अभिरुचि बहुत सीमित है उसके विचारों और कथाओं में प्रतीकात्मकता के लिए कम अवकाश है और वस्तुतः मिथ न तो अकर्मण्य भावोद्गार है और न व्यर्थ की कल्पना

---

1 'Now a Symbol is not a picture it is a form of representation, but it is not pictorial representation'

—W M Urban Language and Reality, P, 437

निरुद्देश्य ग्रभिव्यक्ति, वरन यह ठोस ग्रौर ग्रत्यन्त महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक ध्वनित है।'[1]

वास्तव में मिथक ग्रादिम मनुष्यों की भाषा है, जिसके माध्यम से वह जीवन ग्रौर प्रकृति के प्रति ग्रपनी रहस्यात्मक प्रतिक्रियाग्रों को ग्रलौकिक कथाग्रों के रूप में ग्रभिव्यक्त करता था। सूरज का निकलना डूबना, बादलों का जमघट ग्रौर बिखराव फसलों का बीज से फलकर विस्तार पाना सब उसकी दृष्टि से ग्राश्चर्यजनक रोमांचकारी ग्रौर रहस्यपूर्ण व्यापार थे। इन व्यापारों को वह देवी-देवताग्रों, देव दानवों ग्रौर ग्रसीमित शौर्यवान व्यक्ति से सम्बद्ध कर कथात्मक फँटेसी गढ़ लेता था। वस्तुत: ग्रचेतन मन द्वारा प्रकृति के चमत्कारिक प्रभावों की ग्रनुभूति का कल्पनात्मक सृजन ही मिथक है। यह सृजन यथार्थ के प्रति सहजस्फूर्त बिम्बात्मक प्रतिक्रिया है।

युग से पहले मिथक को कोरी कल्पना समझा जाता था। फ्रायड ग्रपने नुस्खे के ग्रनुसार इसे दमित कामवासना मानते थे पर युग ने इसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए उसे सामूहिक ग्रचेतन व्यापार या 'ग्रार्केटाइप' की संज्ञा दी। इस मान्यता के ग्रनुसार मिथक व्यक्तिगत कुण्ठा से ग्रलग एक सामूहिक स्तर पर प्रतिष्ठित हो जाता है।

"मिथक की रहस्यमयता, ग्राश्चर्य ग्रौर फँटेसी के तत्त्व उसे काव्य के बहुत समीप ला देते हैं। मिथकों की रहस्यमयता धार्मिक रहस्यमयता नहीं है, बल्कि ग्रपने में पूर्ण ग्रौर तर्कातीत है। यह दूसरी बात है कि वह एक तरह की ग्राध्यात्मिकता की ग्रोर ले जाती है। मिथकीय फँटेसी ग्रौर काव्यगत फँटेसी में फर्क है। मिथकीय फँटेसी ग्रचेतन मन की सृष्टि है तो काव्यगत फँटेसी चेतन मन की। फिर भी ग्राज के मनुष्य के भीतर चिराचिर से बैठा हुग्रा ग्रादिम मानव फँटेसी के माध्यम से ही ग्रपने ग्रापको व्यक्त करता है। दिनभर खानों, दफ्तरों ग्रौर दूकानों में खपने के बाद उसे जो सपना दिखाई देता है वह बहुत कुछ फँटेसी ग्रौर ग्रादिम मिथकों से मिलता-जुलता है। इन मिथकों, फँटेसियों ग्रौर सपनों में मनुष्य को ग्रपना भूला हुग्रा छन्द ग्रौर खोया हुग्रा संगीत मिलता है।'

'ग्राज के ग्रव्यवस्थित, मूल्यच्युत, दिशाहारा, ग्रजनबी मानव का यथार्थ पहले से भिन्न हो गया है। इस ग्रवस्था को फँटेसी ग्रधिक पूर्णता से व्यक्त करती है ग्रौर मिथक विच्छिन्न भावों को क्रम देता है व्यवस्था देता है। इसी को वेद में ऋत कहा जाता है ग्रौर युग ने ऋत की सारगर्भित व्याख्या की है। ग्राज के केयास को दूर करने की दिशा में मिथकों का प्रयोग साधक सिद्ध हो सकता है, वह हमें प्रयोजनातीत ग्रौर सार्वभौम जीवन की ग्रोर लौटाने में मदद कर सकता है।

"पाश्चात्य मिथकों की तरह हमारे देश के मिथक ग्रनाविल नहीं हैं। यहाँ पर उन्हें धर्म कर्म, संस्कार ग्रौर गेरुए रंग से रंगकर देवता बना दिया गया है ग्रत: उनकी ठीक ठीक पहचान कठिन है पर इन कठिनाइयों के बावजूद साहित्य ग्रौर कलासंदर्भ में मिथकों के प्रयोग के रूप पर विचार किया जा सकता है। मिथक ग्रपने ग्रादिम रूप में उपलब्ध नहीं हैं। पुराणों में जिन मिथकों का उल्लेख हुग्रा है वे मिथकों के मूलस्थान से थोड़े से स्थानान्तरित हो गए हैं। साहित्य में प्रयुक्त होने पर उनका स्थानान्तरण यदि ग्रनिवार्य नहीं तो ग्रावश्यक ग्रवश्य

---

१ दिनेश्वर प्रसाद क ख ग—१५, मिथ का स्वरूप।

है। किन्तु इस स्थानान्तरण के बावजूद मूल मिथकों को इस तरह विकृत नहीं करना चाहिए कि वे पहचान ही न आएँ। अपनी साहित्यिक सिद्धि के लिए साहित्यकार को अपेक्षित जोड़तोड़ की छूट तो देनी होगी।"

'किसी भी देश के जीवन के गहनतम रहस्य तक पहुँचने के लिए उसका पुराण-साहित्य ही सबसे अच्छी कुंजी है क्योंकि उसमें समष्टिगत आदर्शों और जातिगत आकांक्षाओं के वे स्वप्न मिल सकते हैं जिनका कि विभिन्न व्यक्ति अपनी रुचि, दीक्षा, योग्यताओं और संस्कारों के आधार पर परिष्कार करते हैं। पुराण ही वह सांस्कृतिक इकाई है जिसमें से जीवन की बहुरूपता प्रस्फुटित हुई है।'[१]

नयी कविता में जिन मिथकों का मुख्य रूप से प्रयोग हुआ है वे हैं यम और नचिकेता (आत्मजयी), ब्रह्म राक्षस (चाँद का मुँह टेढ़ा है), कृष्ण और अश्वत्थामा (अंधायुग) कर्ण (सूर्यपुत्र के तीन मर्म कथन) तथा अभिमन्यु और चक्रव्यूह (चक्रव्यूह)।

कुँवर नारायण ने आत्मजयी में नचिकेता के मृत्युबोध को एक नए संदर्भ में प्रस्तुत किया है जिससे उपनिषद्कालीन आत्मचिन्तन और आज की आत्महत्या और मृत्यु के संत्रास में तालमेल बैठाया जा सके। आत्मजयी का नचिकेता उस पौराणिक नचिकेता का नाम मात्र है, वह पूर्ण रूप से आज के बिखरे और बदहवास जीवन का प्रतीक है क्योंकि आज मृत्यु का जो संत्रास है वह उपनिषदकालीन भारत का नहीं हो सकता। यम सत असत कर्मों के आधार पर दण्ड का विधान करने के कारण सत्कर्म के नियामक हैं। पुनर्जन्म का सिद्धांत ही मृत्यु का निषेध कर देता है। लेकिन "आज का मृत्यु संत्रास यान्त्रिक परिस्थितियों के कारण क्षणवादी जीवनदर्शन अवसरवादिता को जन्म देता है और अवसरवादिता मृत्यु को। इसमें मनुष्य मरता है क्योंकि मूल्य मरता है। मृत्यु का गहनबोध ही हमें अमरता की ओर ले जाता है अर्थात् वह हमें मूल्य सर्जना—ऐसी मूल्य सर्जना की ओर ले जाता है जो मृत्यु को अतिक्रमित कर जाए। आत्मजयी में इसी मूल्यबोध और अनासक्त जीवनावस्था को संकेतित किया गया है, किन्तु मिथकों में जो गत्यात्मकता होनी चाहिए वह इसमें नहीं है। इसमें मिथक का एक ही चेहरा प्रत्यात्मक दिखाई देता है। स्वप्न के दौरान यम से सम्बद्ध मिथक का इस रूप में प्रयोग नहीं किया गया है जो नए-पुराने बोधों को समानान्तर प्रतीति करा सके। नारकीय यंत्रणा के मिथकीय संदर्भ में आज का जीवन-बोध अपनी संश्लिष्टता से कहीं नहीं उभर पाता वह आधुनिकता-बोध को ऊपर ऊपर छू भर जाता है।[२]

आधुनिक युग के अनिश्चय, अनास्था कुण्ठा और अतिवैयक्तिकता के वातावरण ने जीवनमूल्यों को विघटित करने में योग दिया। युद्धजीवन के प्रति अनिश्चय की भावना ने क्षणवादी दर्शन को जन्म दिया भोगवादी तृष्णा को बढ़ावा दिया। स्वतन्त्रता के बाद तृतीय महायुद्ध की आशंका विध्वंसक अणु अस्त्रों के निर्माण परीक्षण की होड़, विश्व स्तर पर पारस्परिक तनातनीपूर्ण वातावरण में आस्था और मूल्यों के विघटन और बिखराव की समस्या सामने आई जिसे अंधायुग के माध्यम से भारती ने प्रस्तुत किया।

---

१ अज्ञेय त्रिशंकु, पृष्ठ ४५

२ डा० बच्चनसिंह धर्मयुग ७ जनवरी, १९६८, पृष्ठ १२

वतमान युद्ध सस्कृति की विकृतियो, असगतियो पर ध्यान केंद्रित करनेवाली इस रचना मे पौराणिक काल की कथा को बडे उपयुक्त ढग से चुना गया है। अधायुग की कथा है 'क्या ज्योति की है अधो के माध्यम से'। बिखराव टूटन और अधेपन के बीच भी मानवीय मूल्यो की प्रतिष्ठा द्वारा जीवन प्रक्रिया के प्रति उदबोधनात्मक दृष्टि रखने के कारण ही अधायुग ज्योति की कथा है। पौराणिक आख्यान को लेकर कवि ने अपने युग के व्यापक विक्षोभ को मतमथन प्राप्त गहरी दृष्टि से उभारा है।

भारतीय सस्कृति की तमाम विकृतियो के चित्रण के बावजूद महाभारत को भारतीय सस्कृति का विश्वकोष कहा जा सकता है। महाभारत के पात्रो के साथ जो कथाए चलती हैं वे उन्हें मिथक बना देती हैं। अधायुग के धृतराष्ट्र, अश्वत्थामा, सजय, युयुत्सु आदि अपने नाम और काम दोनों से मिथक हैं। स्मरण रखना चाहिए कि ये न आदिम मिथक हैं और न उपनिषदकालीन हैं। इन्हें ह्रासो मुखी भारतीय सस्कृति की फलश्रुति कहा जा सकता है। इसलिए उन्हे आज की ह्रासोन्मुखी मूल्यहीन सस्कृति से सार्थक ढग से सदर्भित किया जा सकता है।

मुक्तिबोध का ब्रह्मराक्षस लोकमिथक है। वह टेरर का प्रतीक है, जो युगीन ट्रजेडी का बोध देता है और मूल्यो के अन्त सघर्ष को उभारता है। वयक्तिक दृष्टिकोण देकर इसे व्यष्टि और समष्टि दोनो की ट्रजेडी का प्रतीक माना गया है। लेकिन केवल प्रतीक मिथक नही है। यदि ब्रह्मराक्षस के मिथकत्व की ओर ध्यान दिया गया होता तो बहिरन्तर का 'टेरर' और भी प्रभावशाली ढग से चित्रित हो सकता था।

नयी कविता म कुछ 'नया कहने' कुछ 'नया देने' की भावना इस कदर वेगवती होती जा रही थी कि तमाम अनछुए प्रतीको, मनगढ शब्दो और अग्रेजी से गहण किये हुए सदर्भों की भीड-सी लग गई थी। नयी कविता मे तेजी और गति का आभास इन प्रतीको द्वारा ही मिलता है। हिन्दी की नयी कविता ने सदर्भों से प्रतीक तो बडी सख्या म विकसित किये लेकिन उन प्रतीको को गहरे अथ से सपृक्त कर सकने मे असफल रही। उसका कारण सतत आतरिक निष्ठा का अभाव अनुमानित किया जा सकता है। पर साथ ही प्रतीको का आवश्यकता से अधिक प्रयोग भी कारण हो सकता है। इन बहुसख्यक प्रतीको ने नयी कविता का जितना अहित किया है उतना शायद किसी अय स्थिति ने नही। वास्तविक अथ सपृक्ति के अभाव मे इनमे से अधिकाश प्रतीक मात्र कथानक रूढियाँ बनकर रह गए हैं, और ऐसा लगता है कि हिन्दी कविता म ढेर-के-ढेर बौने, चक्रव्यूह, नारगी के छिलके, फौजी बूट, हिमालय और न जाने क्या-क्या डूब उतरा रहा है।"[१]

प्रतीक जीवन के सभी क्षेत्रो—इतिहास, धम, पुराण, समाज, राजनीति और प्रकृति से ग्रहण किये जाते हैं। धम, इतिहास और पुराण सस्कृति से सम्बंधित हैं और नवीन दृष्टियों के अनुसार इनके ग्रहण मे नवीनता आ जाती है।

---

१ रामस्वरूप चतुर्वेदी भाषा और सवेदना, पृष्ठ ६६।

पौराणिक और धार्मिक प्रतीक—

बाँधना प्राणो से मुक्त प्राण
है बलयज्ञ का सविधान ।[१]

यह त्रिमूर्ति चलती आती मन के कूलों पर
अपने श्यामल गौर चरण से पावन करती
वर्षों, सदियों, युगों-युगों के इतिहासों को ।[२]

कोई कहता है, योगिराज शिव को भी मुग्ध करने वाली
तपस्विनी वेश में देवी पार्वती ही सर्वसुन्दरी थी,
कोई कहता है सोलहसिंगार सहित माँ जानकी ही
सर्वसुन्दरी थीं, जिनके रूप पर नारियाँ भी ईर्ष्या छोड़ मोह गईं ।[३]

ऐतिहासिक प्रतीक—

लाल कोहेनूर गिरते मृत्तिका में
उलटते हैं एक क्षण में तख्त ताऊसी हजारो ।[४]

यूनानी मुनि प्लेटो की मुद्रा में बैठे समय सनातन
राइन के जलकण्ठों में गेटे ने गाया
और हिटलरी फौजी बूटों ने कुचला डयूब लहर को
संगीनों से कभी नहीं गेहूँ उगता है

.. ..

किन्तु आज तो शस्य श्यामला इस धरती पर
फसल जल रही, मनुष्य मर रहा,
कलकत्ते के फुटपाथों पर
मनुज खून से लथपथ डूबा अपनी सारी
संस्कृतियों से ऊब-ऊब
आसमान का गट्ठर बाँधे, चला आ रहा
पूर्व क्षितिज में ।[५]

---

१ प्रभाकर माचवे तार सप्तक, काशी के घाट पर
२ गिरिजाकुमार माथुर तार सप्तक, पृष्ठ ४५
३ मदन वात्स्यायन तीसरा सप्तक, पृष्ठ १५४
४ गिरिजाकुमार माथुर नाश और निर्माण—कबीर
५ नरेश मेहता दूसरा सप्तक—समय देवता

सामाजिक, वज्ञानिक और राजनीतिक प्रतीक

(कार्तिक की एक हँसमुख सुबह ।
नदी तट से लौटती गगा नहाकर
सुवासित भीगी हवाएँ
सदा पावन
माँ सरीखी
अभी जसे मदिरो म चढाकर खुश रग फूल
ठण्ड से सीत्कारती घर म घुसी हों,
और सोते देख मुझको जगाती हों—
सिरहाने रख एक अजलि फूल हरसिंगार के,
नम ठण्डी उँगलियो से गाल छूकर प्यार से,
बाल बिखरे हुए तनिक सँवार के [1])

वक्तव्यों, दुघटनाओं, उद्‌बोधनो, आदेशों
और लम्बी व्याख्याओं से भरे हुए
अखबार के इस गटठर को कबाडी के हाथ बेच देने के बाद
मैं फिर अकेला, निरस्त्र
सामना करता हूँ भविष्य का ।[2]

सावधान ग़लतफ़हमी म न रह जाना
हम सिफ धरातल पर नही हैं
हम सिफ तुम्हारी 'पार्लमेंट' की फ़र्श पर नहीं हैं

ये 'वोट' और विधान नही हैं हमारे विधाता
हम दो टूक परमाणु के पार की
आगामी दुनिया के अनपहचाने रास्ता ।[3]

एटम और उदजन बम हैं नभगामी महलों के कर मे
चाह रहे जो सृष्टि धरा को केवल हिरोशिमा कर देना
चढ़ चले जीतने सिंधु भयकर स्टीमर
बारूद और गोला के काले पहाड ।[4]

---

१ कुँवर नारायण परिवेश हम तुम, पृष्ठ ५८
२ विजयदेवनारायण साही मछलीघर, पृष्ठ ८७
३ धारेन्द्रकुमार जन धमयुग, २ नवम्बर ५८
४ गिरिजाकुमार माथुर धूप के धान पदिृण

प्राकृतिक प्रतीक

प्रकृति से गृहीत प्रतीकों का दो रूपों में प्रयोग हुआ है। एक तो जहाँ शुद्ध प्रकृति चित्रण में मानवीकरण किया गया है और दूसरा प्रेम कविताओं में। वैसे भी सौन्दर्य चित्रण रूप योजना और नयी कल्पनाओं के आयोजन में प्रकृतवर्ग के प्रतीकों का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है—

बादल के पाल तान,
दिन के व्यापार बाद,
जाता था दूर देश
लाखों का माल लाद।
साँझ के कगारों से
टकरा कर टूट गया
सोने का वह जहाज
पानी में डूब गया।[1]

शमशेर की 'सलोना जिस्म' प्रकृति के प्रतीकों से भरी हुई एक ऐसी ही कविता है—

शाम का बहता हुआ दरिया कहाँ ठहरा।
साँवली पलकें नशीली नींद में जैसे झुकें
चाँदनी से भरी भारी बदलियाँ हैं,
ख्वाब में गीत पेंगें लेते हैं
प्रेम की गुइयाँ झुलाती हैं उन्हें
उस तरह का गीत, वसी नींद वैसी शाम सा है
वह सलोना जिस्म।[2]

सूर्यास्त का एक चित्र है—

मार बिजली की कटारी
भर गए बादल
टपकते खून से धरती नहाई
रंग गया साहित क्षितिज का आसमान।[3]

गुजराती नयी कविता और प्रतीक

पुराने प्रतीक और प्रतिमान बदलती हुई दुनिया और विकसित होती हुई काव्य भावना के अनुकूल नहीं पड़ते। आज दुनिया बहुत जटिल हो गई है और कवि चित्त भी अधिक संकुल हो गया है। जीवन मूल्य और जीवन की रीति बदल गई है, अतः नए प्रति

१ कुँवर नारायण : परिवेश : हम तुम, पृष्ठ ४५
२ शमशेर बहादुर सिंह : कुछ और कविताएँ, पृष्ठ ४५
३ भारतभूषण अग्रवाल : ओ अप्रस्तुत मन, पृष्ठ ८४

रूप और अभिव्यक्ति की नयी रीति भी कविता के लिए आवश्यक है। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि पुराने प्रतीकों से नवीन भावों की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। समर्थ कवि प्राचीन प्रतीकों में नवीन अर्थ की प्रतिष्ठा कर देता है।

आधुनिक जीवन की अव्यवस्था, अरक्षितता और भागदौड़ को व्यक्त करने के लिए प्रधान रूप में तो कवि को नए प्रतिरूप ही नियोजित करने पड़ते हैं। एक अर्थ में आज का युग अनिद्रा, अव्यवस्था और चंचलता का युग है। आधुनिक संस्कृति की तमाम छटपटाहट को राजेन्द्र शाह ने 'भूलेश्वर की रात' में भली भांति अभिव्यक्त किया है। भूलेश्वर मानो मनुष्य की भीड़ से खलबलाती, शोर भरी दुनिया का प्रतीक है—जहाँ बिना जाने आधी रात बीत जाती है। कवि 'छोडी नहीं वे रडता बिडाल' से लेकर अपनी नींद को 'अमी बाजारे करी जाये प्रेम, जेवी न माडन' कहकर आधुनिक सभ्यता की ओर इंगित कर सकता है। सारी रात जागकर बिताने के बाद बड़ी सुबह घण्टी बजाकर अखबार वाला टाइम्स दे जाता है—इसका उपयोग कवि ने इस प्रकार किया है—

टाइम्स
तारीख नयी
नया युग [1]

काव्य में योजित प्रतीक में जब कवि की संवेदना का एक अंश ही अभिव्यक्ति पाता है तो काव्य के अनुकूल होता है। कवि कितनी बार प्रतीकों के रूप में प्रयुक्त वस्तु को ही वर्ण्य विषय बनाकर, समग्र संघटना से ही ध्वनि रूप में काव्यार्थ को स्पष्ट करता है।

कविमन की संवेदना, अनुभूति और जो भावप्रतीक के रूप में अभिव्यक्ति पा लेते हैं उसमें स्वाभाविकता आ जाती है। किन्तु कवि जब अपने भाव या विचार को व्यक्त करने के लिए प्रतीकों का उपयोग करता है तो उसमें कृत्रिमता आ जाती है और काव्यत्व बिगड़ जाता है, कारण यह है कि इस प्रकार के प्रयोग में कवि का अनुभव और उसके माध्यम प्रतीक में अभिन्नता नहीं हो पाती।[2]

पौराणिक प्रतीक

नी आख माँ आवासा—
(छटाँ वादळाँ कालाँ अने धार्णा छवायुं
वीर पर दहता सूरज नुं तेज)—तोडय,

---

१ राजेन्द्र शाह ध्वनि, पृष्ठ ११६

२ "Thinking in images, becomes the test of poetic utterance, only what has been conceived in this sensuous anti-discursive fashion is authentically poetry Though one suspects that what often happens is that the poet thinks like anybody else and then finds images in which to clothe his reflection"

—Graham Hough—Encounter, Oct. '57

हाथ वाडया ओशी के शिर—
(बाण शय्या पर सुतेला भीष्मनु)—स्थिर[1]

राम ना चरणस्पर्श
मूक शिला ए धरेल रूप
सती अहिल्या नु
त्यार थी राम ना पादपदम
बार बार थाय प्रक्षालित
मुक्ति ना प्रयासे।[2]

मारूँ मानो तो
आपणे रावण रावण रमीए
कहेशो तो भला,
दश ने बदले बीस माथा
आपणे सरजी दईशु—
पण एक बार तो
रावण रावण
रमीने ज जपीए[3]

सामाजिक राजनीतिक प्रतीक

दरवाजो खूले छे भीत नी आरपार छे सूरज तेमा
सामडु छ लाकडानी खुरशी नी पाँखा ना फफडाट
लोखंडी छत पर
हवा मां ऊडी रहा छे अदश्य पक्षीओ
स्तब्ध थई गया छे लोका, पुल स्टेशनो।[4]

'मिल नी चिमनी माछलीये माछलीये ऊपडे बीडाय
हाथी नां दाँतो थाचो न शहेर अनी झीणो झीणो
आँसो जेवु थाय[5]

'शणगावेल कूणा वी
विटामीन विषतणा

१ हसमुख पाठक कविताएँ, २७, ५८, ५९, पृष्ठ ८६
२ सुजाता प्रियवदा कविलोक ६३, पृष्ठ १४
३ ज्योतिष जानी पीछा नी दीवालो, पृष्ठ २४
४ प्रबोध पारीख कविलोक ३१, पृष्ठ ६
५ मनहर मोदी क्षितिज ७ १, पृष्ठ ३

सावो, मने तेनी घणी खप छे,
ग्रहो पीनहृम मां फूबत मृत्यु ने मणु छु"[1]

टन् टन् टकोरा सात,
ऊगता सूय साथे दोवहेड।
टी टेबल
मालवो, पत्नी पिता जी सग मां
सिलोन नी छाया नीचे
इधर उधर नी खाटी मीठी बात[2]

ब्रिटानिया। एटमबम फोड्यो ?
पृथ्वी परे श्रेष्ठ जन तुं चार सौ
वर्षों थकी ने तुज भव्य वारसो
सत्कार नो, सयम केम छोड्यो ?
तारी स्वय सिद्ध हती महत्ता,
ते भय जेवो मय केम नर्यो ?
मा राष्ट्र नो प्रेम नथी, ग्रह नर्यो ?
स्वमान नु नाम, चहे तु सत्ता।[3]

प्राकृतिक वग से गृहीत प्रतीक

गुजराती नयी कविता मे प्रकृति से लिए गए प्रतीक अन्य क्षेत्रो से गृहीत प्रतीको की अपेक्षा काफी अधिक हैं—

महाकाश—
छे प्राथना नुं मदिर
वृक्ष
लता, तृण
स्तभ नी जेम
स्वीय आत्मनिवेदन मां
छे अचल।[4]

हिल्लोल तो
व त थकी फूल खयु धूलि मां

१ अब्दुल करीम शेख रे ५, पृष्ठ १६
२ दिनेश कोठारी शिल्प, पृष्ठ १५
३ निरंजन भगत ३३ काव्यो, पृष्ठ २३
४ सुजाता प्रियवदा कविलोक ५४, पृष्ठ २

हवा हवे हिजराय ।[1]

बाग माँ
व्हेली सवारे
आँख मीची चालता
वायु नी ठोकर वागता
भर नीदर माँ
कोई
वसती स्वप्न माँ
नाजुक कली नी
आँख ऊघडी
ने
अचानक
पानखर
आवी चडी ।[2]

मूल थी ऊखडी गये लु वृक्ष आ
जोता मने थातु
आ तो वेलानाघटाघन आपणो सबध
मूल थी ऊखडी गयेलु वक्ष ।[3]

बिम्बों का ससार और यथार्थ की चेतना

आधुनिक साहित्य मे बिम्ब को 'इमेज' के पर्याय रूप मे लिया गया है। भारतीय वाङमय मे इसे बिम्ब प्रतिबिम्ब रूप मे ग्रहण किया गया है। इमेज का कोषगत अर्थ है मूतरूप प्रदान करना, चित्रबद्ध करना प्रतिबिम्बित करना।[4] पाश्चात्य वाङ मय मे इमेज का प्रयोग अधिकाशत तीन सदर्भों मे उपल ध है—मनोवज्ञानिक, सौंदयशास्त्रीय और कलात्मक सदभ। सौंदय तत्त्व के कलामात्र का अनिवाय और मूलभूत तत्त्व होने के कारण सौंदयशास्त्रीय और कलात्मक सदर्भों म तो बिम्ब विषयक धारणा बहुत कुछ मिल जाती है लेकिन मनोवज्ञानिक सदभ म बिम्ब के जिन तत्त्वों का उदघाटन किया जाता है, वे उससे भिन्न हैं। कारण स्पष्ट है—सदभ तथा परिवेश के साथ ही साथ मूल तत्त्वो म बलावल का केन्द्रबिन्दु भी सहज ही स्थानान्तरित हो जाता है, लेकिन, पर्याप्त वभिन्य होते हुए भी उनम इमेज के आधारभूत

१ दिनेश कोठारी शिल्प, पृष्ठ २०
२ आदिल मन्सूरी पगरव, पृष्ठ ७८
३ सुरेश दलाल एकान्त, पृष्ठ २३
४ A Shorter Oxford Dictionary Vol I, P, 958 110—figure, portray to reflect, mirror

बिम्ब है। आलोचकों ने बिम्ब को कविता का अनिवार्य अग मानते हुए प्रत्येक कविता को एक बिम्ब कह दिया है। विशिष्ट अर्थ म बिम्बविधान भाषा के शाब्दिक प्रयोग से भिन्न उसका आलकारिक प्रयोग है।

वास्तव म 'बिम्ब उपमा, रूपक आदि सादश्यमूलक अलकारो, प्रतीक, चित्र एव विचार चित्र से भिन्न भाषा का आलकारिक प्रयोग होने के कारण कवि के अभिव्यजना शिल्प का एक विशिष्ट उपकरण है।

अप्रस्तुत रूप मे सयोजित होने पर भी यह अप्रस्तुत योजना का पर्याय न होकर उसका ही एक विशिष्ट रूप है।

बिम्ब अभिव्यजना शिल्प का एक अत्यत व्यापक उपादान है जिसकी सजना करते समय कवि अनेक प्रकार की शिल्पविधियो को प्रयोग मे लाता है। अत भाषा के इस आलकारिक प्रयोग विशेष तथा अन्य सामान्य वाणी के अलकारो म अगागि भाव का सम्बन्ध है।

बिना चित्रो, प्रतीको रूपकों और बिम्बो की सहायता के मानव अभिव्यक्ति का अस्तित्व प्राय असभव है यहा तक कि जब हम शुद्ध विचार के क्षेत्र मे पहुँचकर गभीर तत्त्वदर्शन की चर्चा करते है तब भी हमारे उपचेतन म कही न-कही उन विचारो के वर्णचित्र उभरते मिटते रहते हैं। बिम्ब निर्माण की यह प्रक्रिया पूरे मानव जीवन म फली हुई है।

प्राचीन काव्य म जो स्थान चरित्र का था—आज की कविता मे वही स्थान बिम्ब अथवा इमेज का है। इसके कई कारण हो सकते हैं सबसे प्रत्यक्ष कारण यह है कि बिखरी हुई अनुभूतियो और जटिल सवेदना को रूपायित करने के लिए चरित्र निर्माण का माध्यम कथा कहानी के लिए उपयुक्त हो सकता है पर काव्य के अपेक्षाकृत सीमित कलात्मक सगठन के भीतर वह सरलता से नही आता। नयी कविता पर जो अस्पष्टता और दुरूहता का आरोप लगाया जाता है उसका सबसे बडा कारण है उसमे सर्वथा नये अपरिचित सघन बिम्बो की अधिकता जिसके लिए अधिक सस्कृत और सहृदय वर्ग की आवश्यकता होती है।[2]

बिम्ब शिल्प का अनिवार्य अग माना जाता है किन्तु नयी कविता क सदर्भ मे वह केवल अलकरण का माध्यम नही है। नयी कविता अनुभूति के छोटे छोटे खण्डो की कविता है अत उन छोटे छोटे खण्डो की सक्षिप्तता और क्षणिकता को उभारना बहुत कुछ बिम्बन की समर्थता पर निर्भर करने लगता है। नयी कविता म बहुत से ऐसे बिम्बो का प्रयोग हुआ है जिन्हे नयी कविता का मौलिक प्रयास कहा जाएगा बिम्बो की अधिकता भी नयी कविता म है—किन्तु वह आरोपित और अनावश्यक नही है उनकी सार्थकता और अनिवार्यता निर्विवाद है। वास्तव म नयी कविता म बिम्बो की जो बहुलता है वह मात्र एक शैली नही नयी कविता की रचनाप्रक्रिया का एक अनिवार्य तत्त्व है।

बिम्बो की आधारभूत विशेषताओ क कारण उन्हे कई वर्गों म विभक्त किया जा सकता

---

१ Yet the image is the constant in all poetry and every poem is it self an image

— Cecil Day Lewis—The Poetic Image P 17

२ केदारनाथ सिंह तारसप्तक, वक्तव्य

। सामान्यतया शब्दो म चित्र उपस्थित करने वाले बिम्ब को हम दश्य बिम्ब कहते हैं किन्तु बिम्ब जो हमारी कल्पना मे एक चित्र भर उपस्थित करते हैं, सवेदना को नही छू सकते, अत्यन्त साधारण कोटि के बिम्ब माने जाते हैं। बिम्ब की उत्कृष्टता किसी दश्य की सयो ा भर कर दने से नही होती है अपितु हमारे अय रागबोधो का छूने म निहित है। इन म्बो के अन्तगत वे समस्त बिम्ब आते हैं जो हमारी स्वाद, घ्राण स्पश और नाद चेतना को प्रत करते हैं अथवा जिनके कारण दृष्टि के अतिरिक्त हमारी अय इद्रिया भी पयुत्सुक हो ाती हैं।

वस्तु चित्रण, भाव व्यजना और अलकृति के आधार पर भी बिम्बो के तीन वग हो रते हैं—

वस्तु प्रधान बिम्ब, भाव प्रधान बिम्ब और अलकार प्रधान बिम्ब।

वस्तुप्रधान बिम्ब यथाथ की दृढ रेखाओ द्वारा कलात्मक मूर्तिकरण करत हैं। यह तिकरण स्थिर और गत्यात्मक दोनो प्रकार का होता है। जहा छायाचित्रो सी स्थिरता हती है और कवि निरपक्ष भाव से वणन करता है वहाँ स्थिर बिम्ब और जहा एक गति का भास-सा रहता है वहाँ व्यापार-व्यजक बिम्ब होता है।

भाव बिम्ब की विशेषता अनुभूति का उलझाव है जिसम बिम्बों की अभिव्यक्ति स्पष्ट होती है और स्पष्ट चित्र दृश्यमान नही होते पर अनुभूति की तीव्रता के कारण सवेद्य धिक होते हैं भले ही वे हमारी इद्रिय चेतना को ठीक-ठीक रूप में बोधगम्य न हो।

अलकार प्रधान बिम्ब सज्जात्मक अधिक होते हैं। य कुछ अशों मे सवेद्य और लकारपूण हाते हैं पर अनुभूति इनम नही होती।

मूल रूप से बिम्ब की प्रकृति उसकी स्पष्टचित्रता मानी जाती है। यह स्पष्टचित्रता अभिव्यक्ति की गठन और बिम्ब का स्पष्ट मूर्तिमत्ता की ओर सकेत करती है किन्तु कुछ बिम्बों म अत्यधिक विस्तारपूण चित्रण भी मिलता है जिनमें भावा के प्रसार के ही साथ सुन्दर भयकर और वीभत्स सभी रूपो की अभिव्यक्ति मिलती है अत इसके आधार पर बिम्बों को सान्द्र (कम्प्रेस्ड) और विवत (एलेबोरेटिड) कहा जा सकता है।

लोक सपृक्ति नयी कविता की एक महत्वपूण विशेषता है। इसी कारण अभिव्यक्ति के क्षेत्र म जहाँ उसकी उक्तिया व्यक्तिगत अनुभवो के बिम्बा को उभारती हैं वही लोक अनुभवा के बिम्बा का भी अभाव नही है।

दृश्य बिम्ब

खिचा चला आता है दिन का सोने का रथ
ऊँची नीची भूमि पार कर।[1]

प्रस्तुत पक्तियो म विस्तत आकाश से धीरे धीरे उतरते हुए सूरज का चित्र एकदम उभरकर सामने आ जाता है और—

---

१ रघुवीर सहाय दूसरा सप्तक, पृ १९०

दूर दूर से
हल्के हल्के धानों के रूमाल हिलाए
बाँसों में सीटियाँ बजाए
गलियारों में हाँक लगाए
मन पर, बाँहों पर, कंधों पर
हरसिंगार की डाल झुकाए।[1]

सोनमछली-सा अँधेरी रात को पीता हुआ
जल रहा है किसी खण्डहर के झरोखे पर चिराग
एक मद्धिम-सी उदासी, कुछ न होने की थकन
और दिल की पर्त में सहमा हुआ सुकुमार दाग।[2]

केदार की पंक्तियाँ 'बाँसों की सीटियाँ बजाए और 'गलियारों में हाँक लगाए' उस नाद बिम्ब की संयोजना करती हैं जो सड़क के किनारे सिर हिलाते खेतों के चित्र को और अधिक सजीव कर देती हैं। शाही की पंक्तियाँ 'अँधेरी रात को पीता हुआ' दिये की उस नन्हीं-सी लौ को चित्रबद्ध कर देती हैं जो खण्डहर के उदासी भरे अँधेरे को अपनी पूरी शक्ति से पीछे ढकेलने में लगी हो।

पवन ना सनरातो आवे ने जाय।
रहयु सह्य धुम्मस मन मांहि अटकाय।
माछली नी जेम सरे पंखे नी छाय।
कोनी ना दर मही ए तो समाय
एनो भडको ए रीते बरासार।[3]

यूसुफ मेकवान की इन पंक्तियों में 'मछली की तरह सरकती हुई पक्षी की परछाई' से मछली और पक्षी दोनों की ही स्फूर्ति चित्रित हो जाती है।

नमेली सांज नो तडको,
अहीं चडतो पणे पडतो
क्षितिज ना उंबरा मां सूय थातो ठेस
अडवडतो[4]

और

क्यों सूरज ऊगवुं ने डूबवुं
जिन्दगी गुजरी गई छे बेखबर
एवी सिफ्त थी
दाब मने ओंजी दीधुं

1 केदारनाथ सिंह तीसरा सप्तक, पृष्ठ २११
2 विजयदेव नारायण शाही तीसरा सप्तक, पृष्ठ १०६
3 यूसुफ मेकवान क्षितिज ५ ५ पृष्ठ २६०
4 [illegible] नमेली सांज, पृष्ठ ४

क खबर पडती नथी
के काय पाछे के कबर ?
आयुष्य नो तो अत अहिया क्यार नो
आवी चूक्यो
क्यांक थी वपो उछीना लई अमे
जीवी रह्यो ।[1]

हसमुख पाठक की कविता उतरती हुई साँझ की थकान से भरी हुई है और सुरेश दलाल की कविता तेजी से बीतती हुई जिन्दगी की व्यथा लिए है जो सुबह शाम की तरह अनचीन्ही चली जाती है।

वस्तु बिम्ब

यथार्थ की दृढ़ रेखाओं के साथ ही उनका वस्तु पक्ष अधिक स्पष्ट और व्यापक होता है—

प्रात नभ था बहुत नीला शख जैसे
भोर का नभ
राख से लीपा हुआ चौका—
(अभी गीला पडा है)
बहुत काली सिल जरा से लाल केसर से
कि जैसे धुल गई हो
स्लेट पर या लाल खडिया चाक
मल दी हो किसी ने
नील जल मे या किसी की गौर झिलमिल देह
जैसे हिल रही हो।
और जादू टूटता है इस उषा का अब
सूर्योदय हो रहा है।[2]

और

हजार-हजार तोते
हरे की तरह छूटते हैं
पीछे ऊची मेहरावो से
आकाश मे
खाते हैं गोते।
सलाखो के पीछे से
सेंदुर पुता हुआ

---

१ सुरेश दलाल एकात, पृ० ८७
२ शमशेर बहादुर सिंह कुछ और कविताए, पृ० १५

झाँकता है कोई चेहरा
रँगे हाथ भिलमिलाता ।[1]

सूर्योदय और सन्ध्या के ये दोनों चित्र गति का आभास देते हैं । पहला फैलती हुई धूप का और दूसरा सन्ध्या की चहलपहल का

एवाम् ते वायु तरग उष्ण
धीमे धीमे दूरे-दूरे सरे लो
जे रोगी ना अन्तिम श्वास जेवो
मुँझायलो ।[2]

चाँदनी ना
मुलायम गालीचा उपर
सोणला वेरती
पगली ए
ल्हेरखी शी हलेती वही
जाय [3]

बादल घोडे चढी कोई बोल्यु
आवे छे शब्द
मत्त को सांढ वेग थी
जिप्सी शो बेफिकर
सूर्य ना किरण सभी भडूकों लईने
चमत्कार शो, क्रूर
भागजो
आवे छे कोई शब्द ।[4]

पहला उदाहरण धीमी होती हुई हवा का चित्र उपस्थित करता है, दूसरे मे चाँदनी के गालीचे पर फलती हुई रात और तीसरे मे बादल के घोडे पर चढे जिप्सी की तरह निश्चित किसी शब्द की आकस्मिकता और तीव्रता स्पष्ट है ।

स्थिर बिम्ब स्थिर जीवन की तस्वीर की तरह होते हैं जिनमे गति नहीं होती केवल क्रिया को बाँधकर रख दिया जाता है—

दूर उधर उस मेंड किनारे
कुछ ऊँचे पर
बौने महानीम के नीचे

---

१ विजयदेवनारायण साही मछलीघर, पृ० ६८
२ सितांशु यशश्चन्द्र कविता ५७-५८ ५६, पृ० १२४
३ ययाति कविलोक ४६ पृ० १२
४ दिलीप झवेरी क्षितिज ६ २ पृ० ६१

लगी हुई गैस की बत्ती
लोहे के काले खम्भे पर
जिसका लम्बा होकर पडता गरम उजेला
अधकार मे पुच्छल तारे जैसा लगता ।[1]

और

क्वालिटी माँ
बर्लिन मेलोडी—
पख फफडावे छे
काला ब्लाउज पर
थोडो पालव फरफावतो
एक माछली
साँज नी तडको माँ तमतमता
काकरिया तलाव माँ
मारा माँ
विश्रब्धता थी
होडी चलावे छे

डूबी गयेला
निष्प्राण वजन ने
काँठे खेंची लाव्या त्यारे
सेंडविच माँ थी सरकी गयला
चीकन ना टुकडा ने
मो माँ मूकी
हु चावतो हतो ।[2]

उपर्युक्त दोना उदाहरणो मे कवि एकदम तटस्थ भाव स समस्त वातावरण को रूपायित कर देता है । जो जहाँ जसा है उसको उसी रूप मे कुछ उपमाओं के सहारे कवि ने साकार कर दिया है ।

भावबिम्ब

भावबिम्ब चित्र व दृश्य को उतना स्पष्ट नहीं करते जितना कि भावपक्ष को । अपनी गठन और गुणा क आधार पर भावबिम्ब एक प्रकार से धुधला, अनुभूति या सवेदना प्रधान होता है—

१

---

१ गिरिजाकुमार माथुर धूप के धान मेरे लघु एकांत ग्राम में
२ लाभशकर ठाकर क्षितिज, पृ० ३८७

धुएँ की चादर से ढकी विजड़ित सी धरती है
जिस पर मटमैली छायाएँ घूम रही हैं
अपना अपना दर्द लिए मौन की परछाइं सी ।[1]

यहाँ सृष्टि का कोई साकार रूप सामने नहीं आता अपितु पृथ्वी पर छाई हुई तमाम पीड़ा का आभास होता है—

वह बन्द कर सारा ईमान
सुलतानी निगाहों में निगाहें डालना
बेख़ौफ नीली बिजलियों को फँसना ।[2]

और

नपुंसक श्रद्धा
सड़क के नीचे की गटर में छिप गई
कहीं आग लग गई कहीं गोली चल गई ।[3]

ये दो उदाहरण ईमानदार व्यक्ति की निडरता और चुक गई श्रद्धा पर फली प्रखर जड़ता को स्पष्ट करते हैं ।

'छायावादी युग के भावबिम्बों और प्रयोगवादी युग के भावबिम्बों में जो अन्तर है वह केवल संवेद्य तत्व का है । छायावाद में प्रयुक्त भावबिम्ब आवश्यक रूप से हल्के विषाद की सृष्टि करते हैं जबकि प्रयोगवादी भावबिम्बों में स्फूर्ति और ताजगी मिलती है ।'[4]

विषादमय होने पर भी विषयवस्तु का चित्रण कहीं-कहीं इस प्रकार किया गया है कि वह भाव काफी संयत हो गया है—

तुम कितनी सुन्दर लगती हो
जब तुम हो जाती हो उदास
ज्यों किसी गुलाबी दुनिया में सूने खण्डहर के आसपास
मदभरी चाँदनी जगती हो ।[5]

चाँद जिसे स्नेह का प्रतीक समझ
रच रच उगाया था मैंने निज चित्र में
बाँहों से बँधे युगल हृदय को घेरकर,
उसकी ही छाती पर
पटक पटक आखिर बिस्तुइया ने
मार ही तो डाला

---

१ जगदीश गुप्त नाव के पाँव, पृ० १५
२ मुक्तिबोध चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ० १
३ मुक्तिबोध चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ० ३११
४ कैलाश वाजपेयी आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, पृ० २८४
५ धर्मवीर भारती ठण्डा लोहा उदास तुम

वर्षा के उस फूल तुल्य पतिंगे को ।[1]

दिवस ना दरवाजा पर लटके छे
स्वप्न मा शव
शव ने हु ऊँघनी ऊँडी कबरो माँ
दाटी थई शकती न थी
कबर सूरजमुखी ना फूल ना मोह ने
दोडी शकती न थी
मन हु
सूरजमुखी ना फूल ज
मारा स्वप्न हता
एम कोई ने कही शकतो न थी[2]

मग्न भावि नी भूमि कँपती पडी इमारत त्याज
स्वप्न नी धूल धूजती
खूली दृष्टि माँ अदम्य अश्रु रची गया दीवाल
जागती आग न ठरी ।[3]

अलकृत बिम्बो का आधार कलात्मक सौंदय होता है जिसमे किसी चमत्कार या दूर दर्शी कल्पना का आधार ग्रहण किया जाता है—

शिखरो पर टिके
स्याह बादल की परछाहें
चाँदी में मजे हुए थाल म
पूजा का दीपक रख
आँखो म काजल-सा पार गई ।[4]

रात नी काली डाल पै खील्यु
चाद नु धोडु फूल
श्वास नी साथे डोली उठे
बादल रेशम मन
सागर तीरे टूटियु तारा
सूती पोली रत

१ जगदीश गुप्त शब्ददश पृ० १२
२ चीनु मोदी रे ५, पृ० १४
३ रघुवीर चौधरी रे ५, पृष्ठ ११
४ जगदीश गुप्त हिमविद्ध, पृष्ठ ४४

रेत ना कणेकण माँ जाग
बाला सूरज प्रेत।[1]

सांद्र बिम्ब

सान्द्र बिम्ब में अभिव्यक्ति पक्ष अनुभूति की अपेक्षा अधिक सबल होता है। उसमें बिम्ब स्पष्ट, संश्लिष्ट और प्रभावपूर्ण होता है—

उस लकड़ी के टूटे पुल पर
इस तरह पड़ रही धूप छाँव
जैसे कोई प्यासा चीता
झरने में अगले पंजे रख पानी पीता।[2]

मेवु परोढ ऊघडे (निशु नु बगासु।)
आ शहेर नु लपडिया भरता जता सौ
(नु रात पाली करता मजदूर?) तारा,
ने सूर्य लाल लोरछी नजरे निहाळे
होटेल लाइटस हजी ए मनकी रहेली।[3]

विवृत बिम्ब

किसी एक छोटे से तथ्य को कल्पना द्वारा व्यापक विस्तार विवृत बिम्ब देता है और सान्द्र बिम्ब के एकदम विपरीत होता है—

पश्चिमी आकाश में बिखरे बादल
कि सूरज के रंगीन छिलके—
या घायल गुबार
किसी मुरझाए दिल के
नीचे टहनियों की टोकरी में
गोज कर फेंकी हुई एक रद्द नाम
दबी सिसकियों की तरह चारों ओर
एक घुटता हुआ कोहराम[4]

नयी कविता में विवृत बिम्ब अधिक नहीं हैं क्योंकि आत्मकेन्द्रित होने के कारण पंत के 'परिवर्तन' और नौका विहार जैसे विशद फलक का अभाव है और इसी कारण विवृत बिम्बों का अभाव सा है।

---

१ आदिल मंसूरी चिंतिन ५ ५, पृष्ठ २७०
२ कुँवरनारायण कविताएं, पृष्ठ ५७
३ हसमुख पाठक नमेला साँझ, पृष्ठ १२
४ कुँवरनारायण परिवेश—हम तुम पृष्ठ ३२

नयी कविता म बिम्बों का आधार कल्पना उतनी नहीं है जितना कि यथार्थ है और इसी कारण यहाँ कविता, कविता का तरह रोमानी न होकर जीवन का पर्याय मात्र हो गई है।

छन्द वितान

लय केवल कलाओ की ही नहीं, अपितु प्रत्येक जीवन व्यापार को सचालित करने वाली मूल प्रेरक शक्ति है। लय से अभिप्राय विविध कलाविधियों के मध्य आविभूत होने वाली वस्तुओ के गति एव यति विषयक समानुपात का है जो इन्द्रियबोध्य हो। स्वाराघात द्वारा ध्वनि अथवा गति की व्यवस्था ही छन्द मात्र का आधार है। लय 'गति का परिमापित प्रवाह' एव काल का बोध कराने वाली नर्सागिक शक्ति है। यह गति, यति, प्रवाह एव विराम के पारस्परिक एव क्रमिक सघात से आविभूत होती है, उसके लिए आवृत्ति अनिवाय है, तथा इसकी व्याप्ति दिशा तथा काल दोनो म है। काव्य एव सगीत कला म लय की व्याप्ति जहाँ काल मे है वहाँ मूर्ति, चित्र एव वास्तुकला आदि मूतकलाओ मे उसकी स्थिति दिशा सापेक्ष है। अरस्तू ने काव्य की दो मूल प्रेरणाएँ मानी हैं—अनुकरण की प्रवृत्ति और सगीतात्मक लय। उनके अनुसार अनुकरण की भाँति यह भी मानव म जन्मजात होती है।[1] और छन्द स्पष्टत लय का ही रूप विधायक अग है। लय अपने आपम एक इन्द्रियसवेद्य किन्तु अमूत तत्त्व है, जो शब्द रूपाकार ग्रहण कर छन्द का रूप धारण कर लेता है। इस लय का जीवन के प्रत्येक व्यापार विशेषत रागतत्त्व से अनिवाय सम्बन्ध है। काव्य साहित्य के विभिन्न रूपो मे अपनी रागातिशयता के कारण विशिष्ट है। रागातिरेक मन को उच्छ्वसित कर देता है, श्वास प्रश्वास की गति म उत्पन्न आवेग का कारण वास्तव म यह मनोच्छ्वास ही है, जिसका नियत्रण करने वाला तत्त्व लय है। मन की विश्रृखलित एव अव्यवस्थित स्थिति म सामजस्य एव व्यवस्था स्थापित करने वाली लय ही काव्यभाषा म रूपबद्ध हो छन्द रूप मे परिणत हो जाती है। अतएव मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी रागमूलक काव्य का अनिवाय और सहज माध्यम छन्द ही है।

काव्य और छन्द के इस अनिवाय अविच्छिन्न और आतरिक सहज सम्बन्ध को एक उदाहरण द्वारा पुष्ट करते हुए जेम्स माटगुमरी ने कहा है कि, 'कविता की शक्ति लय के आरोहावरोह मात्र पर कहाँ तक निभर है इस तथ्य को, मिल्टन और शेक्सपियर के सुन्दरतम पद्यानुच्छेदों के शब्दा मे कम से-कम परिवतन करते हुए, गद्यानुवाद द्वारा प्रमाणित किया जा सकता है। यह प्रयास घास पर मोती जवाहरातो के सदृश चमकने वाले किन्तु हाथ लगाते ही पानी हो जाने वाले ओस बिन्दुओ को एकत्रित करने के प्रयास के समान निष्फल सिद्ध होगा। ऐसा करने से सारतत्त्व एव मूलतत्त्वों के अखडित रहने पर भी कविता सौंदय दीप्ति

---

1 Poetry in general seems to have derived its origin from two causes, each of them natural Imitation then being thus natural to us, and secondly melody and rythm being also natural —T A Maxon Aristotle s Poetics and Rhetoric, P 9

एव रूपाकृति हीन हो जाएगी।'[1]

अत यह स्पष्ट है कि [redacted] कविता का परम्परागत एव अतिरिक्त अलकार मात्र [redacted] होकर काव्यात्मा की एक महत्त्वपूर्ण सृष्टि है तथा समय-समय पर दृष्टिगत होने वाले अप वादो के बावजूद, छन्द को कविता नामक कला रूप की विशिष्ट एव आधारभूत विशेषता सिद्ध करने वाली प्रचलित लोकमान्यता असगत नहीं है। ली हट ने भी छन्द को काव्य सम्प्रेषण का अनिवार्य माध्यम न मानने वालो की धारणा को एक 'गद्यात्मक भ्राति' की सज्ञा दी और कहा—"कविता के लिए छन्द इसलिए अनिवार्य है कि काव्यभावना की पूर्णता इसकी माँग करती है उसकी स्फूर्ति, सौंदर्य और शक्ति का वत्त छन्द के अभाव म पूर्ण नही होता।"[2]

निष्कर्ष रूप मे, जिस प्रकार सौंदर्यसृष्टि कलामात्र का मूलतत्त्व है, उसी प्रकार छन्दो बद्धता काव्य का वह मूलभूत तत्त्व है जो गद्य से उसका व्यवतन करती है। अतएव काव्य और छन्द का सहज और अविच्छिन्न सम्बन्ध है—यहाँ तक कि मुक्तछन्द म रचित कविता भी छन्दविहीन नही होती, क्योकि मुक्तछन्द एव छन्दमुक्त म अन्तर है—मुक्तछन्द छन्दहीनता या छन्द से मुक्ति का द्योतक न होकर छन्द के शास्त्रीय नियमो से उसकी मुक्ति का व्यजक है।

नयी कविता के बहुत से प्रयोग छन्द के ही हैं—इसी से कई लोग नयी कविता का अर्थ केवल छन्द की अनगलता ही समझ लेते हैं। तारसप्तक की अधिकाश कविताएँ इस कथन के विपरीत ही जाती हैं। यह सत्य है कि छन्दो का बधन ज्यो-का त्यो स्वीकार करके हम केवल वर्णिक और मात्रिक छन्दो की ऊहापोह मे ही फसे रह जाते हैं और कही एक बात जो मुख्य कथ्य से भले ही गौण हो, पर कविता मे अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक हो, छूट

---

१ How much the power of poetry depends upon the nice inflections of rythm alone, may be proved as James Montgomery pointed out, by taking the finest passages of Milton & Shakespeare and merely putting them into prose with the least possible variation of the words themselves The attempt would be like gathering up dew drops which appear jewels and pearls on the grass, but run into water in the hand, the essence and the element remain but the grace the sparkle and the form are gone —W H Hudon An Introduction to the study of literature quoted on [redacted] 74

२ 'It has been contended by some that poetry need not be written in verse at all but that prose is as good a medium provided poetry be conveyed through it but the opinion [redacted] a prosical mistake and the reason why verse is necessary to the form of poetry that the perfection of the poetical spirit demands it that the circle of the enthusiasm, beauty and power is incomplete without [redacted]

—Leigh Hunt Imagination and fancy

जाती है। छन्दो की इसी अपर्याप्तता को पूर्ण करने के लिए मुक्तछन्द या छन्दमुक्त रचनाओ का विधान किया गया पर लय का आधार इन कविताओ मे है। कविता पाठ की एक विधि है जो गद्य या छन्दबद्ध रचना से भिन्न है, और नयी कविता, लय के इसी लक्ष्य को लेकर चलती है। नयी कविता म यह लय शब्द की न होकर अर्थ की है, इस विषय पर काफी विवाद हो चुका है। 'यद्यपि यह सत्य है कि इन रचनाओ म अधिकांश का आधार लय है, किन्तु सम्पूर्ण रचना मे एक ही पद के लयाधार की आवृत्ति हुई हो ऐसा बहुत कम है। एक ही रचना मे भिन्न भिन्न पदों के लयाधारो के प्रयोग से इस युग की कविता का प्रवाह व्याघातित है। जिन कविताओं मे लयाधार है ही नही उन्हें शिल्प की दृष्टि से कविता न मानने के लिए बाध्य हैं।'[1]

नयी कविता मे प्रयुक्त मुक्तछन्द का आधार पश्चिम के 'ब्लैंक वर्स' और वर्सलिब्रे हैं।

डा० कैलाश वाजपेयी ने लय के आधार पर नयी कविता का जो विश्लेषण किया है वह इस प्रकार है—

"दो त्रिकलों के योग से बनने वाले षष्ठक पद के लयाधार का उदाहरण इस प्रकार है—

क्षण में मन। तप पूत। होकर	=६+६+४
ज्यों। उठती है।	=२+६
समिधा की। शुभ्रज्योति	=६+६
हरने को। अंधकार	=६+६
पापभार।	=६
उमडा था।	=६
नयनों मे। मुक्ताजल	=६+६
छल छल।	=६
वाणी से। फूटा था। प्रथम छन्द	=६+६+६
बिखरी थी। दिशि दिशि मे। ग्रंथि	=६+६+३
जिसे जडता ने। युग युग तक। जकडा था	=६+६+६+६

उपर्युक्त उद्धरण की प्रथम और द्वितीय तथा अंतिम पंक्तियो का लयाधार पदान्तर प्रवाही होने के कारण प्रारंभ से अन्त तक लय म कोई व्यवधान नही आता। शेष सभी पंक्तियो में दो त्रिक पदों के योग से बने षष्ठक पद का प्रयोग हुआ है।"[2]

भागी जा र। ही है रेल।	=७+७
पीछे छोड	=७
महुआ के व। गीचे	=७+४
खाद। रा का दूर। तक फला हुआ विस्तार	=३+७+७+७

१ कैलाश वाजपेयी आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, पृष्ठ २०६८

२ कैलाश वाजपेयी आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, पृष्ठ २११

टिम टिम दीप । को के =७+४
दूर । खिचते जा र । हे सकेत । वे ही साथ =३+७+७+७
होता जा र । हा है दूर । =७+७
उन झरोखे । यो के झुरमु । टो के पार । का
वह गाँव =७+७+७+७
मेरा गाँव =७
मेर प्यार । की प्रतिमूर्ति =७+७[1]

पर इस रचना म सप्तक पद का निर्वाह स्थान स्थान पर विशृखल हो गया है ।

पत्थरो के । उन कगूरो । पर =७+७+२
अजानी । मधु सी =५+५
अब । छा गई हो । गी =२+७+२
अपेक्षित । रात— =५+२
बिछलती डग । रसी सुनसा । न =७+७+१
सरिता पर । =६
ठिठक कर सह । म कर =७+३
थम । गई होगी । बात =२+७+३[2]

"उपर्युक्त उद्धरण मे चौथी पक्ति म पूणक पा जाने से यद्यपि प्रवाह मे कोई बाधा नही आती किन्तु अ त की दो पक्तियों मे पदा तर प्रवाह के बावजूद सप्तक का लयाधार पूव वत नही चल सका । इसका कारण न्यून मात्रा दोष है जो कवि की छन्द सम्बन्धी उदासीनता को द्योतक है ।'[3]

नयी कविता म भी बहुत सी रचनाए हमे ऐसी मिल जाती है जो छन्दबद्ध हैं । शम शेर की गजलें और रुबाइया त्रिलोचन और बालकृष्ण राव के सानेट और गिरिजाकुमार के गीत इस बात का प्रमाण है । छन्दबद्ध रचनाओ म 'इत्यलम' और धूप के धान' के लोक गीतो पर लिखे गीत पर्याप्त सफल हुए है ।

लोकगीतो या लोकप्रचलित धुनो की ओर झुकाव यह उसकी बडी महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है । कारण चाहे राजनीति या जनवाद हो चाहे आसान या गहरी प्रतिक्रिया उत्पन्न करने वाले समवेत गायन की भी पडताल हुई है ।"[4]

इन लोकगीतो म 'चादनी गरबा गुजरात के लोकगीत के आधार पर लिखी लोक-प्रिय रचना है और अकेली मत जइयो गोरी जमना के तीर (अज्ञेय) व्रज के लोकगीत कजरी पर आधारित है । छन्दबद्ध रचनाओ म नयी कविता म कोई विशेष प्रयोग नहीं हुए हैं । गिरिजाकुमार की रचनाओ म कुछ प्रयोग अवश्य मिलते हैं किन्तु उनके पीछे भी इनका ध्वनि सिद्धात है । तारसप्तक के वक्तव्य म उन्होंने कहा है कि ध्वनिविधान म मेरे प्रयोग

१ सूयप्रतापसिह आस्था, जिन्ना के बाद
२ अज्ञेय बावराअहेरी, वहा रात
३ कैलाश वाजपेयी आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प पृष्ठ २००
४ अज्ञेय हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य, पृष्ठ १५०

मुख्यत स्वर ध्वनियो के हैं। व्यजन ध्वनियो से उत्पादित सगीत को मैं कविता मे सगीत नही मानता, प्रत्युत गीतिकालीन रूढि समझता हूँ।"

उनका, सवये की गति पर लिखा 'केसर रग रँगे बन' छन्द सम्बन्धी एक नया प्रयोग है।

प्रयोग की दृष्टि से छन्दवद्ध रचनाओ मे बालकृष्ण राव के सानेट अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। अपने सानेट सम्बन्धी इस प्रयोग के विषय मे इन्होने स्पष्टीकरण किया है—

'मैंने सानेट लिखने का प्रयोग पहले भी किया था तब मैंने रोला की लाइन सानेट के लिए ली थी और शेक्सपियर की सानेट के तुकविन्यास का भी अनुकरण किया था पर इस प्रयोग से मुझे सतोष नही हुआ। चौदह लाइनो का और तुक का बन्धन मुझे सानेट के लिए नही जँचा था, मैंने रोला की लाइन न लेकर २१ मात्राओ की ही लाइन रखी है। चौदह लाइनो का बन्धन नहीं माना और न ही कोई तुक रखा है फिर भी मैं इन्हे सानेट मानता हू क्योकि इनमे सानेट के और सभी आवश्यक गुण हैं।"[1]

रघुवीर सहाय की त्रिपदियाँ सवथा मौलिक प्रयोग हैं। चतुष्पदी के समान तीन पक्तियो की, एक भावविशिष्ट को तीव्रता के साथ व्यक्त करने वाली त्रिपदियाँ उन्होने लिखी जिनकी प्रथम और तृतीय पक्ति म २३ मात्राए और दूसरी मे २० मात्राएँ है, साथ ही प्रथम तथा तृतीय पक्तियाँ अन्त्यानुप्रास युक्त हैं—

चिकने कपडे अच्छी बीवी ओहदा भी
यह सब मेरी खातिर नाकाफी हैं
यह तो पा सकता है कोई ओहदा भी।

इनके अतिरिक्त अभिव्यक्ति के लिए छन्द और शब्द दोनो को ही अपर्याप्त मानने के कारण छोटी बडी पक्तियो बीच के अवकाश, डाटस, चित्रात्मक लिखावट और बीच बीच के तुक को अभिव्यक्ति का साधन बनाया गया। नयी कविता के आरभिक चरण म हर प्रकार का प्रयोग करने की वृत्ति ने काफी चौंकाने वाले किन्तु बचकाने प्रयासो को प्रोत्साहन दिया, जिनके कारण कविता, कविता न रहकर चित्रकाव्य जसी कुछ पहेली लगने लगी थी। किन्तु इस आवेग के उतरने के बाद इस तरह के प्रयोग कम होते-होते समाप्तप्राय हो गए।

गुजराती नयी कविता और छन्द

नया कवि रूपमेल मात्रामेल और सख्यामेल और उसी के समान छन्दो का प्रयोग करता है और आवश्यकतानुसार [redacted] दो को अभ्यस्त या परम्परित करता है। पद्यलय के साथ साथ कई कवि गद्यलय का भी प्रयोग करते है। कविता का माध्यम गद्य भी हो सकता है ऐसी स्वीकृति मिलने के बाद काव्य म भाव की तीव्रता और उत्कृष्टता धारण करने की क्षमता को स्वीकार कर लिया गया है। नयी कविता म हरिगीत, वनवेली झूलना, सवया आदि के साथ

---

१ बालकृष्ण राव रातबीता भूमिका
२ रघुवीर सहाय सीढ़ियों पर धूप में, पृष्ठ १०६

गद्य पंक्तियों का भी प्रयोग होता है जो जब कवि के संवेदन के रूप में और अनुभव की प्रतीति की मांग में घनीभूत होकर आता है तब उसका सम्वाद बना रहता है। उमाशंकर जोशी के छिन्न भिन्न छु' में रूप, मात्रा संख्या छन्द रचना के साथ बीच-बीच में गद्य का सुन्दर उदाहरण है—

प्रकृति, तु दु:ख र ?
मारीज प्रकृति नी ज्यां रामायण छ
मानी लीघेली एकता व्यक्तित्व नी
शतखण्ड त्रुटित मे नजरोनजर देखी लीधी छे।[1]

यह ठीक है कि छन्द को अभ्यस्त कर नया या परम्परित करके कवि अपने वक्तव्य के अनुरूप छोटे बड़े पंक्तिखण्डों की योजना करता है। इसमें कवि जो अर्थ प्रकट करना चाहता है उसे रचना में उचित स्थान पर उचित शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है—छन्दों को अभ्यस्त करने के पीछे यह एक बड़ी वजह है—

शु जुवे छे ?
वेय पांपणहार नी वच्चे बरावर
कीकीओ मां थी नीकडता किरण ना रस्ते जतां
अंधार मां बीटडायलु को वन (मडयु ?)
त्यां एक खूब ज जंगली प्राणी
(बराबर जो।) वसे छे।[2]

यहाँ हरिगीत के टुकड़ों की जो योजना मिलती है उसमें एक प्रकार काव्य की अनुकूल व्यवस्था दिखाई पड़ती है (मडयु ?) या (बराबर जो) जैसी उक्तियों को पंक्ति में अलग वसे ही स्थान दिया गया है जैसे कवि ने उन शब्दों का महत्व बताना चाहा है। कितनी ही बार उपजाति जैसे छन्दों की सम्पूर्ण पंक्तियों को कवि अपने अभीप्सित अर्थ में ढाल लेता है—

केवी अहो मसृण सेज
(रेशमी सस्पर्श।)
शीडी लहरी समुद्र नी
आवास मा एकल
वधे थापण
अने प्रतीक्षा 'लय ला सुषुप्ति नी।[3]

ये पंक्तियाँ उपजाति की पूरी चार पंक्तियाँ हैं—

केवी अहो मसृण सेज रेशमी
सस्पर्श। शीडी लहरी समुद्र नी

---

१ उमाशंकर जोशी अभिज्ञा, छिन्न भिन्न छु
२ हसमुख पाठक नमेली साँझ, पृष्ठ २३
३ हसमुख पाठक नमेली साँझ

आवास मा एकल वंध पापण,
मने प्रतीक्षा लय ला सुषुप्ति नी ।[1]

किंतु 'रेशमी सम्पर्श' और 'घर म अकेले' होने की भावना जो ▪ द की रौ मे अनुभूति से दूर हो जाती है—अलग पक्ति में अपने विशिष्ट सवदन को स्पष्ट कर देती है—कितनी ही बार कवि छन्द के नियमित माप मे इसकी सवादी लय को भग होने स बचाने के लिए वर्णों को भी घटा बढाकर अपना काम चला लेता है।

आधुनिक कविता म जितने भो काव्य रूप स्वीकार किए गए उन सबका प्रयोग आज का कवि करता है। गीत, भजन सानेट, गजल, मुक्तक, ओड जसे प्रकारो म अनेक रचनाएँ हुई हैं।

सानेट की लोकप्रियता नया कविता के क्षेत्र म कम हो रही है उसके पीछे श्री जयत पाठक के विचारानुसार तीन कारण हो सकत हैं—पहले तो नवीन प्रयोग करने की बलवती इच्छा, दूसरे आज के कविया की रुचि ठहरे हुए चिन्तन की अपेक्षा सवेदन और कल्पनाविभ्रम की ओर विशेष है, तीसरे सस्कृत के रूपमेल वत्त आज के कवि की अभिव्यक्ति के अनुरूप नही हैं। इस प्रकार नये कवियो मे कितने ही अभिव्यक्ति के नए प्रयोग करने के साथ परम्परागत पद्य प्रकारों को भी स्वीकार करते है। राजेन्द्र शाह, उशनस निरजन भगत और बालमुकुन्द दवे आदि अनेक कवियो ने श्रेष्ठ सानेटो की रचना की है जो भाव की और चिन्तन की समृद्धि म बलवत ठाकोर उमाशकर जोशी और सुन्दरम की रचनाओ के साथ बराबरी कर सकते हैं।

छन्दा म हाइकू का प्रयोग सूत्र रूप म कुछ कहने की इच्छा के कारण हुआ है। हाइकू के क्षेत्र म स्नेहरश्मि का 'सूनेरी चाँद रुपलो सूरज' सग्रह उल्लेखनीय है। हाइकू के प्रयोग के पीछे केवल कुछ नया लाने की प्रवृत्ति है, हाइकू की दार्शनिक पीठिका से उसका कोई सम्बन्ध नही है।

नयी कविता म कोष्ठक और ज्यामितिक आकृतियो का आलेखन अपन अनुभव के यथाथ निरूपण के लिए करता है। पाठक के समक्ष अपने अनुभव को एक बिम्ब रूप मे अभिव्यक्त करने क स्थान पर मन मे चलते सतत सवेदन की पूण प्रक्रिया को साकार करना चाहता है। इस समस्त सृजन प्रक्रिया म जो विच्छिन्नता या विसवाद रहता है उसे भी वह प्रकट करना चाहता है। उसका अनुभव विश्लिष्ट है उसके अन्तर म एक नाटक चल रहा है जो अनुभव की एक अखण्ड छाप छोडना चाहता है। उन अनुभवो के अनेक रूप हैं—कुछ प्रकट कुछ प्रच्छन्न कुछ स्पष्ट कुछ अस्पष्ट। सवेदन के इन तमाम स्तरा का वह आलेख करना चाहता है अत ब्रकेट का प्रयोग करता है

ज्यां जुओ त्यां नगर नी भीत पर
लोटालपन्न चा सजाव्या छे।

---

[1] राजेन्द्र शाह ध्रुति, पृ ▪ ११४

(हशे तो केटला सौ मानवी ना चित्त पर ?)[1]

शब्द के सवादी और लयान्वित नियोजन से कवि मन को छूता है और उसे जाग्रत करता है। वस्तु को दायरे में घूमता दिखाने के लिए कागज पर अक्षरों की वर्तुलाकार रचना नक्षत्रों की गति कैसे चित्रित कर सकती है? दलपतराम के चित्रकाव्य से अलग ये कृत्रिम प्रयोग अभिव्यक्ति में समर्थ नहीं हैं। कवि जब नवीनता के मोह से छूटकर अभिव्यक्ति के प्रश्न पर गंभीरता से देखने और विचारने का प्रयत्न करता है तो ये समस्त प्रयोग मजाक लगने लगते हैं। कविता का काम अमूर्त को मूर्त करना है, यह ठीक है अव्यक्त को व्यक्त करना है—और अब स्थूल अर्थों में इसका अनुकरण हो रहा है।[2]

गीत और नयी कविता

हिन्दी कविता से एकदम अलग, गुजराती नयी कविता में गीतों की बहुलता है। गीत भावनाओं का आलेख करते हैं और छन्दबद्ध रचना विचारों का। कवि एक ओर आधुनिक जीवन की पीड़ा, सकुलता और व्यथा को स्वर देते हैं और वही गीत में आनन्द, उल्लास और सौंदर्य की सृष्टि करते हैं। गीत के विषयों में राधाकृष्ण को माध्यम बनाकर प्रेम की पीड़ा मस्ती और उन्मुक्तता की अभिव्यक्ति भी की गई है—

वायरा बन ना जाय न बाध्या,
एवाँ अमारा मन हे राधा।
कोन ना दिल माँ वसवा कानगी
मागता अने नथी परवानगी।[3]

गीत के अन्य विषय प्रकृति, मानव और ऊर्ध्व जीवन तथा परमतत्त्व के प्रति प्रेम और उसके विरह की पीड़ा है। राजेन्द्रशाह, निरंजन भगत और उशनस् के काव्यों में यह भावना मिल जाती है। राजेन्द्रशाह के गीतों में प्रकृति का ताजगी भरा आह्लादकारी निरूपण है।

मनुष्य का पृथ्वी के प्रति प्रेम और मानव की महिमा का गान गुजराती कविता में सभवत टैगोर के प्रभाव का कारण है। उमाशंकर में तो यह भावना है कि नए कवियों में भी यह भाव यथार्थ की पूरी समझ के साथ अभिव्यक्त हुआ है—

---

१ निरंजन भगत ३३ काव्यो, पृष्ठ २१।

२ ग्रहो ने ना सगीत ना भावक ना कर्ण ने साक्षात्कार करावनारो होय तो त्या वाक्यो नी आकृति उपजाव वाना मुश्केल छे। एटलुं ज नहि पण एवो आकृति थी सगीत नु अनुभावन नहि थाय। दलपतराम ना चित्रकाव्य थी जुदी रीते, आवा प्रयोगो पण कृत्रिम छे ने तेमा अभिव्यक्ति नी कोइ सिद्धि रहेली नथी। कवि जो नवीनता ना मोह थी छूटी ने अभिव्यक्ति ना प्रश्न ने गंभीरतापूर्वक जोवा उकेलवानो प्रयास करतो हशे तो अने आवा प्रयोगो केवल रमत लागशे। कविता नु काम अमूर्त ने मूर्त करवानु छे अव्यक्त ने व्यक्त करवानु छे ए खरू पण आवा प्रयोगो माँ बहुस्थूल अर्थ मा अनुसरण थतु दराय छे।

—चन्द्रकान्त पाठक आधुनिक कविता प्रवाह, पृष्ठ २०६

३ बालमुकुन्द दवे परिक्रमा, पृष्ठ ७६

क्यारेक कोमल फूल शयने
नीदर नी सोड तणु
क्यारेक पांपण भीना नयने
कटक नु शूल माणु,
मनखानी माया मने,
श्राधो श्रांसु ने श्रावो स्मित रे ।[1]

प्राचीन भजन परम्परा का सधान भी नयी कविता मे हो जाता है। अगम्य तत्व, परमतत्व की प्राप्ति के लिए मानव मन का सवव उसकी अनुभूति का आनन्द और विरह वेदना का गान कई कवियो ने किया है। इसमे प्राचीन अध्यात्म के साथ अरविन्द दर्शन का भी स्वरूप दृष्टिगत होता है। स्थूल, ऐहिक जीवन-सुख का तिरस्कार विशुद्ध ऊर्ध्वजीवन की इच्छा और गूढ दिव्यशक्ति की सर्वव्यापकता का गान कवि इन भजनो म करता है।

गीत, वास्तव म चिन्तन प्रधान कविता के लिए उचित माध्यम नही है। गीत के सविधान मे आज का कवि नित नए प्रयोग करता है और उसमे अर्थ गाम्भीर्य आता है।[2]

नयी कविता और वर्णविवेक[3]

काव्य म वर्णविवेक का तात्पर्य बारह खडी के वर्णों और उनके काव्यगत प्रयोग से नहीं है। कविता एक विशेष रग रचना (कलर स्कीम) का आयोजन करती है जो चित्रकला के समान दृष्टिगोचर तो नही होती और न ही कोई स्पष्ट रेखाकन ही सामने आता है पर शब्दो के माध्यम से मैदान के फलाव आकाश की नीलिमा और लैण्डस्केप के विस्तार को जो स्वर दिया जाता है उसका एक आभास प्राप्त हो जाता है। यहा यह प्रश्न उठ सकता है कि 'चाक्षुष बिम्ब' को इस वर्ण विवेक से कसे पृथक किया जा सकता है। बिम्ब वास्तव म एक चित्र उभारते हैं जिसे पढकर एक दृश्य का अनुमान किया जा सके किन्तु इस बिम्ब के रगो का संविधान स्पष्ट नही होता। 'वर्ण' से तात्पर्य रग से है रगो का सुनियोजित और उचित बोध कराने वाली प्रक्रिया वर्ण विवेक कही जा सकती है।

रगो के प्रभाव को हमारी दृश्य चेतना सीधा ग्रहण करती है। विविध रग और रगता से वस्तु की पहचान होती है। अभिव्यक्ति की स्थिति म यह पहचान और ग्राह्य क्षमता जिन विधाओ का उपयोग करती है उनम काव्य भी है जिसके कनवेस पर रचयिता के अन्तमन म उपलब्ध रग सवेदनात्मक चेतना, रचना प्रक्रिया के दौरान आशिक अथवा समग्र बिम्बो म छिटक पडती है। यह स्वाभाविक तथ्य अथवा विधायिनी शक्ति की सहज व्यजना है क्योकि कभी कभी विचारो और भावनाओ तक को रगो द्वारा व्यक्त किया जाता है। स्वभाव और मन स्थितियों के निश्चित रग मान गए हैं यहा तक कि गध और ध्वनि के पर्याय

---

१ निरजन भगत छन्दोलय, पृष्ठ २२

२ जयतपाठक की पुस्तक 'आधुनिक कविता प्रवाह' में 'आधुनिक कविता अभिव्यक्ति के प्रयोग' के आधार पर

३ श्याम परमार की पुस्तक 'अकविता और कला सदर्भ' में संगृहीत निबन्ध नयी कविता और रग तत्त्व पर आधृत

रगो की अवस्था म स्वीकार किये हैं। अक्षरा तव के अलग अलग रग हैं। हवाओ और दिशाओ को भी रगो की दृष्टि से देखा गया है।

रगो का दृश्यमान स्वरूप प्रकृति की मनोरम और बहुमूल्य भेंट है। व्यापक अर्थो म वह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है, एक सत्य है जो भौतिक होकर भी स्वतंत्र अस्तित्व सम्पन्न है और जिसका सम्बन्ध प्रधानत रगगत सवेदना और व्यक्तिपरक कलरविजन मे है। साहित्य मे यह दृष्टिकोण अभी नही आ पाया है।

चित्रकला मे रगो का सयोजन तीन प्रकार से होता है—हेरान्डिक (Haroldic), हारमोनिक (Harmonic) और प्यूबर (Puber) जो क्रमश सूचक सयोजक और विशुद्ध हैं। किन्तु काव्य मे इन तीन के अतिरिक्त एक चौथी स्थिति महत्वपूर्ण है जिसे सवेदक कहते हैं और यह स्थिति काव्य की एकदम निजी वस्तु है। शब्दो में निहित व्यक्तिपरक सवेदना प्रसूत बिम्ब, खण्डचित्र, अवचेतन मन की आखो से देखी गयी विघटित समग्रता एव रग प्रधान बिम्ब इसके अन्तर्गत आते हैं—

सप्तमी क चाद की नाक मेरी पीठ म धँस जाती है।
मेरे लहू से भीग जाते हैं टक्सियो के आरामदेह गद्दे
फुटपाथ पर रेंगते रहते हैं सुख सुख दाग।[1]

या

साझ हुए हसो सी दोपहर पाँखें फला
नीले कोहरे की झीला म उड जाएगी।[2]

सूचक अवस्था मे रग अत्यन्त प्राचीन है और किसी विशेष मनस्थिति या तत्व के प्रतीक रूप मे गृहीत है। प्राचीन भित्ति और गुहाचित्रो म प्राप्त रग इस स्थिति के प्राचीन तम प्रमाण हैं। इस काल के कुछ निश्चित रग बने रहे। गेरुआ या लाल, काला और पीला मुख्य रग थे। पीला रग आग का। श्वेत प्रकाश का और काला रात्रि अथवा मृत्यु का द्योतक रहा। रगो की यह स्थिति इतनी बँधी बधाई थी कि विशिष्ट वस्तुओ के लिए निर्धारित रग उपयोग मे लाए जाने का विधान था पर काव्य म इस रगनिरूपण सम्बन्धी कोई उदाहरण हमारे सामने नही आता है। प्रेम विरह और काम विषयक सदर्भ प्राय सकेतो म ही व्यक्त किये जाते रहे। काम भावो के लिए भी सकेत उपयुक्त प्रतीत हुए। इस कोटि की साकेतिकता प्राय १९४० के बाद हिंदी कविता म आई। इसके साथ ही अभिव्यक्तिवादी प्रवृत्तियो का उदय हुआ, यद्यपि अभिव्यक्तिवादी बाद रूप म कालक्रम से कभी नही बँधा क्योकि उसकी समस्त प्रति क्रिया वयक्तिक रही। अभिव्यक्तिवादी प्रवृत्तियाँ सब्द हो विकृत उलझावभरी, जटिल अप्रस्तुत और यथार्थच्युत व्यक्तिपरक अभिव्यक्ति को किसी भी मूल्य पर समर्थन प्रदान करती रही। नयी कविता को इसका लाभ तब मिला जब क्षण सत्य को अकित करने म बौद्धिक सवेदना को उपयुक्त समझा गया। इसी स कलाजगत के क्यूबिज्म, आर्गेनिक और ज्यामितिक सिद्धात

---

१ राजकमल चौधरी नीन्द से भटकता हुआ आदमी
२ धर्मवीर भारती नवम्बर की दोपहर

लडस्केपिक पटन, शिल्पगत अनगढता आदि उद्भावित हुए और चित्रकारो द्वारा अनुभूत प्रायोगिक स्थितियो को कवियो ने भी जिया। कवि समय की बारह श्रणियो मे कुछ उपकरणो के लिए कतिपय रगों का निषेध भी किया गया है। काय के अतिरिक्त रगो के विधान की अनुभूति मुगलकालीन चित्र शिल्प की पूववर्ती राजपूत शली पहाडी या हिन्दू कलम म भी मिलती है। अजता और बाघ गुफाओ के बौद्ध धम से प्रेरित भित्तिचित्रो मे पच्चीकारी और रगो की सादगी के अतिरिक्त उनम उद्भासित वणनात्मक सौंदय का परीक्षण समसामयिक काव्य साहित्य म किया जा सकता है। इसलिए काव्य और चित्रकला म कहीं कहीं प्रत्यक्षमान और समवर्ती धार्मिक एव सास्कृतिक पद्धतियो के कारण सामाय सवेदनाएँ और उनकी सामाय अभिव्यजनाए पायी जाती हैं।

रगतत्त्व की द्वितीय अर्थात सयोजक अवस्था म मायताएँ टूटन लगी। परम्परा से हटकर रगनिरूपण मे वैज्ञानिक दृष्टि का आभास आने लगा। चित्रशिल्प म यही स्थिति हार मोनिक कही गई है जिसम रगो का रिश्ता टोन स आवद्ध हुआ है। प्रकाश और छाया के सदभ म रगो के क्रम और शेडस प्रमाणबद्ध करन वाली दृष्टि इस अवस्था म विकसित हुई। भारतीय चित्रकला म यही अवस्था अवनीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा प्रयुक्त 'वाश' शली के प्रचारित होने और बगाल स्कूल की स्थापना के पूव तक स्थिर रही। चित्रो म कई घटनाएँ और एक साथ कई दृश्य दिखाने की पद्धति वणनात्मक काव्य मे उसी तरह मिलती भी है। आगे चलकर मुगलो के प्रभाव से सामती चमक दमक, वभव और मनोहारी दृश्यो को प्रश्रय मिला। चित्रो म गहरे रगो का उपयोग किया जाने लगा।

सवेदना भावात्मक प्रतिक्रिया और अनुभूति के अन्तग्रथन (organic integration) का परिणाम है अभियक्ति जो अपनी प्रसूतावस्था (Inspired state) म एक रूप ग्रहण करती है और उसकी समग्रता अथवत्ता के साथ बिम्बो अथवा प्रतीको मे व्यक्त होती है। काव्य म रगतत्त्व का निरूपण इस क्रिया से आबद्ध है। बाह्य सौंदय की अतमुखी प्रतिक्रिया रगो के नामो और उनके उल्लेखो मात्र से नही होती। यहाँ काव्य की वत्तियो और काव्यगत क्षणो क विवेकात्मक रसाग्रह अधिक सवल होते हैं। नामो और सकेतो क आधार पाठक के लिए भी क्षीण हैं। उनके भीतर का व्यक्ति का य के अन्तर्निहित सौंदय को निजी सवेदनाओ और अनुभूतियो क अनुरूप अथवा उसके बिम्बो की भाषा म पाठक समग्र सौंदय, कथन और उसक अपरूप सदर्भों को समझे ही। इस सक्रमण म पाठक की सम्पन्न रुचि पूरी तरह अपेक्षित है। एक प्रकार की प्रभात्मक अतसदृष्टि (Internal vision) और ग्राह्यक्षमता चाहिए, वही पाठक के लिए उपयुक्त है। फिर भी रचयिता और पाठक के चित्रो म एक सा सामजस्य नहीं हो सकता। दानो के चित्र एक दूसरे क निकट अवश्य हो सकते हैं।

रचना प्रक्रिया की चरम स्थिति म कवि कभी उत्साह कभी आतरिक परितोष कभी रोमानी वचित्र्य अथवा वितष्णा और कभी नराश्य की अवस्थाओ से समस्त प्रक्रिया केवल मनोगत नहीं होती, शरीर से भी उसका नाता है। फेरे (Fe re) ने इस दिशा में कई प्रयोगो क पश्चात शारीरिक प्रक्रियाओ का एक विस्तत आलेख तयार किया है। कवि में यह शरीरगत अनुभूति कल्पना से भी उत्पन्न हो सकती है। इस स्थिति म वैयक्तिक रगानुभूति कल्पित यथाथ पर अपना रग चढाती है। पूर्वापर सम्बध यहाँ सचेत होकर काय

धारते हैं। ध्वनिपरक सौन्दर्य उत्पन्न करने और मवेन्द्र मिश्र जुगबर इगम योग देते हैं। परीक्षण किया गया है कि शरीर गुण व माध्यम से रगों की और आकर्षित होने वाले ध्वनियों में सौन्दर्य को पहचानने की क्षमता कम होती है क्योंकि स्फूर्तिदायक, उष्णप्रकृति वाले, शांत अथवा शीतप्रधान रग शरीर में अलग अलग तरह से प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं। ऐसी स्थिति में आंतरिक आनन्द का सबसे प्रभाव कम हो जाता है। स्फूर्ति और शांति के वाचिक प्रभाव की पूर्ति लाल और हरित वर्ण में पाकर व्यक्ति आजाने की उस दिशा में आकृष्ट होता है। नील के कारण उसे कम्पन हो सकता है। पूर्वाग्रह की वजह से आकर्षण की तीव्रता या सीमित अथवा अमर्यादित होना स्वाभाविक होगा। प्रकृति की ओर झुकाव उसे प्राय हरित रग की ओर आकर्षित करेगा। इन सभी बातों के सन्दर्भ में काव्यगत रगतत्व का अध्ययन मनोगत तथ्यों की विविध जानकारी उपलब्ध करा सकता है।

रग नियोजन में केवल रूपसाम्य या गुणसाम्य ही पर्याप्त नहीं, प्रभावसाम्य भी अपेक्षित है। किसी बिम्ब दृश्य या अन्य स्थिति का समग्र या विभक्त चित्रण करते समय शब्दों का परिमाण ही पर्याप्त नहीं होता। रगों के सतुलन और प्रभाव की अन्विति भी कवि के लिए आवश्यक है। चित्रकार के पास विविध रग होने पर भी कृतित्व में चमत्कार लाने के लिए प्रयोग सतुलन और सयोजन विमा अपेक्षित रहती है। कवि के लिए उसी तरह परिष्कृत दृष्टि के साथ बाह्य सौन्दर्य और उससे सम्बद्ध मनोगत एस्थेटिक प्रतिक्रिया को शब्दों में रूपांतरित करने की कलात्मक क्षमता जरूरी है। रूपयोजना की दृष्टि से हिन्दी कविता का सिलसिला अभावशून्य नहीं कहा जा सकता।

सयोजक अवस्था के साथ-साथ हिन्दी काव्य में प्राचीन रगों की परम्परा निरतर मिलती है।

तीसरी अवस्था विशुद्ध रग नियोजन की है। इस अवस्था में छाया प्रकाश की पद्धति नहीं है। बिम्बों के रग सीधे सादे प्रयुक्त किये जाते हैं। रगों के माध्यम से आकार की नियोजना की जाती है। इस अवस्था के रग वस्तुत बिम्ब को क्रियात्मक रूप में व्यक्त कर पाने की क्षमता रखते हैं। नयी कविता के उदय तक हिन्दी काव्य में विशुद्ध रगतत्व की स्थिति को पर्याप्त सघर्ष करना पड़ा। यांत्रिक सभ्यता की गत्यात्मकता को व्यक्त करने के लिए नवीन रेखाओं और सबल रगों के प्रयोगों के साथ वस्तु के भीतर तक देखने की दृष्टि विकसित हुई।

रग की चौथी अवस्था 'सवेदक' है जिसका सम्बन्ध नयी कविता के सौन्दर्यबोध और उसकी अभिव्यजनात्मक भगिमा से है। चित्रकला के अनेक प्रायोगिक वादों से इसके आग्रह जुड़े हैं। एक समान धर्मा मांसल चेतना और यथार्थ को मुक्त क्षणों की आस्था में देखने वाली सौन्दर्यदृष्टि दोनों में उपलब्ध है। इस नाते चौथी अवस्था के रगों के सिलसिले में प्रभाववाद का उल्लेख आवश्यक है।

१९वी शती के उत्तरार्द्ध में प्रभाववाद का उदय यथातथ्य अकन (Naturalism) और अभिव्यजनावाद के बीच की स्थिति है। यह एक विशेष प्रकार की शैली है जो बिन्दु विनिर्मित (Pointilistic) रूपहीन आकृतियों में प्रतिफलित हुई। इस पद्धति के कलाकारों ने अवैज्ञानिक प्रभाववश रगों की पूर्ववर्ती परम्परा से विद्रोह किया। इस वाद में अन्तगत

दृश्य चित्रों के अंकन का सूत्रपात हुआ जिसमें १८७४ में वेज़ील, डेगास, पिसरो आदि ने तमाम विरोधों के बावजूद जीवन के अस्थिर सम्बन्धों और नगरों की अर्थहीनता को चित्रित किया। १९वीं शती का यह चित्रकलागत आन्दोलन २०वीं शती के प्रारंभ में योरप के साहित्य में लक्षित हुआ। वर्मिग्स और लावेल ने शब्दों के विशिष्ट संयोजन से काव्य में आतरिक संवेगों की सृष्टि की। हिन्दी में प्रभाववाद सन ५० के बाद लक्षित हुआ और बहुत कुछ अंशों में नयी कविता में दिखाई पड़ता है।

हिन्दी कविता में यह नयी दृष्टि अचानक नहीं आयी। कई मिले जुले प्रभाव कवि दृष्टि को सँवारते रहे। नए मूल्यों के भीतर संघर्ष और परिवेश के परिवर्तित होते हुए माहौल ने क्रमशः एक नया वातायन खोला। दूसरे महायुद्ध के बाद कौटुम्बिक व्यवस्था से संघर्ष करके मध्यवर्ग ने एक नया व्यक्तित्व प्राप्त किया। आर्थिक कसावों में उसकी यह उपलब्धि नयी कविता और उसके पूर्ववर्ती काव्यमूल्यों के बदलते रूपों को क्रमशः ध्वनित देता रही। छायावाद के समान नयी कविता का भी उपलब्ध स्वरूप स्वातन्त्र्योत्तर वैचारिक संघर्ष और सजग रागात्मकता के कारण सम्भव हुआ। तारसप्तक में मुक्तिबोध के वक्तव्य में उठाई गई स्थानान्तरगामी प्रवृत्ति की आवश्यकता नए मन ने स्वीकार की। वह वैयक्तिक क्षेत्र से उठकर बाहर तो आया पर उतना ही सामाजिक होकर भी अतिवैयक्तिक होता गया। व्यक्ति चन्द्र को दिशाव्यापी बनाकर वह उतना ही अपने भीतर की ओर मुड़ा अतः काव्यविधा पर नए मूल्यों की ऊष्मा के साथ क्षण सत्य की सम्मूर्तन प्रधान सौंदर्य चेतना, दमित कुंठाएँ आक्रोश और खुली अभिव्यक्ति के प्रभाव आए। अनुभूति के विशिष्ट क्षण, आंचलिकता की रागात्मक छुअन और आधुनिक बाह्य के प्रति इन्द्रियगत दृष्टि को इस काव्य में गति मिली। इन तमाम खूबियों के बीच बहुत कम ऐसी रचनाएँ लिखी गई जिनमें रंग उजली झलक देते हैं। तारसप्तक के प्रकाशन के बाद क्योंकि संवेदनात्मक रंगतत्त्व की स्थिति अपने पर नहीं टिका पाई इसलिए बाद के कवियों को एकाएक सौंदर्यदृष्टि का आधार नहीं मिला। दूसरे सप्तक के कवियों में रंगतत्त्व का सबसे अधिक प्रभाव नरेश मेहता और धर्मवीर भारती में है। भारती में रंगों की ताज़गी है। ऐसा लगता है मानो बिम्बों के लिए रंगों का चयन करते समय उन्होंने बिना किसी पूर्वापर प्रभावों के स्वयं ही अपने संवेदना को खुले अंशों से आँका है।

नरेश मेहता के रंगों की मरीचिका गिरिजाकुमार माथुर से अधिक प्रयोजनीय, 'संसुग्रस और मौलिक लगती है। गिरिजाकुमार अपने भड़कीले रंगों के चुनाव के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। परिप्रेक्ष्य चित्रशिल्प सम्बन्धी शब्द है। साहित्य में यह विधा परम्परा से जुड़ी है जबकि नयी कविता में फोकस की विकृतियाँ मानसचित्रों के परिपार्श्व में परिप्रेक्ष्य को एक ओर कर देती है। चित्रकला के प्रयोग में हुसेन रामकिंकर और चावड़ा ऐसे बन्धन को स्वीकार नहीं करते। गिरिजाकुमार का आग्रह उन चित्रकारों की तरह है जो आज भी रवि वर्मा की शैली में सोचते हैं। यद्यपि नाम और निर्माण के कुछ चित्रों में उन लडस्केपों का-सा आभास होता है उनमें फलाव कम, वशस्नेक अधिक हैं। इनसे बिम्बों की समग्रता तो उभर आती है किन्तु अतीन्द्रियतावश धूमिलता पीछा नहीं छोड़ती। नरेश मेहता में भी यह प्रभाव कुछ अंशों में मिल जाता है—

टेसू में तितियाँ सब सुलग उठीं
दैवों के यज्ञ सा यह उजला दिन।

इन पंक्तियों में रंग का संविधान भले ही स्पष्ट न हो लेकिन अप्रत्यक्ष चित्रों में अंगारों से दहकते टेसू की लौ का रंग मन पर छा जाता है। इस संदर्भ में नयी कविता के सौंदर्यबोध में निहित रंगतत्त्व निरूपण की यह शैली रचना प्रक्रिया एवं व्यक्तिपरक संवेदनाओं से सम्बन्धित लगती है। उसके भी आयाम और विषयगत प्रयोग अपनी अतिवैयक्तिक चेतनाओं की विभा से जुड़े हैं। परिणामतः निःसृत रचनाओं की भावभूमि, शैली और शिल्प परम्परा से हटकर लगते हैं। उनके साथ संगति बैठाना कठिन प्रतीत होता है कठिन इस लिए कि समग्र रचना प्रक्रिया एकदम भिन्न होती है क्योंकि आधुनिक चित्रकारों की तरह नये युग का कवि वृत्ति धर्मा होना है। और यह भी सच है कि रंगों की विविध भावभूमियाँ *विशिष्ट वर्ग ही अनुभव कर पाता है।*[1]

उपचेतन मन के रंग चेतन रंगों से भिन्न होते हैं। इस दृष्टि से चित्रकला में भी वास्तविक रंगों की स्थिति कभी संभव नहीं हुई क्योंकि चित्रित वस्तु के रंग और प्रकृति में दिखाई देने वाले रंगों में बहुत अन्तर होता है। 'साधारणतया दृश्यमान रंगों की भाँति कवि के मन में रंगों की उपज नहीं होती न ही वे शब्द होते हैं जिनसे दृश्यमान वस्तु के ठीक वर्ण का बोध हो सके। ऐसे वर्ण का उल्लेख करने के लिए उन चित्रों और बिम्बों का उपयोग होता है जो अपरोक्ष रूप से कवि मन से सम्बन्धित होते हैं। इन रंगों पर व्यक्तित्व का आरोप और शिल्प में वही प्रवृत्ति काम करती है जो आधुनिक चित्रकला में है।'[2]

नयी कविता की भाषा में नए बिम्बों का संवहन करने की क्षमता आई। उसने रूढ़ अर्थवत्ता के जाल को उतार फेंका और शब्दार्थ की आंतरिक शक्ति पर आधृत सौंदर्यबोध के नए क्षेत्र विकसित किये। उसके प्रयोग शिल्प में समकालीन चित्रकलागत प्रवृत्तियों की भंगिमा आई। कथन में वही दृढ़ता दिखाई और विघटित शिल्प देखा गया। वहीं तिक्तता और विषयगत वैविध्य दोनों में लक्षित हुआ।

आधुनिकता पर एक मुक्तक दिनकर का है—

नोच कर जड़ से बेला चमेली
भर चुके हो कैक्टसों से बाग तुम अपना ?
और घर में चित्र कितने हैं पिकासो के।[3]

तात्पर्य यह कि आधुनिकता को पिकासो और कैक्टसों का पर्याय मान लिया गया है और कविता की आधुनिकता को भी कुछ विद्रूप की दृष्टि से देखा जाता है। कविता में प्रयुक्त बिम्ब और प्रतीक जो परम्परागत नहीं हैं पिकासो के चित्रों के समान ही कठिन समझ लिए जाते हैं। हिन्दी में इसके उदाहरण सन् ५५ के आसपास की रचनाओं में मिलते हैं। छोटी कविताएँ—रंगों की दृष्टि से प्रतिक्रियात्मक लगती हैं। उनके सौन्दर्यबोध में

---

१ श्याम परमार अकविता और कला सन्दर्भ पृष्ठ ६२
२ श्याम परमार अकविता और कला सन्दर्भ पृष्ठ ६३
३ दिनकर नए सुभाषित आधुनिकता

विद्रूप कुण्ठा और आक्रोश के अतिरिक्त रंगों की धुंधली छाया दृष्टिगत होती है। जापानी काव्य के हाइकू, टोटकू और रेंगा आदि कम पंक्तियों वाले छन्दों में सौंदर्य की यह क्षमता द्रष्टव्य है—

उगता चांद डूबता सूरज
बीच झील सी
पीली सरसों फूली।[1]

और

चांद चितेरा
आंक रहा है शारद नभ में
एक चीड़ का खाका।[2]

चित्रकला में रंगों का संयोजन भाव और वर्ण्यवस्तु के सुसम्बद्ध नियोजन में सहायक होता है। काव्य में यही रंग अमूर्त बिम्बों और गत्यात्मक दृश्यों की संयोजना करते हैं। काव्य क्योंकि मुखर है इस कारण चित्रकला की तुलना में अधिक कथ्यगत समग्रता लाने में सफल है। "रंग चित्रकला में पदार्थगत विषय हैं पर रंगों की सीमाएँ काव्य में बाधक नहीं होतीं। चित्रकला की तरह उनमें विभिन्न रंगीय तारल्य का भास होता है। ये बिम्ब उत्पन्न करते हैं और अपने प्रभाव को रस, लक्षणा और अर्थ के सन्दर्भ में पदार्थगत, वस्तु से कहीं ज्यादा व्यापक क्षेत्र में ले जाते हैं। इन प्रभावों को कवि न केवल दृश्यगत उपकरणों में ही, बल्कि अवचेतन मन स्थिति—कम्पन, अन्तःस्वर, नाद और प्रकाश, आधुनिक जीवन की ऊष्मा और गंध में भी अनुभव करता है।"[3]

रंगों के प्रति दृष्टिकोण अब परम्परागत नहीं है। जैसे जैसे दृश्य चेतना तीव्र और छाया प्रकाश के नियोजन से उत्पन्न सुसंस्कृत मानसिक प्रक्रियाओं में विकसित होती गयी, रंगतों की संख्या बढ़ी और आधुनिक कविता में कोमल रंगों पर अधिक बल दिया गया। सादृश्य का सिद्धांत स्वीकार करते ही स्पर्श और गंध की चेतना का संयोग काव्य में हो गया—

जैसे डबडबाते पर्वती बादल
पहाड़ी झील के मरकत—हरे जल पर
तुम्हारी देह के प्रति
भगता महसूस करता हूँ—
कि उन अंधी अतल ऊंचाइयों से पिघल
रूई की तरह
आराम से उस नम चेहरे पर उतर आऊँ।[4]

---

१ अज्ञेय अरी ओ करुणा प्रभामय, पृष्ठ १०२
२ अज्ञेय अरी ओ करुणा प्रभामय पृष्ठ ११४
३ श्याम परमार अकविता और कला सन्दर्भ पृष्ठ ६५
४ कुँवर नारायण पहाड़ी झील

लोकजीवन की ताजगी नन्दलाल बोस के चित्रों में प्राप्त होती है पर काव्य में ग्रामीण रंगों की ऊष्मा सूचक अवस्था को नए आलोक में प्रतिष्ठित करती है। नरेश मेहता ने 'वनपाखी सुनो' में मालवा के रंगों को बटोरने का प्रयास किया है। 'उनमें रंगतत्त्व की उजली चटक उभरती है और अधिकांश रचनाओं में रंगों के परिष्कृत शेड्स और यथोचित सादृश्य रेशमी रंगों का निखार स्पर्शजन्य अनुभूति की सृष्टि करने वाला वातावरण है। उनमें एक मिला जुला बिम्ब समुच्चय है जिसमें कई तरह के रंग रंगतें और विशुद्ध वर्ण के छिटके प्रभाव और ताजे 'स्ट्रोक्स' हैं।'[1] यह ताजगी हरिनारायण व्यास की कविताओं में भी है।

आधुनिक कविता की कुछ रंगतें एकदम नयी हैं। प्रचलित रंगों के अतिरिक्त अन्य कई रंगतें यांत्रिक जीवन ने कविता को दी हैं। चित्रकर्म की दृष्टि से प्रयुक्त मूलतः रंगानुभूति (कलर सेंसेशन) बल (वल्यू) घनत्व (इंटेंसिटी) गति (रिदम) और संगति को कविता में क्रमशः मिल जुलकर स्थान मिला। रंगानुभूति एक कलात्मक गुण है जो काव्य के सौंदर्य के लिए आवश्यक है—

सूरज में नहाए हुए
नीले कमल सा यह चैत का नशीला दिन
मैंने बिताया नहीं।[2]

शमशेर के काव्य में रंग अधिक इन्द्रियगत हैं शायद इसीलिए मुक्तिबोध ने उनके काव्य की मूलवृत्ति को इम्प्रेशनिस्टिक चित्रकार की माना है।

चित्रकला के सीमित रंगों की अपेक्षा काव्य में शब्दों के प्रभाव से अनेक मिश्र रंगों की चमक अनुभव की जा सकती है। देशज शब्दों में सैकड़ों रंगों और रंगतों के लिए उपयुक्त नाम हैं।

जो वैचित्र्य वैविध्य और अभिव्यक्ति का एकदम अलग संवेद्य पक्ष चित्रकला में अधुनातन प्रयोगों में आया वह नयी कविता में सहज ही प्राप्त होता है। स्वर माधुर्य और ध्वनि के अपरोक्ष प्रभाव काव्य बिम्बों में कई तरह उपलब्ध हुए—

खिड़की से एक पीला गुलाब
रह रहकर टकराता रहा।[3]

नयी कविता में रंगतत्त्व की एक भिन्न स्थिति है। संवेद्य अवस्था के अन्तर्गत होकर भी उसमें अलग व्यक्तित्व है। उसमें गत्यात्मक आवेग की दृष्टि है। असतृप्ति, अनिर्देश, विलक्षणता तथा कथन की सामान्य विसंगति का मिला जुला प्रभाव, सम्पूर्ण रचना के विघटित बिम्बों में मिलता है।' चाहे वह शमशेर की गत्यात्मक ज्यामितिक दृष्टि का चित्रात्मक प्रयास हो चाहे कुँवर नारायण के काल्पनिक खण्ड चित्रों की गति चाहे विपिनकुमार की कविताओं में प्रगट सहजबोध की विसंगतियां व वैचित्र्यपूर्ण आयाम अथवा जगदीश गुप्त की विघटित

---

१ रतन परमार अकविता और कला संदर्भ, पृ० ६७
२ धर्मवीर भारती चैत का एक दिन
३ अशोक वाजपेयी शहर अब भी संभावना है 'अमजद अली खां का सरोदवादन सुनकर'

सौंदय दृष्टि—बात वही है जो किसी समय वनगॉग, पिकासो, सेज़ा भोगाँ और मातिस के चित्रगत रगो म देखी गई और वही प्रयोग अनेक सघष झेलते हुए शैलोज मुकर्जी कृष्ण हेब्बर, दयावस चावडा, रामकुमार अथवा 'ग्रुप १८६०' के कलाकारो मे देखी गई। पिकासो के क्यूबिज्म तथा दाली मेक्स आदि के एब्स्ट्रेक्ट (सुरियलिस्ट) अवचेतन दृष्टि रखने वाले पाश्चात्य चित्रकारो की कृतियो म वही बात बनी रही जो वर्षो बाद पश्चिम के कवि म आई और वही भारतीय चित्रकला के आधुनिक प्रयोगो के साथ हिन्दी कविता मे लक्षित हुई। जितेन दे, विमलदास गुप्त बेंद्रे आदि कलाकारो के चित्र नयी कविता के बहुत निकट लगते हैं। अधुनातन कविताओ म यही सामजस्य कही अधिक है। तो भी इस बात की उपेक्षा नही की जा सकती कि यामिनी राय की अनुरूपता ठाकुरप्रसाद सिंह मे अथवा आरा की लक्ष्मीकात वर्मा मे तथा रोरिक की सतुलित आधुनिकता अज्ञेय म है।"[1]

सक्षेप यह कि नयी कविता शिल्प के क्षेत्र मे रूपाकार मात्र नही है। शिल्प सम्बन्धी जितने भी प्रयोग नयी कविता ने किए उन्हे शब्दाडम्बर कहना नयी कविता के प्रति अन्याय होगा। गुजराती की नयी कविता के विषय म एक बात कहनी आवश्यक है—गुजराती नयी कविता साहित्य के गीत प्रधान वातावरण म अपने को स्थापित करने की प्रक्रिया मे है। वहाँ कविता क विकास की गति बहुत ही मथर रही है और शिल्प के प्रति कवियो का रवया वही है जो प्रयोगवाद के प्रारम्भिक दिनों म हिन्दी के कवियो का था। हिन्दी नयी कविता भाव और अभिव्यक्ति दोनो ही दृष्टियो से विकसित हो चुकी है—वसे उसके आगामी विकास की सभावनाए अभी समाप्त नही हुई हैं और गुजराती नयी कविता का पूरा भविष्य, उसकी सभी सभावनाएँ उसके आगे हैं।

१ श्याम परमार अकविता और कला सदभ, पृ० १०१

विवेचन   कुछ कवि

अज्ञेय

नयी कविता का इतिहास अज्ञेय की काव्यकृतियों से ही आरम्भ होता है। अज्ञेय उन कवियों में हैं जिनके काव्य में समय समय पर होने वाले काव्य आंदोलनों से आए मोड़ स्पष्ट हो जाते हैं। समय की दृष्टि से अज्ञेय का रचनाकाल सन ३३ से आज तक विस्तृत है। नयी कविता के लिए सन ३३ या सन् ४२ में प्रकाशित कृतियाँ भले ही महत्व की न हों अज्ञेय की काव्य यात्रा का ज्ञान करने के लिए उनका महत्त्व है।

उनकी प्रारम्भिक काव्यकृतियों—भग्नदूत और चिन्ता में छायावादी धमिलता, गीतों का रूमान और प्रणय की अतिशय भावुकता दिखाई पड़ती है। स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान रची जाने के कारण ये क्रांतिकारी जीवन से सम्बन्धित भावुक स्मृति खण्ड हैं जिनमें क्रांतिकारी गतिविधि का कम और विरहजनित वेदना का वर्णन अधिक है। इत्यलम सन् ४६ में प्रकाशित हुई जिसमें अधूरे स्वप्नों की कुण्ठा का स्वर मुखरित है घिसे हुए परम्परागत भाषा के स्थान पर 'कुछ और' कहने की उत्कण्ठा है। सन् ४६ में प्रकाशित 'हरी घास पर क्षण भर' एक सहज उल्लास से परिपूर्ण है जिसमें पहली बार निरर्थक भटकन के बाद अज्ञेय की कविता को एक महत्वपूर्ण मोड़ मिला है। बावरा अहेरी '५४ इन्द्रधनु रौंदे हुए ये '५७, अरी ओ करुणा प्रभामय '५६, आँगन के पार द्वार '६१ और कितनी नावों में कितनी बार '६७ अज्ञेय के नयी कविता के काव्य संग्रह हैं। इन संग्रहों में अज्ञेय की कविता ने अनेक नए आयाम छुए हैं। प्रेम की मार्मिक, सहज अनुभूति से लेकर असाध्यवीणा की रहस्यात्मकता तक उनके काव्य का प्रसार है पर उनके काव्य का मूल स्वर प्रेम भावना ही है। उनकी प्रारम्भिक कविताओं में छटपटाहट अधिक है शान्ति उतनी नहीं है। उनमें गैर रोमान्टिक होने का प्रयास तो है पर रूमानियत से उनकी कविता मुक्त नहीं होती। तार सप्तक की कविताएँ ऐसी ही भावभूमि पर खड़ी हैं जहाँ रोमान्टिसिज्म उतार पर है और आगे नया प्रयोग करने के लिए एक तड़प, एक प्रयास।

अरी ओ करुणा प्रभामय' में चीड़ का भाषा के अन्तर्गत जापानी कविताओं का अंग्रेजी के माध्यम से अनुवाद किया गया है। हाइकू, वाका, रानेगू आदि जापानी छन्दों का परिचय इन्हीं कविताओं के माध्यम से हिन्दी जगत को प्राप्त हुआ है। यह ठीक है पर इन अनुवादों से कविता की गहराई तक नहीं पहुँचा जा सकता। प्रमुख कारण यह है कि 'हाइकू —

जापानी म, जेन सम्प्रदाय से सम्बंधित जिनासाओं की सूत्र रूप मे अभिव्यक्ति है इसी कारण—

ताल पुराना
कूदा दादुर
गडुप[1]

जैसी कविताएँ केवल स्थिति के सतही चित्र उभारती हैं। पुराना ताल और मेढक के कूदने की आवाज से पीछे की गम्भीरता और प्रतीक का मूल अर्थ स्पष्ट नही हो पाता।

'आँगन के पार द्वार' की लम्बी कविता असाध्य वीणा एक लम्बी परिचर्चा का विषय रही है और उसके आधार पर यह सिद्ध किया जाता रहा है कि लाख बगावत अस्वीकार और क्रांति के बाद भी मनुष्य के विकास की चरम परिणति रहस्य म होती है पर वास्तव म असाध्यवीणा को अज्ञेय की एक विशेष दिशा की ओर उन्मुख सजनात्मकता की निष्पत्ति माना जा सकता है। 'इस भावभूमि पर कवि यदि अनुभव कर कि अंतिम उक्ति मौन है तो वह उचित ही है। यहा मौन, समपण अथवा स्वीकरण के रूप मे सजन का एक मुख्य उपादान है।'[2]

उनकी आरम्भिक कृतियों म रहस्य का जो परिचय प्राप्त होता है 'अरी ओ करुणा प्रभामय' और 'आँगन के पार द्वार' मे उस एक नया स्वरूप प्राप्त हो गया है। हरी घास पर क्षण भर की 'तुम्ही हो क्या बधु वह', 'बावरा अहेरी' की 'विज्ञप्ति' और 'इन्द्र धनु रौंदे हुए ये' म जितना तुम्हारा सच है तथा 'अरी ओ करुणा प्रभामय' की 'द्वार हीन द्वार' जसी अनेक अभिव्यक्तियाँ अज्ञेय के काव्य म मिलती हैं जिनम कवि, सजन के रहस्य को स्पष्ट करना चाहता है। आस्तिकता का भाव अज्ञेय की रचनाओं म है जो कहीं-कहीं अनिश्चय और विद्रोह मे बदल जाता है (उदा० पूर्वा म सकलित—नही तेरे चरणो मे), पर 'आगन के पार द्वार' म आस्तिकता और सजनात्मक रहस्यवाद की पूरी-पूरी सगति बठती है।

अज्ञेय का काव्य कुछ विशिष्ट मानसिक अवस्थाओं को व्यक्त करने वाले शब्दो से सकेतित होता है। इन अवस्थाओं की पहली सफल अभिव्यक्ति हरी घास पर क्षण भर' मे हुई और उसी सग्रह मे कुछ ऐसे शब्द सामने आए जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप म अज्ञेय की मूल काव्य प्रकृति के द्योतक हैं जिनकी अनुगूज बावरा अहेरी, 'इन्द्रधनु रौंदे हुए ये' और 'अरी ओ करुणा प्रभामय' से होती हुई आगन के पार द्वार' तक विभिन्न—बहुत विभिन्न नहीं—मन स्थितियो से प्रतिकूल होती चली आई हैं। कवि का भोक्ता 'मैं उन शब्दों के मनन द्वारा मानो अपने को विराट के स दभ म खोजता है, कभी अपने से विराट को सदभ देता है।'[3]

अभिजात भाषा उनके काव्य का सबलतम पक्ष है। उनका प्रत्येक शब्द जस कुशल शिल्पी के हाथ से तराशी गयी किसी प्रतिमा का अश हो। उनके आरम्भिक काव्यो—विशेषत भग्नदूत और चिन्ता की भाषा अत्यन्त बोझिल है—जिनम छायावादी ढग की

---

१ अज्ञेय अरी ओ करुणा प्रभामय ताल पुराना
२ डा० रमेश चतुर्वेदी अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, पृ० २७
३ कुवर नारायण विवेक के रग पृ० १४६

कशोर भावुकता की अभिव्यक्ति ही प्राप्त होती है।

'उनकी कविताओं म इम्प्रेशनिस्ट कलाकारोंका सा क्षण चित्रण प्रधान है। इसी स उसकी अनुभूति मे अन्तर्निहित मूक व्यथा एक घुटा सा दर्द कुण्ठित पीड़ा होने पर भी वह भावुकता का प्रदशन नहा करता । उसकी करुणा प्रगाढ है । उसम परिताप की जलन है, अतृप्ति का धुधवाना नहीं।'[1]

मुक्तिबोध

तार सप्तक म मुक्तिबोध की कविताए भल ही सकलित हो उनका नाम साहित्य से किसी न किसी प्रकार सम्बद्ध हर व्यक्ति की जबान पर उस समय आया जब वे एक लम्बी बीमारी से एकदम टूटकर बेहोशी की हालत म दिल्ली लाए गए थे। मुक्तिबोध ने रातो रात इतनी अधिक ख्याति पा ली जितनी वह अपने जीवन म कभी सोच भी नही पाते और उनकी मृत्यु के बाद—यानी इक्कीस वर्षों के लम्बे अ तराल के बाद उनका काव्य सग्रह 'चाँद का मुह टेढा है' प्रकाशित हुआ।

'चाँद का मुह टेढा है' की लम्बी फटेसी प्रधान और व्यग्यात्मक कविताओ ने मुक्ति बोध के कवि रूप के लिए एक विवादमुक्त स्थान सुरक्षित कर दिया । अज्ञेय क बाद मुक्तिबोध का ही नाम है जिससे नयी कविता की विशेषताएँ स्पष्ट हो जाती हैं। मुक्तिबोध, मूलत प्रगतिवादी विचारधारा के अनुयायी थे—इसी स उनकी कविताओ म वग सघष का स्वर कही कही बहुत स्पष्ट हो गया है।

मुक्तिबोध की कविताओ के लिए शमशेर का परिचय अत्युक्तिपूण नही है—

"मुक्तिबोध की कविता अदभुत सकेतो भरी, जिज्ञासाओ से अस्थिर—कभी दूर से शोर मचाती, कभी कानो मे चुपचाप राज की बातें कहती चलती है। इसम लय, सुर और ताल की बारीकियाँ न ढूढो। ये लिपियों की भावुकता नही, इनम विचार गुनगुनाते हैं इनमे तस्वीरें बहुत ही जागे हुए होश की हैं । इनका अथ प्रेम का आलिंगन नही विलाप नहीं, पमानो के इशारे नही, भीगती रातो—करवटें लेती सुबहो की अगड़ाइयाँ और कसमसाहटें नही। यहाँ देश विदेश के इमेजों का उलझाव नही । 'फरार' नही, इ कलाब नही। इनका रोमान ददनाक है और आज का है। बिल्कुल आज का है और बहुत पुराना भी है।

"अगर कविता म ऐसी कोई गाथा उमर उमर उठे तो वह कितनी ही लम्बी हो, कितनी ही लम्बी वह हो अखरेगी नही।"[2]

सही है कि मुक्तिबोध की कविता अदभुत सकेतो से भरी है—सही है कि ये लिपियों की भावुकता नही और यह भी सही है कि इनका रोमान ददनाक है लेकिन उसके माध्यम से उभरता हुआ दद बेहद त्रासदायक है उसमे वह तमाम पीड़ा निहित है जो आतकित कर देती है। नयी कविता का स्वर कितना भी बौद्धिक हो, उसके मूल म कोमलता अवश्य है पर मुक्तिबोध की कविताओं म एक अजीब तरह का बिखराब मिलता है। अनुभव की व्यापकता

---

१ प्रभाकर माचवे विवेक क रग, पृ० ८

२ चाँद का मुह टेढा है, पृ

और परिवेश जीवन से गहन सम्बद्धता यानी भूख प्यास के सीमित दायरे से बाहर निकालकर विविध छवियो, प्रश्नो और संवेदनाओ से भरे जीवन के बीच ला खडी करती हैं। कवि की प्रगतिवादी दृष्टि उसके परिवेश बोध, सामाजिक चिंतन और अनुभव वविध्य पर और बल देती है। शमशेर के अनुसार—

"मुक्तिबोध ने छायावाद की सीमाएँ लाँघकर, प्रगतिवाद से मार्क्सवादी दर्शन ले प्रयोगवाद के अधिकांश हथियार सभाल और उसकी स्वतन्त्रता महसूस कर—स्वतन्त्र कवि रूप से सब वादो और पार्टियो से ऊपर उठकर निराला की सुथरी और खुली मानवतावादी परम्परा को बहुत आगे बढाया।"[1]

दूसरे शब्दो म एक 'समन्वयी' कवि के रूप म मुक्तिबोध का नाम लिया जा सकता है क्योकि वह वतमान सभी धाराओ के गुणो को ग्रहण कर अपनी रचनाओ मे नवीन प्राणो की स्थापना करते हैं।

प्रयोगवाद का प्रयोग शब्द केवल शिल्प के लिए प्रयुक्त नही है अपितु यहा प्रयोग कथ्य और शिल्प दोनो के ही लिए हैं। पर मुक्तिबोध का प्रयोग विषयवस्तु पर अधिक निभर है जो एक साथ उनकी सीमा और विशेषता दोनो ही हैं। नयी कविता म छन्द विषयक जो परिवतन हुए हैं उनमे छन्द की परम्पराबद्ध योजना के स्थान पर शब्द स्वर और पदगतियाँ एक नवीन, असाधारण और व्यक्तिगत व्यजना की सृष्टि करती हैं— मुक्तिबोध की कविता उसका प्रमाण है।

'मगर उनके यहाँ मुक्तछन्द की निरालीय गति म प्रस्तुत राजनीतिक सामाजिक इतिहास का मूल्याकन जो काव्य तत्त्व के माध्यम से होता चलता है वही कवि की मुख्य शक्ति है। अपनी शली मे मुक्तिबोध अमूत को मूत करने की सहज शक्ति रखते हैं।"[2]

तारसप्तक की रचनाएँ 'चाँद का मुह टेढा है' की भूमिका मात्र है। यदि उनका व्यापक जीवन अनुभव तथा लोक परिवेश से सपक्ति उनकी सबसे बडी शक्ति है तो शिल्प के प्रति उनकी असावधानी सबसे बडी कमजोरी भी है, जिसके कारण उनके अनुभव खण्ड एक मे नही बध सके—और *बिम्बो की रचना म सश्लिष्टता तथा सघनता नही भर पाती।* बिम्ब टूट बिखर जाते हैं और कहीं-कही उनमे सपाट अभिधात्मक कथन उभर आता है और प्रगतिवादी चिन्तन तथा धारणा का वद्ध स्वर उतरा जाता है।

शमशेर ने कहा है कि जिन कविताओ मे एसी गाथाए उभर कर आती हैं कितनी ही लम्बी वह हो, अखरती नही। कविता की लम्बाई पर शमशेर ने बहुत बल दिया है और उन कितनी ही लम्बी' कविताओ म ('अँधेरे मे या चाद का मुह टेढा है'— उदाहरणत) प्रभाव की गठन के स्थान पर बिखराव ही अधिक स्पष्ट होता है जसे अनुभवो के बडे-बडे शिलाखण्ड एक दूसरे से असम्बद्ध यहाँ से वहाँ तक पडे हुए हैं यह दूसरी बात है कि इस असम्बद्ध सम्बद्धता का भी एक सौंदय है।

---

१ चाँद का मुँह टेढा है, पृ० २६
२ वही, पृ० २७

मुक्तिबोध के काव्य की भाषा सहज है किन्तु कविता मे प्रयुक्त दुरुह प्रतीको और लम्बे लम्बे रूपको के कारण वह अस्पष्ट हो गई है।

शमशेर

शमशेर के काव्य के दो ससार हैं जिन्हे एक दूसरे से पृथक नही किया जा सकता जैसे भी शमशेर की कविता और शायरी को अलग अलग करना उचित नही है भले ही एक ही व्यक्ति द्वारा लिखी गई इन रचनाओ म पर्याप्त अन्तर है।

आत्मस्थ होने के बावजूद काव्य की सामाजिकता मे विश्वास करने के नाते शमशेर कविता को सब तक पहुचाना चाहते हैं जिसका आभास उनके काव्य मे मिलता है।

शमशेर के अनुसार कवि का कर्म अपनी भावनाओ म, अपनी प्रेरणाओ म अपने आतरिक सस्कारो म समाज सत्य के मर्म को ढालना—उसम अपने को पाना है, और उसे पाने को अपनी पूरी कलात्मक क्षमता से पूरी सच्चाई के साथ व्यक्त करना है, जहाँ तक वह कर सकता हो।

कविता की रचना के लिए भाषा एक अपूर्ण फिर भी अनिवार्य माध्यम है, अपने आप म सशक्त और समर्थ होकर भी वह कविता के लिए अपर्याप्त है। कविता यदि किसी आतरिक भाषातीत व्याकुलता की अभिव्यक्ति है तो वह व्याकुलता अपनी समग्रता और जटिलता मे तभी सम्प्रेषित हो सकती है जबकि भाषा का बाह्य, अर्थपरक विधान उसके माग म कम-से-कम बाधक हो। अनुभूति शब्द से परे हैं शब्द के माध्यम से उसे अभिव्यक्त करने की विवशता को स्वीकार करते हुए भी, कवि उसे अनुभूति के शब्दातीत धरातल पर ही सम्प्रेषित करना उचित समझता है। अटपटी भाषा, अधूरे चित्र, सवनामशैली अल्प कथन ये सब कवि के उसी प्रयास के प्रतीक हैं जिसके सहारे वह अस्पष्ट को स्पष्टाभास द्वारा स्पष्टता से परे ले जाना चाहता है।

शमशेर साक्षात् कवि हैं—निजी बिम्ब, निजी भाषा, निजी मुहावरे और निजी प्रतीक साजते पाते हुए, अनुभव म डूबे और दूसरो पर अनुभव के मानो म व्यक्त होते हुए, वैयक्तिक अनुभूतियो को भाषा रूपी सामाजिक माध्यम म ढालने पर झिझकते से और अनुभूतियो की प्रामाणिकता अक्षुण्ण रखने को तत्पर, प्रेम की निराशा से कुण्ठित पर साथ ही जीवन के हृदय को आज सकुचित देखकर व्यग्र।

कुल मिलाकर शमशेर की कविताएँ मनोदशा की, 'मूड' की कविताएँ हैं। शब्द वहाँ कोई विशेष अर्थ नही रखते। शब्द उनकी कविता में उस कोमल और निरीह भाव की तरह हैं जिसस प्रत्येक व्यक्ति अपना सगीत निकाल सकता है—बेसुरा या स्वर्गीय।

एक पक्ति म उनकी कविता का परिचय इस प्रकार दिया जा सकता है—कोमल और निरीह मन आत्मीय और बनावट से दूर—

टूटी हुई बिखरी हुई चाय
की दली हुई पाँव के नीचे पत्तियाँ
मरी कविता।[1]

---

१ शमशेर बहादुर सिंह 'कुछ और कविताएँ', पृष्ठ २१

मलकार भी उनमे शब्दाडम्बर नही, एक तरह की सात्विक उष्णता का पर्याय बनकर गाता है, और व्यजना या सवेदन के साथ मनोहर सम्बन्ध स्थापित करता है। परस्पर वरोधी प्रवत्तियो की उपस्थिति भी उनकी कविता की दुरूहता का कुछ कारण रही है। एक गोर तो वह प्रगतिशील विचारो के अनुरूप बाह्य घटनाम्रो एव परिस्थितियो से सम्बद्ध तथा वेषयपरक है, *दूसरी ओर उस पर छायावादी कुहासे और रूमानियत का प्रभाव है। प्रगति* गादी इतिवत्त और छायावादी रहस्यभाव से अछूती रहने पर भी शमशेर की कविता इन दोनो वादो के आग्रहो का एक अदभुत सम्मिश्रण अवश्य है।

काव्य विधान और छन्द के प्रति हिन्दी कविता की बढती हुई उदासीनता के सन्दभ देखें तो ज्ञात होगा कि अज्ञेय ने सम मात्रिक छन्दो को क्रमश त्याग कर भी छन्द का बन्धन स्वीकार अवश्य किया था। उनकी कविता मे छन्द विद्यमान है, यद्यपि उसकी धडकनें बीच बीच म अतिरिक्त प्रभाव डालने म सहायक होने के लिए डूब जाती है अथवा बढ जाती हैं किन्तु शमशेर ने छन्द के बाहरी मात्रिक बन्धन को तोड दिया है। केवल उसकी आन्तरिक विशेषता लय को अपनाया है। इसीलिए उनकी कविता वाद के नये कवियो की गद्य रूपिणी कविता से भिन्न प्रतीत होती है। उसमे वाक्य का पद्यात्मक विन्यास है और लयात्मकता पर आधारित छन्द ध्वनि भी।

शमशेर इसका प्रमाण है कि कविता जिस विकलता से उत्पन्न होती है, उसकी अभिव्यक्ति गद्य में भी उतनी ही भली प्रकार सभव है जितनी पद्य मे। अपनी विविध काव्य भगिमाम्रा सहित शमशेर, अनजाने मे ही कविता के प्रति आतकवाद को आरभ करने वालो में स हैं।

शमशेर की कविताम्रो को बार बार पढने पर जो तथ्य सामने आता है वह उन *कविताम्रा पर से प्रतिबद्धतावाद या* मार्क्सवाद का आवरण उतार देता है। शमशेर के अनुभव ससार म प्रतिबद्धतावाद या मार्क्सवाद अनुभूति के जगत् से नही बुद्धि के माध्यम से आए हैं। अनुभूति की यथार्थता और सत्यता की परख उनकी 'प्रेम कविताम्रो म होती है। अपन मूल म छिपे हुए उर्दू शायर की भावुकता और रूमानियत स शमशेर को कभी मुक्ति नही मिल सकी। उनकी कविता की दुरूहता देखकर भले ही उसमे आधुनिक जीवन के उनके सूक्ष्म सक्रान्त अनुभवा का अनुमान कर लिया जाए, किन्तु मूलत उनकी आधुनिक अरूप कला के आवरण मे उनके रूमानी अनुभव का ही ससार है।

गिरिजाकुमार माथुर

तारसप्तक म सकलित कवियो मे गिरिजाकुमार ही ऐसे हैं जो नयी कविता की बौद्धिकता से अलग छायावादी गीता की परम्परा को आगे बढा रहे हैं। नयी कविता मे शिल्प के प्रति जहाँ एक उदासीनता मिलती है वहाँ गिरिजाकुमार कविता म लय और नाद को अनिवाय मानते है और सभवत यही कारण है कि छायावादी भाव को ग्रहण करने के बाद भी अभिव्यक्ति के क्षेत्र म नवीनता का समाहार उन्होंने किया है। नयी कविता के क्षेत्र मे एक तथ्य जो विशेष ध्यानाकर्षित करता है वह यह है कि अपने को मसीहा बनाने के प्रयास मे कवि को स्वय आलोचक बनना पडता है और स्वय अपनी कविताम्रो की व्याख्या करनी पडती

है 'नयी कविता सीमाएँ और सभावनाएँ' गिरिजाकुमार का ऐसा ही ग्रथ है जिसम नाद और ध्वनि के प्रति अपने मोह को वे इन शब्दो म स्पष्ट करते हैं—

कविता म स्वर ध्वनियो के आधार पर रचा गया नादतत्व अधिक सश्लिष्ट एव आंतरिक गतिमयता अर्थात लयवत्ता को उत्पन्न करता है।"

अज्ञेय के बाद गिरिजाकुमार ही ऐसे कवि हैं जो तारसप्तक के प्रकाशन से पूव ही काव्यक्षेत्र के परिचित हस्ताक्षर हो चुके थे। मजीर का प्रकाशन सन '४१ म हुआ था पर उस पर भी *उत्तरछायावादी कविताओ की स्पष्ट छाप लगी हुई थी।* मजीर की भूमिका निराला ने लिखी थी और उनके शब्दो मे—

'गिरिजाकुमार माथुर निकलते ही हिन्दी की निगाह खीच लने वाले तारे हैं। काव्य के आकाश म उनका बहुत ही मधुर और रगीन प्रकाश हिन्दी के धरातल पर उतरा है। बोलवाले तार की तरह मजबूत और स्वर से मिले हुए अपने पहले ही झकार से उन्होंने लोगो का दिल ले लिया है।'

वास्तव मे मजीर की कविताएँ उस सपना देखने वाले बच्चे की तरह हैं जो दुनिया को अपनी कल्पना के अनुरूप ढाल लेता है—लेकिन भाव और कारण के बीच सम्बध स्थापित करने मे असमथ रहता है। मजीर उस किशोर मन की अभिव्यक्ति है जो प्रथम प्रणय की भावुक कल्पनाओ म डूबा हुआ है पर उन कल्पनाओ के टूटने पर जो एक दूसरा ससार उसके सामने आ जाता है वह उदासी से भरा हुआ है। इसके अतिरिक्त सघष और अनुभव से झुके हुए व्यक्ति की पीडा इसम है जो यथाथ से हताश होकर बार बार अतीत की ओर लौटने के लिए व्याकुल हो उठता है—

आज तेरा भोलापन चूम,
हुई चूनर भी अल्हड प्राण।
हुए अनजान अचानक ही,
कुसुम से मसले बिखरे साज।[1]

और

विदा समय क्यों भरे नयन हैं।
अब न उदास करो मुख अपना,
बार बार फिर कब है मिलना।
जिस सपने को सच समझा था,
वह सच आज हो रहा सपना।[2]

और

प्यार बडा निष्ठुर था मेरा।
कोटि दीप जलते थे मन म
कितने मरु तपते यौवन मे।

---

१ स० नगेन्द्र लोकप्रिय कवि गिरिजाकुमार, पृ० ४६
२ वही ,, पृ० ४४

रस बरसाने वाले आकर
विष ही छोड़ गए जीवन में ।[1]

गिरिजाकुमार की दूसरी उपलब्धि '४६ में प्रकाशित 'नाश और निर्माण' है। उसके नाम से ही आभास होता है कि उदासी और निराशा के बाद सुबह की प्रतीक्षा व्यर्थ नहीं हुई है। नाश और निर्माण में कविताएँ दो सीमाओं की हैं—उनमें 'नाश का तुम शाप या वरदान दे दो' से लेकर 'केसर रंग रंगे बन' तक का अवसाद और उल्लास सम्मिलित है।

'नाश और निर्माण' की रचनाएँ स्पष्ट रूप से कवि की दोहरी मन:स्थिति को रेखांकित करती हैं। रचनाएँ पढ़कर लगता है कि जैसे कवि किसी ऐसी संधि रेखा पर खड़ा है जहाँ एक रास्ता आगे जाकर मृत्यु की काली गहराइयों में खो गया है और जहाँ शताब्दियों का अंधकार जमकर चिरन्तन अस्तित्व की चट्टानों में परिणत हो चला है और दूसरा रास्ता उसके ठीक विपरीत उस ओर गया है, जहाँ सुबह की गुनगुनी धूप है और खुले हुए आकाश के नीचे फूलों के समुद्र में स्नान कर आई हवा मैदानों और पर्वतों पर संगीत बिखेर रही है।[2]

'धूप के धान' और 'शिलापंख चमकीले' के बाद उनका एक और काव्य संग्रह आया है—'अभी कुछ और'। लेकिन कवि के पास कहने के लिए कुछ नया नहीं है। प्रतीक, बिम्ब और शिल्प के क्षेत्र में नयी कविता की प्रयोगवादिता का समर्थन करने पर भी कथ्य के क्षेत्र में वे वहीं हैं जहाँ 'मंजीर' में थे। 'पृथ्वीकल्प' जैसा काव्य जिसे वे कास्मिक काव्य कहते हैं, रचने पर भी उनकी बाकी उक्तियाँ रोमांस और नारी शरीर के गिर्द घूमती हैं। 'धूप के धान' में घटना क्षेत्र भारत से हटकर अमेरिका हो गया है। भविष्य के प्रति सशक्त आस्था गिरिजाकुमार की कविताओं में हमें मिलती है, लेकिन कोई मौलिक जीवन दर्शन अभी नहीं मिला। गिरिजाकुमार मन से रोमानी भावुक और आदर्शवादी हैं और सिद्धान्त के स्तर पर मानवतावादी। उनकी रचनाओं में आदर्शों को देख कर उनकी वास्तविकता का परिचय पाने का साहसपूर्ण आग्रह नहीं मिलता।

उनके काव्य में प्रयुक्त बिम्ब सामान्यत कोमल हैं किन्तु विराट और परुष बिम्बों की भी क्षमता का अभाव नहीं मिलता। विषय की माँग के अनुसार उनके बिम्बों का आयाम व्यापक और स्वरूप उदात्त हो गया है और 'शिलापंख चमकीले' में संकलित देश में इसके उदाहरण मिल जाते हैं।

उनकी भाषा के विषय में 'धूप के धान' की समीक्षा करते हुए बालकृष्ण राव ने लिखा है कि उनकी भाषा में ग्रामीण शब्दों का प्रयोग कई जगह खटकता है ठीक वैसे ही जैसे सजे सजाए ड्राइंगरूम के सुन्दर सोफे पर पालथी मार कर बैठा हुआ मिट्टी सने पाँव और गोबर सने हाथों वाला देहाती।[3]

नयी कविता के स्थायी तत्त्वों का गिरिजाकुमार प्रतिनिधित्व करते हैं और नये कवियों में उनके अग्रणी होने पर भी कोई प्रतिवाद नहीं किया जा सकता है।

---

१ सं० नगेन्द्र लोकप्रिय कवि गिरिजाकुमार, पृ० ४६
२ वही ,, पृष्ठ १८
३ बालकृष्ण राव विवेक के रंग

रघुवीर सहाय

रघुवीर सहाय की 'सीढ़ियों पर धूप में' पहले पढ़ा था। उसकी जो धीमी सी याद है वह ऐसी है जैसे सहजभाव से अपने आसपास की कृत्रिमता को हटाकर कोई उन्मुक्त मन सीढ़ियों पर बैठा हुआ सर्दी की मीठी धूप खा रहा हो। वैसे भी कविता वही सफल मानी जाती है जिसमें वैयक्तिकता अपने सामाजिक सन्दर्भ से कटी हुई न हो। इस परिभाषा का सही उत्तर रघुवीर सहाय की कविताएँ देती हैं। हर प्रकार से आडम्बर, चकाचौंध और बोझिल बनाव से अलग उनकी कविता में किसी प्रकार की कृत्रिमता नहीं है।

दूसरा सप्तक', सीढ़ियों पर धूप में और फिर एक लम्बे अंतराल के बाद आत्महत्या के विरुद्ध उनकी काव्य चेतना के सहज विकास की शृंखलाएँ हैं। 'दूसरा सप्तक' की समीक्षा करते हुए प्रभाकर माचवे ने रघुवीर सहाय के लिए इन शब्दों का प्रयोग किया है—

"रघुवीर सहाय की कविताओं में ईमानदारी (कवि कर्म की सामाजिकता अनुभूति अर्थ में) अधिक है। अतः वैयक्तिक अनुभूतियों में निश्छल सुमगति भी उपलब्ध होती है। कवि ने मानो अपने बिखरते हुए मन और व्यक्तित्व में सन्तगठन (इंटिग्रिटी) लाने की दिशा में कविता को माध्यम रूप से चुना है। परन्तु चूँकि कवि की स्वानुभूति अल्प और लघु है—अतः जो विराट स्वप्न उसके नयनों में बसा है, उसके प्रति अनिश्चय और संशय उसमें जगता है।"[1]

कविता में प्रायः अतिवैयक्तिकता या अतिसामाजिकता का दोष आ जाता है जो उसे छायावादोत्तर गीतों या प्रगतिवादी कविता के समकक्ष खड़ा कर देता है, लेकिन रघुवीर सहाय की कविता गीत और सामाजिकता के बीच के मार्ग को स्वीकारती है।

रघुवीर सहाय की कविताओं में सब जगह ऐसे साक्ष्य मिलते हैं जो मानव अस्तित्व के डूबते हुए उत्सों को फिर प्रकाश में लाते हैं और थके ऊबे और उखड़े हुए लोगों को अपने जीने की क्रिया की गहराई और विशदता पर कविता के माध्यम से बल देकर हम में उस कम के लिए नया रस, नया महत्वबोध उत्पन्न करते हैं ताकि जीवन में अर्थ, उद्देश्य और मूल्य की खोज और प्रतिष्ठा कर सकें—

> शक्ति दो, बल दो हे पिता
> जब, दुख के भार से मन थकने आए
> पैरों में कुली की सी लपकती चाल छटपटाए
> इतना सौजन्य दो कि दूसरों के बिस्तर घर तक
> पहुँचा आयें
> कोट की पीठ मैली न हो, ऐसी दो व्यथा—
> शक्ति दो।[2]

---

१ प्रभाकर माचवे विवेक के रंग, पृष्ठ २१

२ रघुवीर सहाय सीढ़ियों पर धूप में

या

तट पर रख कर शख सीपियाँ
चला गया हो ज्वार हमारा
तन पर मुद्रित छोड गया हो सुख के चिन्ह विकार हमारा
जब सब कर, हम चुके हुए हो, सह सब, चुके हुए हो
जब हम कह सब, चुके हुए हों—
तब तुम तब तुम ज्वार हमारी तृष्णा के फिर आना
इस जहाज को बन्दर मे पहुँचा फिर जाना।

एक अखण्ड, अनाहत आस्था का स्वर है—

आज एक छोटी सी बच्ची आई, किलक मेरे क धे चढी
आज मैंने आदि से अत तक एक पूरा गान किया
आज फिर जीवन शुरू हुआ

'आत्महत्या के विरुद्ध' रघुवीर सहाय की उन कविताओ का सग्रह है जिसमे स्वत त्रता से लेकर आज तक देश के नाम पर किये गए अनाचारो से बौखलाए हुए व्यक्ति की प्रतिक्रियाए हैं। स्वतत्रता हमारे लिए मात्र राजनीतिक और भौगोलिक स्वायत्तता के अति रिक्त और कुछ नहीं है। विकामा क नाम पर केवल सशय ही प्राप्य है। वयक्तिक और सामाजिक दोनो ही स्तरों पर विश्वास खण्डित हुआ है और ये कारण किसी को भी विक्षुब्ध करने, विफलतावादी बनाने के लिए पर्याप्त हैं।

'आत्महत्या के विरुद्ध' की कविताएँ पत्रकार की सटीक प्रतिक्रियाओ के समान हैं। स्वाधीनता क बाद देश के भविष्य के प्रति भावुक होने के प्रमाण मिलते थे। पिछले कुछ वर्षों से अनेक सुदर भ्रातिया टूटने लगी हैं और जिस राष्ट्रीयहीनता का आभास सबको होने लगा है, य कविताए उसका सही प्रतिनिधित्व करती हैं। एक उदाहरण है—

बीस वप
खो गए भरमे उपदेश मे
एक पूरी पीढी जनमी फली फूली क्लेश म
बेगानी हो गई अपने ही देश मे
वह।

राजनीतिक चेतना के अतिरिक्त इस सग्रह म रूमानियत की अछूती अभिव्यक्ति और सौंदय क नितान्त नए बोध को व्यक्त करने वाली कविताए भी हैं जो साधारण क्षणो की असाधारणता व्यक्त करती हैं।

नयी कविता से लोगो को यह शिकायत रहती है कि किसी की भी कविताए हो— वे सब एक समान—अर्थात एक ही कवि की कृतियाँ लगती हैं, उनमे किसी भी तरह से व्यक्तित्व की छाप अथवा मौलिकता का कोई प्रयास नहीं दिखाई पडता। इस शिकायत के दायरे म हम रघुवीर सहाय को नही घेर सकते। यह शिकायत सन् '६० के बाद के नवोदित कवियो की रचनाओ म अधिक है जो अन्य कवियो को अपने पर हावी होने देत है, उनक प्रभाव को भटक कर दूर नही कर पात पर रघुवीर सहाय की कविता अपनी सीधी, सहज

ने नयी कविता की तीक्ष्ण धारा म एक द्वीप निर्मित किया है।[1] युद्ध और शांति के कथानक को लेकर भारतीय संस्कृति का मूल्यगत विवेचन करने वाली इस रचना का संदेश है कि प्रभु के मरण से नही परीक्षित के भविष्य से नियति आबद्ध है। मरण, मात्र रूपान्तरण होता है।

महाभारत के पात्रो राधा और कृष्ण को भारती ने 'कनुप्रिया' म भी लिया है पर 'अंधायुग' म जहाँ बुद्धि म समस्याओं को देखने का आग्रह है वहाँ कनुप्रिया' म सहज विश्वास और निश्छल भावुकता क त मय गहरे क्षणो के भीतर स समस्या तक पहुँचा गया है। कनुप्रिया म राधा कृष्ण स प्रमुख हैं। राधा ही वह सेतु है जिसके माध्यम से भारती ने भागवत क लीलाप्रिय, वेणुधारी कृष्ण और महाभारत क योद्धा इतिहास के निर्माता और महाबली कृष्ण के स्वरूपो का व्याख्यान किया है।

राधा और कृष्ण की प्रणय कथा को भारती ने जिस रूप म ग्रहण किया गया है वह पुरानी बात को नयी तरह से कहने का प्रयास मात्र नहा है। व राधा-कृष्ण के प्रेम को उन बडे आयाम म देखते हैं जो देशातीत और कालातीत कहा जा सकता है क्योंकि वह सार्वदेशिक और सार्वकालिक है। 'कनुप्रिया' क कृष्ण केवल वल्लभा के उपास्य नही हैं अपितु समूची भारतीय प्रतिभा के प्रतिनिधि हैं।

पूर्वराग, मजरी परिणय सृष्टि सकल्प, इतिहास और समापन वे पाँच खण्ड हैं जिनके द्वारा भारती ने राधा के सहज तन्मय क्षणो की ओर सकेत करने की चेष्टा की है। बाद मे कृष्ण का महान् आतककारी रूप सामने आता है जो राधा की सुकुमार कल्पनाओ से मेल नही खाता। किन्तु राधा का आग्रह है कि वह अपने प्रिय को इसी सहजता के स्तर पर सम झेगी और ग्रहण करेगी—क्योंकि प्रेम का आयाम सहजता का ही आयाम हो सकता है और दूसरे सब आयाम प्रेम के नही बुद्धि के हैं, राग के नही चिन्तन के हैं।[2]

'कनुप्रिया' की सबसे बडी शिथिलता उसकी भाषा है। भारती की भाषा रोमानी है जो रोमानी गीतो मे ता चलती है लेकिन भाषा का सदर्भोचित प्रयोग कनुप्रिया' म नही हुआ है। उर्दू के शब्दो का प्रयोग कथा की गरिमा को खडित कर देता है। तत्सम और देशज शब्दो के प्रयोग एकदम प्रतिकूल प्रभाव रखते हैं और राधा कृष्ण के प्रसग मे उनका प्रयोग विनाशकारी होता है क्योंकि जो देशकाल कवि चित्रित करना चाहता है—ये शब्द उसकी सभावनाओ को मिटा देते हैं।

सात गीत वर्ष (१९५९) की रचनाएँ वे स्फुट कृतियाँ हैं जिनमे विभिन्न प्रतिक्रियाएँ सयोजित हैं। ये रचनाए 'अंधायुग' और कनुप्रिया' जैसी सशक्त तो नही हैं लेकिन 'ठण्डा लोहा' वाली भावुकता से बहुत आगे निकल गई हैं।

भारती की कविताओ का पढते समय एसा प्रतीत होता है माना किसी बरसो से बद पडे कमरे म धीमी-सी सुगध वाली धूप जला दी गई हो—या पीले गुलाबो का कोई सलाब उमड आया हो।

---

१ रामस्वरूप चतुर्वेदी हिन्दी नवलेखन, पृ० १४

२ अज्ञेय विवेक के रग, पृष्ठ ११०

कुवरनारायण

'नयीकविता' के तीसरे अंक मे बालकृष्ण राव ने एक विशेष कवि के रूप म कुवरनारायण का परिचय दिया था। उस समय उनकी कुछ छिटपुट कविताए ही प्रकाशित हुई थी जिनके आधार पर कवि के आधुनिक जीवन की विषमताओ के प्रति जागरूक एव अनुभूतिशील व्यक्तित्व, परिष्कृत सौन्दर्यबोध और निहित शिल्प कौशल की यथेष्ट प्रतीति हुई।

उसके बाद से कुवरनारायण के तीन काव्य ग्रथ प्रकाशित हो चुके है—'चक्रव्यूह' 'परिवेश हम तुम' और 'आत्मजयी'। 'चक्रव्यूह' शब्द ही चारो ओर से महारथियो से घिरे हुए अभिमन्यु को साकार कर देता है। आज का हर सामान्य व्यक्ति अपने अपने परिवेश मे सामाजिक विषमताओ से घिरा हुआ हर पल उठ खडे होने वाले दुखो के सम्मुख अपने को अभिमन्यु की तरह ही हताश पाता है।

कुवरनारायण की रचनाओ से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि जीवन की घनीभूत भावनात्मक जटिलता के बीच उसकी विषमताओ का स्वय अनुभव करते हुए एक सुस्थिर गभीर जीवन दृष्टि पाने के लिए ईमानदारी से प्रयत्नशील है और सभवत इसी विशेषता को लक्ष्य करके उनके प्रथम आलोचक बालकृष्ण राव ने लिखा —

"श्री कुवरनारायण की कविता उस अधुनातन भारतीय व्यक्तित्व की प्रतिच्छवि है जो मूलत भारतीय होते हुए भी अध्ययन, चिन्तन और सभवत उससे अधिक स्थूल सम्पर्कों के प्रभाव से बहुत कुछ देशेतर गुणों रुचियो और प्रवृत्तियो से भी समन्वित हो गया है सहसा ऐसा लग सकता है कि श्री कुवरनारायण पर न केवल अग्रेजी कविता का गहरा प्रभाव पडा बल्कि उनकी काव्य प्रेरणा ही सीधे अग्रेजी साहित्य से आई है पर जहा तक मैं समझ पाया हूँ यह प्रभाव केवल प्रभाव ही है, उनके काव्य की मूल प्रेरणा भारतीय ही है।[1]

नयी कविता मे पलायनवादी वृत्ति का उल्लेख करते समय जिन कवियो के नाम गिनाए जाते हैं उनमे कुवरनारायण को भी शामिल कर लिया जाता है पर उनकी कविताएँ जीवन के समक्ष उसके वास्तविक रूप को अनुभूत करके एक दृष्टता प्राप्त करने का प्रयास है।

अपने लेख म बालकृष्ण राव ने आगे कहा है—"इन कविताओ म सहज कवित्व नही है कठिनता से एक आध पक्ति ऐसी मिल जाती है जो कवि मन से बरबस फूट निकली जान पडती है अन्यथा सभी के पीछे प्रयास और प्रयोग की छाया दिखती है।'[2]

'चक्रव्यूह और परिवेश हम तुम' की कविताएँ जिस सहजता का अभिव्यक्त करती हैं उससे कुवरनारायण के विषय म उक्त कथन, कथन न लगकर आरोप लगने लगता है। उदाहरण प्रस्तुत है—

सत्य होगा वह तुम्हारा स्वप्न जो
जिदगी को चाहने के योग्य कर दे
हर ललकती दृष्टि के विश्वास म

---

१ बालकृष्ण राव विवेक के रग, पृष्ठ ४६
२ बालकृष्ण राव नयी कविता ३, पृष्ठ ७८

औ फिर हर बात का उत्तर भर ।[1]

तारों की खामोशियों में
गूंजता उत्कट उदाहरण
यह मेरा प्रश्न है।
विशाल आडम्बर
अपनी धूमिल दृष्टि की सम धार में मैंने
प्रश्नाहत जिस विराट हिम पुरुष को सम्बोधा
क्या वह सच उत्तर था ?[2]

इन हाथों में मसृण सुख पकने के बाद
अब कुछ भी दे सकता हूँ
जिन्दगी के लिए
प्यार एक खूबसूरत वजह है
लेकिन जिन्दगी के लिए
दिल से कहीं अधिक जगह आत्मा में है।[3]

'परिवेश : हम तुम' 'चक्रव्यूह' से और आगे है। चक्रव्यूह में अगर कहीं दुरूहता है तो 'परिवेश : हम तुम' को लेकर ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। पर कुँवर नारायण की वास्तविक उपलब्धि उनकी नवीनतम कृति 'आत्मजयी' है। 'आत्मजयी' नचिकेता की परिचित पर विस्मृत कथा का एक नया अर्थ, एक नया सन्दर्भ प्रस्तुत करती है। कई बार यह कहा गया कि 'आत्मजयी' भारतीय कथानक का माध्यम लेकर पश्चिमी विचार धाराओं का प्रतिपादन करती है। आज नचिकेता और यम की कथा जीवन की उलझनों के सम्मुख अपना महत्त्व खो चुकी है। जीवन से मोक्ष पाने की किसी में न उत्सुकता है और न ही अवकाश और आज के समय से बहुत पिछड़ी हुई होने के कारण कठोपनिषद् की यह कहानी सहज स्वीकृत नहीं है। 'आत्मजयी' का नचिकेता पिता को एक बीमार बूढ़ी गाय दान करते देख कर विद्रोह से भर जाता है, वह यह कहा पूछता कि हे पिता, आप मुझे किसे दान करेंगे ? अपितु वह परम्परापरक, गली हुई घृणित और जर्जर मान्यताओं और रूढ़ियों का प्रतिकार करता है। 'आत्मजयी' सही अर्थों में पश्चिमी विचारधारा (अस्तित्ववाद) का भी प्रतिनिधित्व नहीं करता। अस्तित्ववाद की जड़ें युद्ध से त्रस्त यूरोप के प्रत्येक व्यक्ति के मन से सम्बन्धित हैं और इसी कारण 'अपने अपने अजनबी' में बर्फ में दफन सल्मा और योके की अनुभूतियों से हम तादात्म्य नहीं कर सकते और कामू के 'आउटसाइडर' की व्यथा नहीं जान सकते। 'आत्मजयी' का नचिकेता मृत्यु से वैसा साक्षात्कार नहीं करता है—वह यह स्पष्ट करता है कि

1. कुँवरनारायण : चक्रव्यूह, पृष्ठ १०८
2. कुँवरनारायण : चक्रव्यूह, पृष्ठ ७७
3. कुँवरनारायण : परिवेश : हम तुम, पृष्ठ ४८

वदिक विचारधारा से आरंभ होकर जीवन और मृत्यु के मध्य संघर्ष की जो शृंखला है वह आज भी नहीं टूटी है।

प्रकृति का जहा कहीं भी कुवरनारायण की कविताओं में वर्णन है, वह शृंगार का अनुमोदन न होकर दृश्य जगत के अनेक जीवंत चित्रों का आलेख है।

चक्रव्यूह की समीक्षा करते समय जगदीश गुप्त ने एक प्रश्न किया था—

'जिस कवि ने चक्रव्यूह से आरंभ किया है उसकी कविता आगे किस क्षेत्र में प्रवेश करती है यह देखना है।'[1] और कुवरनारायण की कविताओं का भाव क्षेत्र का भावी रूप आज 'परिवेश हम तुम' और 'आत्मजयी' में साकार हो गया है।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

कविता में अत्यधिक पच्चीकारी करना अस्वीकार कर नयी कविता में सरल, पर कुछ नया कहने की प्यास ने कवियों को पर्याप्त व्यायाम करवा दिया और साधारण पाठक की दृष्टि में नयी कविता दो तीन शब्दों को पंक्तिबद्ध करके गद्य की पंक्ति को कविता की तरह लिखना मात्र रह गई। और ऐसे नयी कविता विरोधी वातावरण में जब सर्वेश्वर ने यह कहा कि वे काव्य में शिल्प की अपेक्षा उसके कथ्य और रूप की अपेक्षा भाव पर अधिक बल देते हैं तो एक सहज प्रश्नमयी जिज्ञासा जाग्रत होना स्वाभाविक हो जाता है। पर वास्तव में उनका वक्तव्य केवल शब्दमात्र नहीं है उनमें कहीं भी नयी कविता की तथाकथित बारीकी और जटिलता नहीं मिलती, भाषा या अभिव्यक्ति सम्बन्धी कोई भी दुरूहता उनकी कविता में नहीं है और इसी कारण नयी कविता में मीनमेख निकालने वाले आलोचक सर्वेश्वर की कविता को उसके दायरे से बाहर ही रखते हैं।

'काठ की घंटियाँ' तीसरा सप्तक के साथ साथ ही प्रकाशित हुई थी। उन कविताओं पर उत्तरछायावादी कविताओं की भावुकता की छाप स्पष्ट दिखाई पड़ती है। भावावेश का वह बवण्डर यथार्थ के मामन सही अर्थों में गुजर हुए कारवाँ की धूल के बराबर ही था और सर्वेश्वर को यहां मोहभंग दाम में मिला था। आरम्भ में यह दृष्टि आधुनिक जीवन के यथार्थ का परिणाम थी, जिसने वस्तुओं और स्थितियों को उनके वास्तविक रूप में सामने ला खड़ा किया था पर नए कवियों में यह निर्भ्रांति अपने प्रति मोह में परिणत हो गई। इस क्षेत्र में सर्वेश्वर की स्थिति बहुत कुछ ऐसी है और यह मनोभाव निरंतर उनके काव्य में लगा चला आ रहा है, जैसे कवि को इससे मुक्ति नहीं। ऐसा लगता है जैसे कवि अपने इस भाव से मुक्त होना चाहता भी नहीं।'[2]

सर्वेश्वर की कविताओं में आस्था और विश्वास के स्वर पर्याप्त प्रबल हैं—

लगा मुझको उठाकर कोई खड़ा कर गया
और मेरे दर्द को मुझसे बड़ा कर गया

---

[1] बालकृष्ण राव विवेक के रंग पृष्ठ ..
[2] रघुवंश विवेक के रंग, पृष्ठ ११८

आज पहली बार।[1]

हर पग पर सत्रास और अस्तित्वबोध की बात करने वाली स्वातत्र्योत्तर कविता के बीच सर्वेश्वर की कविताओं में भोर की पवन जैसी ताज़गी मिलती है। नगर बोध और यान्त्रिकता के मध्य उनकी कविताएँ खेतों की हरियाली से भरी हुई हैं।

रोमांटिक स्व के दायरे से सर्वेश्वर उबर आए हैं। कोरी भावुकता का उफान उनमें नहीं है—अपितु एक तटस्थता है जो मन के आवेग को अभिव्यक्त नहीं होने देती।

'काठ की घंटियाँ' के बाद 'बाँस का पुल' और 'एक सूनी नाव' के नाम जुड़ते हैं। बाँस का पुल व्यक्तित्व की उस विशेषता का प्रतीक है जो परिस्थितियों से जूझते हुए व्यक्ति को बाँस की तरह लचीला बना देती है, जिससे वह परिस्थिति के थपेड़े तो खाता है लेकिन उसका मह उसे झुकने या टूटने नहीं देता—

कितनी मधुर है तुम्हारी स्मृति।
लेकिन कितना करुण है उसका
उन दीवारों में भटकना।
फिर भी कितना साहस है मुझमें कि मैं बैठा
वसन्त की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।[2]

आज तक राष्ट्र के प्रति कवि का कर्त्तव्य आँख मूद कर नेताओं की प्रशस्ति करना झण्डे का गीत गाना या राष्ट्रीय एकता के लिए लगाए जाने वाले थोथे नारों की आवृत्ति करना ही रह गया था। गणतन्त्र में भी कवि मात्र राजकवि का काम कर रहा था लेकिन पिछले कुछ वर्षों से ये प्रशस्तियाँ कड़वी उक्तियों में बदल गई हैं। नए कवि को उजली खादी से वितृष्णा होने लगी है और गांधी टोपी उसके लिए पाखण्ड का प्रतीक बनकर रह गई है। सर्वेश्वर का प्रगति का गीत है—

बड़े भाग्य से
मिली हमें आज़ादी
पीठ तो गई अपनी
चाहे ढोएँ लादी।[3]

यह कायरों का देश है
यहाँ लोग देखने को आगे देखते हैं
चलने पर पीछे चलते हैं
घुनी लकड़ी के धनुष बनाते हैं
और विवेक के नाम पर

---

१ सर्वेश्वरदयाल सक्सेना काठ की घंटियाँ पृष्ठ ३०६
२ सर्वेश्वरदयाल सक्सेना बाँस का पुल, पृष्ठ २४
३ सर्वेश्वरदयाल सक्सेना बाँस का पुल पृष्ठ २६

प्रत्यचा चढाने से मना करत हैं।[1]

कहने को य पक्तिया अराष्टीय ठहराई जा सक्ती हैं पर इस कविता की अतिम पक्ति उस जीवनेच्छा को प्रकट करती है जो व्यक्ति को जीवित रहने के लिए प्ररित करती है—

फिर भी मैं साहस का,
एक गीत गाना चाहता हूँ
—जिन्दगी का एक गीत।[2]

एक सूनी नाव क स्वर एकदम अछूते हैं। इनमे एक ओर समपण का एकात सुख है, तो वही पिटीपिटायी परम्पराओ का अस्वीकार भी है—

नरम घास पर टूट
गिरी सूखी टहनी
मैंने तुम्हारी गोद म
अपना मुह छिपा लिया।[3]

और

कुछ और नाम देना चाहता हू
उस दुख को
जो हमारे बीच आकर खुद बदल जाता है
उस सुख को
जो अलग अलग तरह से
हमे छल जाता है।[4]

और

लीक पर वे चलें जिनके
चरण दुबल और हारे है
हम तो जो हमारी यात्रा से बने
ऐसे अनिर्मित पथ प्यारे हैं।[5]

सर्वेश्वर उन कवियो म से हैं जो सही अर्थों म जीवन से जुडे हुए हैं और समकालीन सत्य और यथाथ को अपने हाथो से दूर नही जाने देते। 'वह मूल गुण जो कवि को कवि बनाता है और जो कवि दृष्टि को रवि दष्टि म अधिक गहरे पहुँचाता है वह गुण इनमें है हमारे जीवन के अधूरेपन का पूरा व्यास नाप लेने वाली हमारी दृष्टि को बराबर बढ़ाने की—अधिक विस्तार और गहराई दोना देने की—उनम एक उत्कट बेचनी है छूछे आकारों क विरुद्ध एक समथ व्यक्ति का विद्रोह उसकी वचनी के मूल म उसका अगाध विश्वास है। यह विश्वास प्रेरणा दने वाला है कम का उत्स है। कवि की आस्था एक ओर उसे दृष्टि देती

१ सर्वेश्वरदयाल सक्सेना बाँस का पुल, पृष्ठ ७८
२ सर्वेश्वरदयाल सक्सेना बाँस का पुल, पृष्ठ ७८
३ सर्वेश्वरदयाल सक्सेना एक सूनी नाव, पृष्ठ १४
४ सर्वेश्वरदयाल सक्सेना एक सूनी नाव, पृष्ठ ५
५ सर्वेश्वरदयाल सक्सेना एक सूनी नाव, पृष्ठ ३१

है कि जीवन की सम्पूर्णता को रच सकें, और दूसरी ओर उन्हें कर्मठ और कुण्ठाविहीन भी बनाती है।[1]

इन कवियों के अतिरिक्त और कई कवि हैं जिनका महत्त्व किसी प्रकार कम नहीं है और नयी कविता को विकसित करने में उनके अग्रगामी को बढ़ाने में जिनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

भवानी प्रसाद मिश्र इस शृंखला के ऐसे कवि हैं जिनकी कविता केवल प्रयोग पर आधारित नहीं है अपितु यह कहना अधिक उचित है कि नाम्यवादी कवियों के मध्य भवानी प्रसाद मिश्र ही ऐसे हैं जिनकी कविता में गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव बहुत स्पष्ट है। गीतफरोश, सन्नाटा और सतपुड़ा के जंगल उनकी कविताओं के ताजे स्वर की प्रतीति हैं। अँधेरी कविताएँ और चकित है दुःख इनकी हाल में प्रकाशित रचनाएँ हैं।

जगदीश गुप्त की कविताएँ उन अछूत शिल्पों का संकलन हैं जो उनके चित्रों की तरह कई रंगों की योजना से परिपूर्ण हैं। जगदीश गुप्त की कविताओं का स्वर रूमानी है छायावादी कविता की गीतात्मकता उनकी नाव के पाँव और शब्ददंश में कुछ अधिक है पर उस गीतात्मकता में भी अनुभूति का नयापन है। प्रकृति विशेषतः हिमालय के प्रति मोह उनकी 'हिमविद्ध' में व्याप्त है।

श्रीकांत वर्मा उन नये कवियों में से हैं जिनकी कविता में आधुनिक जीवन के संत्रास से उत्पन्न कटुता स्पष्ट है। दिनारंभ और मायादर्पण की कविताएँ अपनी संश्लिष्टता में भी पूर्ण हैं क्योंकि जीवन की जिस अनिश्चितता और व्यग्रता को उन्होंने स्वर देना चाहा है वह अपनी सम्पूर्ण व्यथा सहित अभिव्यक्त हो जाती है। श्रीकांत की कविताओं में भावबोध के स्तर पर दुरूहता और अस्पष्टता है पर अपने अकृत्रिम शिल्प और सीधी सहज अभिव्यक्तियों के कारण ये कविताएँ नयी कविता में विशिष्ट स्थान रखती हैं।

बालकृष्ण राव की 'रात बीती', अद्धरात्री और उनके सानेट नयी कविता के केवल मुक्तछन्द के एकछत्र राज्य में भले परिवर्तन लगते हैं। शंभुनाथ सिंह का माध्यम मैं गीतात्मकता का परिचय देता है।

कविता के क्षेत्र में पिछले कुछ वर्षों में महत्वपूर्ण योग देने और काव्य को अनुभूति का नया स्वर देने वाले कवियों में कैलाश वाजपेयी, अशोक वाजपेयी, इंदु जैन, अजितकुमार, राजीव सक्सेना, मलयज, चन्द्रकांत देवताले, दूधनाथ सिंह, ममता कालिया, स्नेहमयी चौधरी (एकाकी दोना) और गंगाप्रसाद विमल के नाम सुविधा से लिए जा सकते हैं। कैलाश वाजपेयी की कविताओं में एक अजीब सी ऊब मिलती है जो जीवनचक्र, देशचक्र और समाज चक्र की एकरसता से उत्पन्न है। समाज और राष्ट्र के प्रति तीखे व्यंग उनके 'संक्रांत' और 'देहान्त से हटकर' संकलनों में मिलते हैं। अशोक वाजपेयी का 'शहर अब भी संभावना है' जीवन की तमाम हताशा के बाद भी नए सिरे से सब कुछ संपादित करने के लिए प्रयत्नशील है। इंदु जैन की चौसठ कविताएँ प्रेम के उस दुर्निवार रूप की अभिव्यक्ति हैं जो पहले की कविताओं में केवल स्थूल शृंगार का शिकार होकर रह गया था। अजितकुमार की अकेले कण्ठ की

[1] अज्ञेय : नयी कविता

पुकार' आशा और निराशा की स्थितियों का आलेख है। अन्य कवि अपने सकलनो के माध्यम से नहीं अपितु अपनी कतिपय कविताओ के माध्यम [redacted] ध्यानाकर्षित करते है—विमल को अपवाद मान लें—उनकी कविताए विजप' (सहकारी प्रयास) म सकलित हैं। अकविता के कवि के रूप म परिचित होने पर भी विमल की रचनाओ म वह बीभत्सता नहीं है जो अकविता की अनिवार्यता बन गई है।

गुजराती कवि

उमाशकर जोशी

गुजराती नयी कविता की उदभावना उमाशकर जोशी की कविताओ स हुई थी। अज्ञेय को जो स्थान हिन्दी नयी कविता के क्षेत्र म प्राप्त है, वही स्थान उमाशकर जी का गुजराती नयी कविता म है। विश्वशाति निशीथ प्राचीना, आतिथ्य, वसतवर्षा और महाप्रस्थान की शृखला उनके नवीनतम सग्रह 'अभिज्ञा' से आगे बढती है।

इस ग्रथ म उमाशकर गाधीयुग के कवि हैं लेकिन उनका काव्य केवल शुद्धता कृत्रिम आदर्श और काल्पनिक यथार्थ पर ही बल नही देता अपितु युगानुकूल प्रवृत्तियो के अनुरूप स्वय को ढालता रहता है। 'विश्वशाति' म जहां विश्व के विशाल प्रासाद म सत्य, प्रेम और सौंदर्य की स्थापना के माध्यम से विश्वशाति का प्रसार और गाधीवादी सिद्धात अनिवार्य हैं, वहा 'गगात्री' म गगोत्री की उच्छलत धारा का प्रवाह लिए स्वाधीनता सग्राम का उन्माद है। चुसी हुई गुठली म भी अनुभूति की ज्वाला उन्हे दिखाई पडती है और समाजवादी विचारो के प्रतीक हसिया, हथौडा थाली के सौंदर्य के साथ जठराग्नि का कोप तथा बुलबुल और भिखारिन का सवाद भी आकर्षित करता है।

प्रेम की व्यजना साहित्य म सदा से होती आई है और 'निशीथ' ने गुजराती प्रेमकाव्यो को एक नयी दिशा प्रदान की है। पाँचवें दशक मे प्रकाशित प्राचीना महाभारत भागवत और जातक कथाओ स ली गई सात कथाओ पर आधत है जिसम स हर एक म कोई न कोई रहस्य स्पष्ट होता है जो आज क सदर्भ म आवश्यक और उपयोगी है। सच तो यह है कि मानवता प्रेम प्राचीन वस्तुओ क निरूपण से किसी न किसी प्रकार ग्रथ सघटन द्वारा उभर आता है जो प्राचीन पौराणिक मान्यता और गौरव को एक नया अर्थ प्रदान करता है। व्यापक सत्य रूप प्रेम को कवि की कल्पना ग्रहण कर उसे वस्तु के अनुरूप कलेवर प्रदान करती है।

किन्तु य सकलन नही छिन भिन्न छु और क्या क्या साथ ले जाऊँ जसी व्यक्तित्व के विघटन सम्बधी स्वतत्र कविताए नयी कविता को दिशा देती है। उनका नवीनतम सकलन अभिज्ञा यत्र-तत्र प्रकाशित कविताओ का सकलन है जिसम विचारो की विविधता और बाहुल्य स्पष्ट है।

एमे तो प्रह्लाद पारीख की बारी बाहर नयी कविता की पहली कृति मानी जाती है जिसने नयी कविता के कथ्य को परम्परागत प्रतिमानो से अलग एक नया स्वरूप प्रदान किया किन्तु उमाशकर जोशी का काव्य उस अकेली कृति को एक विशद आयाम देता है।

हिन्दी म नयी कविता के स्वरो का आभास जस निराला की रचनाओ म मिलता है किन्तु निराला की गणना छायावादी साहित्यकारो म ही होती है उसी प्रकार प्रह्लाद पारीख की रचना म भी आभास मात्र मिलता है उसे कोई निश्चित मोड नही कह सकते।

उमाशकर जोशी को स्वातन्त्र्य प्रेम, देशभक्ति, दीनजन समभाव जस विषय आकर्षित करते हैं पर उनकी कल्पना किसी सँकरे वृत्त म सीमित नही रहती। उनकी कविता का मुख्य स्वर मानव का आत्मविस्तार है। कवि को मनुष्य की सांस्कृतिक यात्रा म अत्यधिक रुचि है।

उमाशकर की कला सम्बन्धी जागरूकता द्रष्टव्य है। कवि का दृढ विश्वास है कि 'सदभाग्य स ही जीवन म शाश्वत मूल्यो के अपूर्व और नवीन आविर्भाव की साधना म नयी कविता म पहल अन्य शब्दो पर विशेष बल दिया जाता है क्योकि नवीनता तो काल क बहाव के साथ लुप्त हो जाती है और काव्यतत्त्व पर इसकी जवाबदेही का आधार रहता है।"[1]

कवि जीवन, स्वजीवन और समग्रजीवन के प्रति उतना ही जाग्रत है जितना कि कला के प्रति। इसी कारण उसमे एक प्रकार की शुद्धता आत्मनिरीक्षण की वृत्ति और दर्शन की विशालता समाहित हो जाती है।

कवि की साहित्य यात्रा म कितने ही नवीन उन्मेष दिखाई पडते हैं। आरम्भ म जसे व्यक्ति के स्थान पर विश्वमानव की स्थापना का लक्ष्य है वही बाद की कविताओ म आत्म शोध और आत्मनिरीक्षण की वृत्ति बन जाता है।

निशीथ की विवेचना करते हुए विष्णुप्रसाद त्रिवेदी ने उमाशकर के लिए जिन उद्गारो को स्पष्ट किया है वे आज भी सच्चे ठहरते हैं, इतना ही नही कवि म जो शक्ति और सामर्थ्य तब थी, वह आज सिद्धि रूप मे मिलती है।

'सुकुमार हृदय तेजस्वी बुद्धि समर्थ कल्पना और गहन चिन्तन से समृद्ध व्यक्तित्व का परिचय निशीथ म होता है। उमाशकर जोशी हमारे नवीन और अग्रणी कवि साहित्य को प्रसार देने वाले साहित्यकार और गुजरात की सम्पत्ति हैं। उनकी रचनाओ का उल्लेख अन्य प्रातो मे हम गौरव से कर सकते हैं, और मान सकते है कि अन्य प्रातो म भी उनके समान कवि, कम ही होग।[2]

---

१ जयत पाठक आधुनिक कविता प्रवाह, पृ० १२२ पर उद्धृत निशीथ का निवेदन सदभाग्ये, जीवन मा शाश्वत मूल्यो ना अपूर्व के नवीन आविर्भाव ना साधना मां 'नवी कविता' मां प्रथम करता बीजा शब्द उपर जे विशेष भार मूकवा मा आवे छे, केम के नवीन पणु तो कालना वहेवा साथे लुप्त थवानु अने त्यारे अतगत काव्य तत्व उपर ज एनी जोवादोरी नो आधार रहेशे।

२ सुकुमार हृदय, तेजस्वी बुद्धि, समर्थ कल्पना अने ऊन्डा चिंतन वडे समृद्ध व्यक्तित्व नो परिचय निशीथ मां थाय छे। श्री उमाशकर जोशी आपणोनवीन पण अग्रणी कवि, साहित्य ना अनेक प्रातसर करनार साहित्यकार, गुजरात नी सूक्ष्म सपत्ति छे तमनी कृतिओ नो उल्लेख बीजा प्रांतों मां आगळ आपणे गौरव थी करी शकीए छिए अने मानीए छिए के बीजा प्रांतो मां पण एमना जेवा साहित्यकार गण तर ज छश।—गुजरात साहित्य सभा, ३८ का ग्र थस्थ वाङमय—पृ० ७५

राजेन्द्रशाह

वतमान कवियो मे अग्रणी, राजेन्द्रशाह की कविता सही अर्थों म नयी कविता के अतगत नही रखी जा सकती। उनकी स्थिति वही है जो हिन्दी म बच्चन या नरेन्द्र शर्मा की है। बच्चन और नरेन्द्र शर्मा आज भी सक्रिय हैं किन्तु उनकी कविता की सवेदना का स्वर किसी भी अथ म आधुनिक नहीं है। इसका अथ यह कदापि नही है कि इन कवियो का साहित्य क्षेत्र म महत्व ही नही रह गया है। गुजराती कविता म हिन्दी कविता की तरह छादस और अछादस कविताओ के खेमे अलग अलग नही हैं, इस कारण भी सामयिक कवियो म राजेन्द्रशाह का महत्त्व किसी प्रकार खण्डित नही होता है। किन्तु नए (सामयिक नहीं आधुनिक क अथ म) कवियो की सवेदना और अभिव्यक्ति का क्षेत्र राजेन्द्र की कविताओ से पूणतया पथक है। गाधीयुग म, देश की एकता के लिए ग्रामीण जीवन का चित्रण अनिवाय था, किन्तु अब गीता म जिस ग्राम्य जीवन का वणन होता है वह किसी रामराज्य की स्थापना क कारण नही है और न ही ग्रामों के प्रति किसी प्रकार का अतिरिक्त मोह ही कवि मे है। धरती के ठोस यथाथ के विष को सहने के लिए जसे उनके पास गीता का अमृत है जिससे यथाथ और कल्पना दोनो एक साथ चलती रहती हैं।

स्वच्छन्दतावादी कवियो के प्रणय, प्रकृति और रहस्य, राजेन्द्र की कविताओ के मूल स्वर हैं। ध्वनि आदोलन, श्रुति और शात कोलाहल की छन्दबद्ध रचनाएँ इन्ही चार विषयों को विशिष्ट आत्मसवेदन स पुष्ट करके प्रकट करती हैं। ईश्वर के अस्तित्व को भ्राति मानने वाले इस युग म अपने शून्य, रिक्त मन को यह समझाना कि तू पूण म रमकर ही पूणता प्राप्त कर सकता है, कवि क दृष्टिकोण को स्पष्ट कर देता है—

तु रिक्त थे समर या
त्यवी ने तु थाम
ने शून्य थे
हृदय हे।
तु पूण माहि रम पूण थी हे अपूर्ण[1]।

अपने आरभिक काव्य ध्वनि म वे इसी रहस्य की प्राप्ति की वेदना का आस्वाद लेते रहे हैं और रहस्यवादियो के लहजे म ससार को उद्देश्यहीन भी कहते हैं और साथ ही नयी कविता के आत्म की खोज' क, मैं स मैं तक की यात्रा के चिह्न भी उनकी कविता मे मिल जाते हैं।

राजेन्द्र के गीता म नानालाल और कात की लययुक्त शली का एक नया रूप मिलता है। नानालाल का अनुकरण करन वाले कवियो के समान इनक गीतो म भावना की गहराई और कल्पना का अभाव नही है और न ही उनके गीत कोमलकात पदावली का खिलवाड हैं। इनक गीतो म मारवाडी और बगला के लोकगीतो क साथ ही व्रज के लोकगीतो की छाप मिलती है।

'ध्वनि की समीक्षा करते हुए उमाशकर जोशी ने उन्हे सौंदयलुब्ध कवि कहा था

१ राजेन्द्रशाह ध्वनि, ५०८

कल्पना म जी नेता है या फिर कुण्ठा और अवसाद ही उसके पल्ले पडते है । अषाढ के पहले दिन का सौंदर्य कालिदास ने पहले पहल वर्णित किया पर आज के कवि मे वह मुग्ध भाव एक परिवतन के साथ मिलता है जिसम जीवन का अनुभव है। सुरेश दलाल की कविता म अषाढ का पहला दिन विराट श्यामल आकाश के वक्ष स झरते हुए पत्ता-सा उतरता है और हर श्वास म वियोगी अपने प्रिय का याद करता है और सोचता है कि हरे-हरे पत्ता मे यह आखिर कौन झर रहा है ? पर अपने किसी विशिष्ट स्वप्न की उसकी खोज जारी है कि कहीं से भटके हुए सपने वापिस मिल जाए।

किशोर प्रेम का जसा वायवी रूप भारती की आरम्भिक कविताओ म मिल जाता है जिसम प्रतीत कटा हुआ तो है पर कवि फिर भी कहीं उस सबके लिए कसक उठता है जो बीत चुका है, वसा ही सुरेश दलाल की कविताओं के लिए कहा जा सकता है।

ढलती हुई साझ, सूय का दमित तेज पर व्यथित इस सबस अछूता अपने आपस ही बातें करके स्वय को भुलावे म रखे रहता है। कोई कितना भी चाहे किन्तु उस सबसे निर्लिप्त अपने मन म निविड एकात मे लिप्त रहता है जैसे अपने अस्तित्व के एकान्तिक सुख को भोग रहा हो। यह एकान्तिक सुख का क्षण उस अथ मे नहीं आया है जिस अथ म अस्तित्ववादी दशन का क्षणवाद प्रयुक्त होता है—यह क्षण सुख की अनुभूति का एक क्षण है जिसका क्षणवाद से कोई सम्बन्ध नहीं है।

हेमन्त देसाई

गुजराती क उन कवियो म जिनकी स्फुट रचनाएँ किसी सग्रह म प्रकाशित नहीं हुई है अथवा जिनके नाम पर किसी एक सग्रह का नाम लिया जाता है—हेमन्त देसाई एक हैं। सग्रह का प्रकाशन या अप्रकाशन कवि की क्षमता का प्रतीक नहीं है, पर हेमन्त देसाई का सग्रह इगित हाल ही मे प्रकाशित हुआ है। उनकी कविता का मूल स्वर प्रेम और राग है युवा हृदय क लिए प्रीति का उन्मेष स्वाभाविक है अत प्रेम की मस्ती और सफलता असफलता स उत्पन्न हुए विषाद म मिलन के लिए आतुर कवि को मुक्तकण्ठ स गाने के लिए प्रेरित करता है। मुग्ध प्रेम के रग, विविध भावस्थितियो म नये नये रूप लेकर स्पष्ट होते हैं और अभिव्यक्ति की विभिन्न रेखाओ म उसकी आह्लादक छटा दिखाई पडती है।

ऋतु काव्य और प्रकृति सम्बन्धी रचनाएँ, प्रणय सम्बन्धी रचनाओ स किसी अथ मे हेय नहीं हैं। इन रचनाओ मे कवि किसी भाव या विचार को सामान्य रूप मे लेकर प्रकृति स सम्बद्ध कर देता है।

वतमान जीवन की व्यग्रता, उसकी उथलपुथल और व्यथा कवि की अनेक रचनाओ म व्यक्त हुई है। ऐसी कृतियां अधिकाशत नयी काव्य रीति म ढली रहती हैं। इतना ही नहीं, काव्य म विविध रूपो का प्रयोग भी उन्होंने दक्षता स किया है। सानेट और गजल पर इनका विशेष अधिकार दिखाई पडता है हाँ गीत रचना म वे अधिक सफल नहीं हुए हैं।

हेमन्त देसाई सच्चे और शक्तिशाली कवि हैं यह निस्सकोच कहा जा सकता है। उनके काव्य म अभी पर्याप्त सभावनाएँ हैं।

ज्योतिष जानी

ज्योतिष की कविताओं में कवि की मानसिकता और कवि के चरित्र की परतों को उघाड़ने का (पर्दाफाश करने का नहीं) एक सजग प्रयास मिलता है। कवि याने मानव मन की उथलपुथल को प्रतीक और प्रतिमा में उभारकर रख देती हैं ज्योतिष की कविताएँ। ज्योतिष उन कवियों में से हैं जिन्हें परम्पराओं का मोह तनिक भी नहीं व्यापता और सम्भवतः इसी कारण उनका काव्य रूढ़िवादी आलोचक की दृष्टि में 'तमस्कार' (अद्भुत नहीं) में विश्वास रखता है। अपनी व्यथा व्यंजना और छिन्नभिन्नता में हार जाना कवि का स्वभाव नहीं है अतः उपहास करने की जो वक्रविधि उसने अपना ली है वह कहीं-कहीं हास्यास्पद हो जाती है ऐसा आलोचकों का विचार है। गम्भीर बातों को हल्का बनाकर कहना उन्हें पसन्द है। ज्योतिष के संग्रह 'फीण नी दीवालो' की विवेचना करते हुए श्री नयन पाठक ने लिखा है कि 'आज की कविता के लक्षण तो अब सुपरिचित हो गए हैं। कवि विवेक पहले इन लक्षणों को अपनी कविता पर आवृत बताता है फिर विवेचक कवि उन्हीं ढाँचा पर कविता लिख देता है। स्टीफेन स्पेन्डर ने कविता के लिए जो कहा है कि Even Poet critic turns ten critic poets —यह आज की कविता पर पूरा उतरता है क्योंकि आज की इस कविता में आशय और अभिव्यक्ति एक ही साँचे में ढल गए हैं। राजेन्द्र उमाशंकर और उशनस को उनकी कविता में ढूँढा जा सकता है पर ज्योतिष, मसूरी और मणिलाल को उनकी कृतियों में नहीं पहचाना जा सकता। अतः फीण नी दीवालो में विवेचन के लिए क्या है ?

यह दृष्टिकोण सहानुभूतिविहीन होने के कारण एक ही लाठी से सबको हाँकने के समान है। ज्योतिष की कविता मसूरी या मणिलाल की कविता किस प्रकार हो सकती है ? व्यक्तिवादी काव्य होने पर भी नयी कविता संवेदना के स्तर पर जिस पीड़ा को भोगती है (केवल प्रेम की पीड़ा या प्रकृति में परमात्मा की छाया के स्वप्न में नहीं डूबती) वह पीड़ा समाज में व्याप्त उस व्यापक ऊहापोह और सन्त्रास से उत्पन्न हुई है जो केवल नयी पीढ़ी का दाय है।

नलिन रावल

नलिन रावल ने अपने एक ही संकलन 'उद्‌गार' में कवि की वे तमाम विशेषताएं समेट ली हैं जिनके लिए एक नहीं अनेक अनुभवों की आवश्यकता पड़ती है। नलिन उन्मेषमान कवि नहीं है। उनकी रचनाएं सन ५० के आसपास पाठक आलोचक, दोनों वर्गों को आकृष्ट कर चुकी थीं। परम्परा का मोह उन्होंने कहीं नहीं छोड़ा है इसी से परम्परा और आधुनिकता उनके काव्य में समानान्तर चलती हैं।

प्रकृति के प्रति तल्लीनता का जो भाव नलिन में मिलता है वह नए कवियों में कम ही मिलता है। नलिन की जितनी रचनाएँ हैं, विषय की दृष्टि से उनका वैविध्य ध्यान खींचता है पर प्रकृति की ओर उनका झुकाव, जहाँ वर्णित प्रकृति नगर की नहीं है बहुत सुकोमल है।

नलिन की कविताओं में लाजवंती के पौधे जैसा सौकुमार्य और अनुभव की आर्द्रता हृदयस्पर्शी लगती हैं जो इस रूप में गुजराती गीत में भी प्रमुख रूप से मिलती है। अनुभूति का

दूसरा क्षेत्र नगर है जिसमे वजर होने हुए शहरी हृदयो की वेदना का अनुसधान है । निरजन ने बम्बई को शहरी संस्कृति का प्रतीक मानकर कविता रची थी उसके बाद जैसे बम्बई काव्य की नायिका ही हो गयी । नलिन की बम्बई म चित्रित भयकर हिंसक गिद्ध और गरुड जसे पक्षियो के बिम्ब तनाव की सृष्टि करते है ।

नलिन का काव्य शुद्ध प्रकृति की मादकता और मुग्धता लिए है और साथ ही नगर की कर्कशता, निर्भ्रान्तता और उचटापन भी उसमे है । दोनो अनुभूतियो को नलिन की माया शक्ति ने प्रभावोत्पादक बनाया है । एक जसे चढता हुआ नशा है और दूसरा उचटी हुई नींद ।

लाभशंकर ठाकर

'वही जती पाछण रम्यघोष और तडको' म अस्तित्व की तमाम विकृतिया और कारुण्य को स्वर दे कटाक्ष, वञ्चना और उपहास की दृष्टि से व्यथता का वातावरण सर्जित किया गया है । हर बार प्रकट होने वाले एव एक शब्द से केवल उच्चारण के बल पर भिन्न बिम्ब उपस्थित कर, शब्द के विरोधी या पुनरावतन भय वाले प्रतीको को नियोजित कर उन्होने काव्य मे प्रभाव उत्पन्न किया है । लाभशकर ठाकर के का य म परम्परा और प्रयोग शीलता का विवेकपूर्ण उपयोग प्राप्त होता है ।

गुजराती नयी कविता का सही प्रतिनिधित्व करने वाले लोगो म कुछ और नाम हैं । वसे तो आदोलनो की भीड म चौंकाने वाले कई नाम होते हैं पर गुजराती नयी कविता को सिताशु यशश्चन्द्र, आदिल मसूरी रघुवीर चौधरी श्रीकात शाह और अब्दुलकरीम शेख से बहुत आशाए है । सिताशु की कुछ छिटपुट कविताए प्रकाशित हुई हैं जिनके अतियथार्थवादी स्वर ने नयी कविता को एक नया कदम दिया है । आदिल मसूरी गुजराती के साथ ही हिन्दी और उदू म भी लिखते हैं । परिणामत इनकी कविता उदू के शेर रुबाई और गजल की रूमानी भावुकता के गिद घूमती है । जहा आदिल रोमानी चोले को अपने से दूर रखने म समथ हुए हैं वहा उनकी कविताएँ कुछ अधिक ही अच्छी हो गई हैं । उनका एक सग्रह 'पगरव प्रकाशित हो चुका है । अब्दुलकरीम शेख मूलत चित्रकार हैं, अमूत कला की बारीकी उनकी कविताओ को भी अमूतन की ओर झुकाती रही है । श्रीकान्त शाह एक क्रातिकारी पत्रिका रे से सम्बन्धित थे, जिसे अश्लील ठहराकर बन्द करवा दिया गया है । रे उसी अथ म क्रातिकारी है जिस अथ मे 'अकविता' आदि पत्रिकाए । किसी भी प्रकार की रूढि और परम्परा को स्वीकार करना इन्ह स्वीकार नही है । श्रीकात की कविताए भी अमूत अधिक हैं । उनका एक सकलन एक' प्रकाशित हो चुका है। रघुवीर चौधरी की कविताएँ तमसा म सगृहीत है।

इनके अतिरिक्त योसफ मकवान दिनेश कोठारी, गुलाम मोहम्मद शेख प्रबोध पारीख आदि अनेक कवि नयी कविता को सतत सहयोग देत रहे हैं ।

विश्लेषण कुछ कविताएँ

भीतर जागा दाता[1]

अज्ञेय की कविताओ म एक बौद्धिक रोमान तथा भावमय वातावरण आच्छादित रहता है। 'ब्राह्ममुहूत', एक स्वस्ति वाचन तथा 'भीतर जागा दाता जसी कविताए भल ही कुछ स्पष्ट न कर पाती हो पर उनमे वही 'कुछ' है जो तरल है सुन्दर है और मन को भला लगने वाला है। किसी कविता का गुण या दोष उसका भला लगना या न लगना ही नहीं है भली तो हम उर्दू कविता की वे भावोक्तियाँ भी लगती हैं जहा चुक गई किसी कथा की व्यथा क अतिरिक्त और कुछ नही होता।

'मतियाया सागर लहराया उस कोटि की कविताओ म नही रखी जा सकती। स्नेह से मोह स अनुराग स आपूरित ये अभिव्यक्तिया जैसी निश्छल और सहज होती हैं यह सागर तुम्हे दिया उतनी ही सहज अभिव्यक्ति है। कविता का तुम्ह अत्यत आत्मीय और निकट का एक व्यक्ति है जिसके अनुराग का मोल नही चुकाया जा सकता उसे बस दिया जा सकता है—वह सब जितना भी सभव हो। कवि के लिए यह तुम्हे पाठक के अतिरिक्त कौन हो सकता है। कवि ने जो कुछ अनुभूत किया जिस किसी ने उसके मन को अभिभूत किया—उन सबको उन तमाम अनुभूतिया की प्रतिक्रिया को वह बाटना चाहता है जो कुछ उसने जाना है—उसे दे देना चाहता है।

प्रकृति के विभिन्न आकषणो का सौंदय—वह सब जो भव्य है, कविता का माध्यम बना है। युगो से चले आ रहे उपकरणो का नए रूप म प्रयोग सराहनीय हैं। भोर मे सागर तट—फेन मे उबलती (फेन झालरदार मखमली चादर पर) लहरो पर उगती हुई सुबह के पदचिह्न (किरण अप्सराएँ भारहीन परो स थिरकी—जल पर आलते की छाप छोड पल पल बदलती) और दूर पर डगमगाता सा दीखता धुधला किनारा जिस अनुभूति का जगाता है उस अनुभूति को बाटने के लिए 'तुम्हे' छोडकर और कौन उपयुक्त है ?

मन जब तक विश्वास से नही भर जाता जब तक पूरी तरह से आश्वस्त नही हो जाता तब तक दाता नही जाग सकता। पवत और मदान सब ओर फैली हुई हरीतिमा बार बार मन म एक ही इच्छा जगाती है—अगर 'तुम' भी मेरी दष्टि स इस फली हरियाली का विस्तार देख सकते। अगर तुम्हे भी वसी ही प्रतीति होती जैसी मुझे है तो ? आमत्रण दोनो ओर से है—घाटी की आखमिचौनी खेलती पगडण्डी आकाश छूने को आतुर छरहरे पेडो का भी और गेहूँ की बालो के बीच से झाकती,राई सरसो पोस्त और तीसी की फुनगी का भी। वह सब जो स्वय में जिये क्षणो पर आधत है जो अद्वितीय है जो रूप किसी और ने नही देखा है भल ही बीर हो फूल अकुर रग नन्हे पौधे ताल-तलैया सारस ही अपनी लघुता म भी सौन्दय की पूणता से भरे रहते हैं—को बाटने का अधिकार केवल तुम्हारा है।

---

१ आँगन के पार द्वार, अज्ञेय

जब जब अकेला मन किसी स्मृति मे रोमांचित हो जाता है जब जब मन म दुर्निवार श्रद्धा उमडती है और आनन्द की पुलक मन को प्यार से सराबोर कर देती है, तब-तब दाता अनायास इस स्मृति को देने वाले के प्रति अनुराग से भर उठता है और निष्कंप होता है—

लो यह स्मृति यह श्रद्धा यह हसी,
यह आहूत स्पर्शपूत भाव
यह मैं, यह तुम, यह खिलना,
यह ज्वार, यह प्लावन,
यह प्यार, यह अट्ट उमडना—
सब तुम्हें दिया।
सब
तुम्हें
दिया।

कविता का विषय उसके रूपाकार को प्रभावित करता है, विषय की स्पष्टता अथवा दुर्बोधता पर, कविता का आकार आधारित रहता है। 'भीतर जागा दाता' सुन्दरतम क्षणो म उद्भूत भावनाओ को बटोरने और उन अनुभूतियो को बांटने की प्रक्रिया है। अनुभूति की विह्वलता के क्षणिक आवेग की तरलता जसी स्निग्ध होती है उसके लिए किसी वहद फलक की आवश्यकता नही पडती। पर यह कविता चाहे मुक्तिबोध की कविताओ की तरह अनावश्यक रूप से लम्बी नही है फिर भी उसका विस्तार मात्र पुनरुक्ति के कारण है। अलग अलग उप करणो से उपजने वाली एक जसी ही प्रतिक्रियाओ को यदि थोडा सक्षिप्त रहने दिया जाता तो सभवत कविता की 'बहा ले जाने की क्षमता और बढ़ जाती।

ब्रह्मराक्षस[1]

क्षत्रश के दूसरे अक मे 'ब्रह्मराक्षस अथवीज और विस्तार' के सन्दभ मे श्री कुबेरनाथ राय ने लिखा है—

"मो मेरा खयाल है कि जस 'लाइस आन टिण्टन एवे' और 'इम्मारिलिटी ओड' को पढकर वड स्वथ को या 'राम की शक्ति पूजा' बादलराग' और 'वनवेला को पढकर निराला को पहचाना जा सकता है—सम्पूणत भल ही न जाना जाए, पर इन कविताओ से इनका चेहरा बडा साफ हो जाता है, उसी प्रकार सिफ दो कविताएँ पढकर मुक्तिबोध के कवि व्यक्तित्व की सटीक पहचान उपलब्ध हो जाती है। ये कविताएँ हैं 'ब्रह्मराक्षस' और आकाश के दीप अँधेरे म। इनम ब्रह्मराक्षस मुक्तिबोध की सारी कविताओ से अलग स्वतत्र व्यक्तित्व रखती है। यह मुक्तिबोध की विशेष कविता है। ब्रह्मराक्षस बिम्बविधान की नवीनता और सफल रूप सयोजन एव विचार विधान की स्वतत्र सत्ता के हिसाब स मुक्तिबोध की सर्वाधिक समृद्ध रचना है।"

मुक्तिबोध की कविताओ को फैण्टेसी प्रधान कहा जाता है। फण्टेसी अर्थात् जिसमें

---

१ गजानन माधव मुक्तिबोध चाँद का मुँह टेढा है

कल्पना का निर्बाध विस्तार हो और यह सही भी है कि मुक्तिबोध की रचनाओं में यह निबंध विस्तारण 'ब्रह्मराक्षस' में अत्यधिक मुखर है।

'ब्रह्मराक्षस' एक प्रतीक को लेकर चलती है। लोककथाओं में वर्णित एक आधिभौतिक शक्ति, जो अपने पूर्वजन्म में कोई तपभ्रष्ट मनस्वी थी शहर के बाहर किसी वृक्ष पर स्थित आने जाते लोगो को अपने आक्रोश का पात्र बनाती है। लम्बी तपस्या के बाद सिद्धि के स्थान पर अभिशाप पाने की वेदना उसे हर किसी से विमुख कर देती है हर किसी को केवल शत्रु मानने को विवश कर देती है फिर भी ज्ञान के कारण अर्जित उसका अहम् खण्डित नहीं होने पाता है। पुण्य और तप की लम्बी शृंखला के बीच अनजाने ही हो गई कोई भूल उसे चैन नहीं लेने देती है और वेदना की पश्चात्ताप की एक अटूट कड़ी आरंभ हो जाती है। जितना वह उससे मुक्त होने की कोशिश करता है उतना ही वह उसके पीछे पड़ जाती है।

'ब्रह्मराक्षस' के साथ जुड़ी हुई भयावहता को साकार करती हुई कविता, निर्जन कोने में स्थित एक पुरानी इतिहास हो चुकी बावड़ी और उसकी भयावहता को और अधिक भयावह बनाने वाली खूब उलझी हुई डालियाँ और घुग्घुओं के खाली घोसलों से आरम्भ होती है। बीते हुए इतिहास की श्रेष्ठता और भव्यता आज भी चारो ओर के वातावरण में व्याप्त है।

वैसे ही हर व्यक्ति जो आत्मचेतस है जो अपने चारों ओर हो रही गतिविधियों के प्रति सजग है 'ब्रह्मराक्षस' जैसी यातना ही भुगतता है उसी तरह क्रुद्ध बेचैन पर निरन्तर कर्मरत है। उसके मन की प्रतप्त पुण्य वासना मानसिक उलझावों को जन्म देती है, उसे हर क्षण यही संदेह सालता रहता है कि उसने जो कुछ पुण्य किया, जो श्रेष्ठता अर्जित की क्या उसका कोई फल उसे मिलेगा भी? उसका संदेह, एक स्थिति पर पहुँचकर संदेह नहीं रह जाता वह वास्तविकता बन जाता है। उन अनगिनत अच्छाइयों के मध्य उसका कोई एक दोष उसके सब गुणों को दूषित कर देता है और अपनी सरलता और चंचलता भूलकर वह रात दिन अपराधग्रस्त रहने लगता है—

गहन अनुमानिता
तन की मलिनता
दूर करने के लिए प्रतिपल
पाप छाया दूर करने के लिए, दिनरात
स्वच्छ करने—
ब्रह्मराक्षस
घिस रहा है देह

लेकिन इतने पर भी जब उसकी आत्मा शुद्ध होने के स्थान पर और अधिक कालिमा ग्रस्त हो जाती है तो उसकी बौखलाहट और बढ़ जाती है वह अपना आक्रोश बाकी लोगों पर उतारना शुरू करता है। उस हर क्रिया में अपना सम्मान दिखाई देने लगता है। वह सब जिसकी उस अभीप्सा थी, छोटे छोटे संवेदना में उसे प्राप्त होनी सी अनुमानित होती हैं। और इस भ्रम में कि सब विनत होकर उसकी श्रेष्ठता स्वीकार कर रहे हैं वह अपनी

पीडा भूलकर नए सिरे से व्याख्याए आरम्भ करता है अब तक के अर्जित ज्ञान को नये अर्थ देने लगता है। ब्रह्मराक्षस की तरह वह भी अपनी श्रेष्ठता के भ्रम म डूबा हुआ है। जसे ब्रह्मराक्षस के मोहभग की ट्रजेडी आज भी कथाओ म दोहराई जाती है, उसी तरह की एक ट्रजेडी उसके लिए भी निश्चित है। बाह्य जगत के बौद्धिक कम का सदा नूतन व्याख्यान करता हुआ आत्मशुद्धि और अतीत के पुण्यो से वह अपने पाप का मोचन करना चाहता है नए पुराने सबका पुरसस्कार करना चाहता है और ब्रह्मराक्षस की तरह निरतर अपने व्यक्तित्व के अधेरे म उत्तम से उत्तमतर और अच्छे से बहुत अच्छे की प्राप्ति के लिए सदा प्रयास करने के लिए बाध्य है। अच्छे और बहुत अच्छे का सघष, अच्छे और बुरे के सघष से कहीं अधिक भयकर है लेकिन इस सघष मे मिली असफलता भी भय ही होती है। कुछ नया करने, कुछ नया खोजने के प्रयास म अपनी मानसिक समस्याओ से जूझते हुए वह टूटता रहता है और चिन्तन के इसी सग्राम म एक दिन काम आ जाता है। जिस पूणता को अतिरेकवादी रूप म प्राप्त करने की उसके मन म बलवती इच्छा थी वह वसी ही अधूरी रह जाती है।

व्यक्ति अपने मानसिक सघष और बाह्य तनाव के बीच पिसता रहता है। भावसगत और तकसगत निष्कर्षों पर पहुँचने के लिए वह हर ज्ञानी के पास भटकता रहा पर साथ ही यह भूल बठा कि बाहरी ससार मे मूल्य व्यक्ति के ज्ञान का नहीं, अपितु धन का है और बाहरी ससार मे केवल धन से अभिभूत अत करण को ही सत्य की प्राप्ति हो सकती है। मूल्यो के सघष की तरह यह ट्रजेडी नयी नहीं है। ये तमाम ब्रह्मराक्षस जो उगते सूरज की किरणो को अपने प्रति नमन और चाँद की रोशनी को अपने वन्दन की भांति मे जीते रहते हैं, सहानुभूति के, श्रद्धा के पात्र हैं।

युद्धस्थिति[1]

राष्ट्रो और जातियो के मध्य लडा जाना ही युद्ध नहीं है, और न ही केवल ब्लक आऊट की हल्की सी रोशनी म आते जाते आक्रामक विमानो की झपट, कराह पीडा और अवसाद युद्धस्थिति है। युद्ध, हमे जीवन क प्रत्येक पल करना पडता है, कभी परम्पराओ से, कभी मान्यताओ से कभी स्वय स। युद्ध न सही इस सघष कह लें लेकिन यह सघष युद्ध की विभीषिका से किसी अथ म कम महत्त्व का नहीं है। सक्षेप यह कि अपना अस्तित्वमात्र बनाए रखने के लिए हम एक नहीं अनेक युद्धो से गुजरना पडता है।

घृणा और स्वाथ से छोटी होती हुई पृथ्वी टूटती हुई आस्थाओ और सकीण सौंदय को व्यापक और उदार बनाने का प्रयास अपने ही मन म तनाव और युद्ध को पनपा देता है। मन एक ओर कहता है कि सावभौम सुख की चिन्ता करने म मुझे क्या मिलेगा, दूसरी ओर यह भी कहता है कि ये सीमाए जो हर व्यक्ति को अपने कठघरे म बन्द किये हैं—तोडनी होगी। परिणाम होता है—मानसिक तनाव, एक अदेखा युद्ध जो मन के भीतर भीतर चलता है। सही है कि हम काय अपने लिए करते हैं इच्छाएँ अपने लिए करते हैं, सुख अपने लिए

---

1 सर्वेश्वरदयाल सक्सेना एक सूनी नाव

बगोरते हैं पर साथ ही 'हर व्यापी आत्मा को जीवन का ... है। वे प्रयास में जो कुछ पा। धानगात ... विद्रोह कर उठता है वह भी मात्र ये प्रयास कुछ ... है। यह प्रयास ऐसा है जैसे घाव ... नहीं अभी हुई टपक ... पर से कोई हाथ नहीं का प्रयास करे गुलामी हुई नहीं, पूँजी की सरहदियाँ लगाकर अँधेरा दूर कर ... करे।

युद्ध जो ... व्यक्तियों की पहेलियों और ... के बीच ... इतनी वेदी का सम्बन्ध रखता है जो मन्दिर की दीवार पर ... बाहर को ... अन्दर के मालिकों को ... पृथक कर देता है—मुक्ति है। मुक्ति है वह युद्ध जो प्रेम और मैत्री से भरे हुए हृदय को स्वार्थ भरा ... रेगिस्तान बना देता है। मुक्ति है वह युद्ध जो ईश्वर का हाथ अपने सिर पर रख, ईश्वर से मन चाहे काम करवाता है मामली ...—... की तरह या शेख के मदान को सीटी की तरह उससे काम करवाता है। धर्म—जो सबको जीने का अधिकार नहीं देता, जो अपनों अपनों मारी ... धर्म ... देता है कैसा धर्म है? वह कौन सा धर्म है जो ... और ... टैंकों के द्वारा दिग्विजय करता है। ... जो धर्म के नाम पर बड़ा ... का समर्थन करने लगता है अपनी सरहदों पर होने वाले हृदय और बुद्धि के बीच के झगड़े को निपटाना पड़ता है।

जीने के लिए या अपनी सुविधा के लिए समाज और विश्व समाजवाद और पूँजीवाद जैसे खेमों में बट जाता है—पर अपने को जीवित रखने के समय में ... पता चिथड़ों में लिपटी, लेकिन हाथ में बन्दूक लिए औरत को बन्दूक देने का अधिकार उन लोगों को किसने दियाजो उसे पहनने के लिए वस्त्र नहीं दे सके। हर क्षण वितृष्णा होती है उन 'कर्तव्य परायण' और 'अधिकार रक्षक' सनिकों से जो अपने बच्चे को बचाने के लिए बतहाशा भागती हुई घबराई हुई औरत का पीछा करने को ही दुश्मन का मुकाबिला समझते हैं। जो धर्म के नाम पर एक वर्ग के ईश्वर की हत्या करके, अपने ईश्वर की स्थापना के लिए युद्ध करते हैं मानो ईश्वर अलग अलग हैं, या ... ईश्वर है जिसमें से सत्ता रखने का अधिकार केवल एक को है।

इस सब के बाद यदि जीने की इच्छा शेष रह जाती है तो यह बच्चा को काँटा से बचाने को अपना भरे पूजा घर से श्रेष्ठ समझता है, कूड़े में अन्न बीनती नई बहू को अन्न देने के लिए वह उस ईश्वर का विरोध कर सकता है जिसे सर्वज्ञ कहा जाता है। यह खोखला देने वाला समय हनुमान चालीसा और अन्य प्रार्थना मन्त्रों को दोहराने से शांत नहीं होता, इसे शांत करने के लिए अपनी मान्यताएं और विश्वास बदलने पड़ते हैं कभी परिस्थितियों के अनुरूप मनस्थिति को और कभी मनस्थितियों के अनुरूप परिस्थितियों को ढालना पड़ता है—ऐसे युद्ध के सामने, जो मन की सकड़ों सतहों पर लड़े जाते हैं वे सारे युद्ध जो केवल विध्वंस करते हैं वे सारे अस्त्र, जिनका अर्थ केवल सहार है—नगण्य लगते हैं।

ये बाहरी मोर्चे, व्यूह, जो बड़े भयंकर लगते हैं इसानियत के लिए लड़े जाने वाले युद्ध के सामने बहुत छोटे लगते हैं। जीवित रहने के लिए अपने मन के भीतर के भावुक मन को बचाए रखने के लिए हर युद्ध आवश्यक हो जाता है पर यह युद्ध हम हर मोर्चे पर अकेला छोड़ देता है—जिससे हम दूसरों के लिए अपने को समर्थ और अपने लिए स्वयं को सार्थक

सिद्ध कर सकें।

जब इतने युद्ध लडने को पडे हैं जब ईश्वर से लेकर ईश्वर के बनाए ससार के लोगो तक के विरुद्ध मोर्चा सम्भालना है जब व्यक्ति को जीने का अधिकार दिलाना है, जब मानव को धर्म का श्रेय समझाना है—इस स्थिति में बाहरी युद्ध का क्या महत्त्व रह जाता है? जब जीवन के हर कदम पर, हर आने वाले सास से हम युद्ध ही युद्ध करते हैं तब इस युद्धस्थिति को हम कैसे नकार सकते है?

युद्ध से सम्बन्धित कई काव्यो या महाकाव्यो की रचना हो चुकी है—'जयभारत', 'कुरुक्षेत्र' 'उन्मुक्त', 'पृथ्वीकल्प' और 'परशुराम की प्रतीक्षा'। युद्ध की यही स्थितियां इनमें भी हैं जो स्वार्थ का परिणाम है दो स्वार्थों की टकराहट युद्ध में परिणत होती है। 'कुरुक्षेत्र' और 'उन्मुक्त' में युद्ध के कारणो की खोज के साथ ही एक स्तर पर उसकी अनिवार्यता को स्वीकार करते हुए भी उसके भीतर से मानव मूल्यो की खोज की गई है नियति को मूल्य से जोडने का प्रयास किया गया है। जनेन्द्रकुमार के निबन्ध 'युद्ध' में जिस प्रकार के कर्मयुद्ध की स्थापना हुई है, सर्वेश्वर की यह कविता भी उसी की स्थापना करती है। उनकी इस कविता का तात्पर्य बाह्य युद्ध के कारणो की या उसकी अनिवार्यता की खोज नहीं है। होता यह है कि बाहरी युद्ध की विभीषिका के समक्ष हम अपने चारो तरफ चलते हुए मानसिक युद्ध की विभीषिका की उपेक्षा करने लगते हैं। यह कविता उसी उपेक्षित मानसिक युद्ध की भयावहता की ओर ध्यान आकर्षित करती है। उन्मुक्त और कुरुक्षेत्र का फलक व्यापक है अत उसमे किसी भी चिन्तन के लिए उभरकर आने का पूरा अवकाश है जबकि छोटी कविता होने के कारण और केवल मानसिक युद्ध को विषय बनाने के कारण इस कविता मे चिन्तन के लिए विशेष अवकाश नहीं है।

नयी कविता मे उपलब्धि के नाम पर जिस शून्य का उल्लेख बार बार होता है, वह शून्य 'युद्धस्थिति' के सामने अस्तित्वहीन हो जाता है।

छिन्न भिन्न हूँ[1]

कविता के शीर्षक से ही स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्तित्व की खण्ड-खण्ड स्थिति ही व्यक्तित्व की वास्तविकता है। व्यक्ति एक इकाई है—लगता अवश्य है ऐसा पर यह सत्य नहीं है। व्यक्ति के अन्दर अनेक ऐसे व्यक्ति रहते हैं जिनका परिचय स्वय व्यक्ति नहीं पा सकता। बदलते हुए हर क्षण के साथ मन के भीतर का एक अपरिचित व्यक्ति सामने आकर हँसने लगता है—ऐसी भयकर हँसी कि वास्तविकता का आभास होने से पूर्व ही व्यक्ति त्रस्त हो जाता है।

त्रस्त मन की ऐसी ही अभिव्यक्ति है 'मैं छिन्न भिन्न हूँ'। टुकडो मे विभाजित व्यक्ति जब अपने को सयत और एकत्र करना चाहता है तभी वे सभी टुकडे विद्रोह कर देते हैं स्थिति फिर वैसी ही रह जाती है—छन्दहीन कविता की लय जैसी, जीवन में उभरते किसी नए चिह्न जैसी घर घर घमने के बाद मिले टुकडे जैसी दीन असहाय और अनिश्चित।

---

[1] उमाशंकर जोशी अनूदित

सुख—बसत सा सुख चारो ओर से घेर लेता है पर उसका आभास भी नही होता समझ मे नही आता कि खण्डित व्यक्तित्व को लेकर इस समस्त सुख का क्या किया जाएगा। प्रकृति की विडम्बना के अतिरिक्त इसे कहा भी क्या जाए जब व्यक्तित्व की एकता स्वीकार करने पर वही सहस्रो टुकडो म विभाजित दिखाई पडने लगे।

तीन रूप हैं हमारे इस व्यक्ति के—(१) रागमय रूप—जो किसी को स्मरण कर आत्मविभोर हो जाता है, जो विरह म केवल मरण का आकाक्षी होता है हमारी इच्छाओ का मधुरतम रूप होता है। (२) द्वेषमय रूप—जो अपनी दृष्टि म विद्वेष का हलाहल छलकाते हुए हर किसी को भस्म करने वाला अपने स्पश से पलक्ष को दग्ध करने वाला होता है और (३) भयमय रूप जो चेतना के स्पदन को ही भग्न करने वाला हृदय के समस्त स्नेह को सुखा देने वाला है।

तीनो के सघप मे हर ओर खिचता है व्यक्तित्व। प्रेम की ओर—जिसके आदिस्वरूप की प्राप्ति मे भी सफलता नही मिलती, क्योकि जीवन मे प्रेम द्वारा नही सघप द्वारा ही सफलता प्राप्त होती है पर जीवन म प्राप्त अपूव अनुभव जिसके कारण प्राप्त होते है, हृदय बार बार जिसे याद करते नही थकता उससे कोई घृणा भी करे तो आखिर कसे। परिणाम यही होता है कि चारो ओर स उपहास ही उपहास मिलता है। पर ससार सिखाता क्या है हमे ? दुनियादारी ? नही, क्योकि दुनिया दुनियादारी मे विश्वास ही नही करती। यदि उसे विश्वास होता दुनियादारी मे, तो क्या सफलता के शहीद, बडे बडे व्यक्ति और करोड पति उसे बिसर सकते थे ? वह तो सभी को विस्मृति की राख से दबा देती है। उसे दुनियादारी म विश्वास होता तो वह कवियो को, पगले प्रेमियो को सता को—जिनसे उसे कोई हानि नही पहुँची है—क्षण भर को याद करके छोड देती ?

यहा कोई किसी को याद नही करता। लगता है स्मृति जीवन है पर क्या स्मृति चिरन्तन टिक सकती है यहाँ पर ? क्या हृदय की ऊष्मा व्यथ ही बिखरती है धरा पर ? नही हृदय की ऊष्मा सूय को ऊष्मा देती है हर हृदय को पुनर्जीवन देने वाली वह धडकन त्रिभुवन को जीतती हुई विस्तार पाती है।

फिर भी नही मालूम कि यह धडकन एक के बाद एक क्षीण होती जाएगी क्या ? क्या वह अनन्त हो पाएगी ? पर जस बसाख की हवा ऊपर से गुजर जाती है जैसे कोई भोला हरिण मगजल के आकषण म भटकता रहता है जसे कोई ठण्डी धार लू म ठण्डक पहुचा जाती है चेतना म आधे पल के लिए कुछ सचार सा होता है पर फिर लू म यज्ञ म सब भस्म हो जाता है।

सदेह होता है कि इच्छाओ से परिपूण मन की यह धडकन क्या कभी कुछ कर पाएगी यही सदेह खिन्न कर जाता है मन की हर धडकन छिन्न भिन्न हो जाती है।

हृदय की छिन्नभिन्नता केवल अपने विचारो के सघप से उत्पन्न नहीं है, उसमे समाज का परिवार का ससार का बहुत बडा दाय है। कविता म कही-कही एसा लगता है कि अपनी ही उक्तियो म विरोध है—पर यह विरोध मन की उहापोह स्थिति का, मन के सघर्ष का प्रतीक है।

प्राथना[1]

प्राथना शब्द से पूजा मे झुका हुआ व्यक्ति ही सामने आता है—श्रद्धा और विश्वास से भरा हुआ, अपने हर कष्ट मे, हर सघष मे ईश्वर के चरणा म आश्रय पाता हुआ।

पर आज के बदलते हुए सदर्भों मे प्राथना मे केवल श्रद्धा और भक्ति का स्थान नही है—प्राथना अब प्रश्नो से युक्त हो गई है—क्योकि जीवन के प्रश्न बढ गए हैं, क्योकि ईश्वर स्वय आज प्रश्न बन गया है। सोचने से इनकार करने वाला और ईश्वर को एकमात्र सकट हारी शक्ति मानने वालो का सदभ यहा नही है। जीवन मे जो अविश्वास और सदेह बढता ही चला जा रहा है, उससे ईश्वर भी अछूता नही है—पर भारतीयता के सस्कार हम पर इस कदर हावी हैं कि किसी तथ्य की सारहीनता समझ मे आ जाने पर भी हम उन्हे अस्वीकार नहीं कर पाते।

ईश्वर को जानने का प्रयास सायास, अनायास हर मन करता है किन्तु अत मे सब प्रश्न अनुत्तरित रह जाते हैं ईश्वर किसी भ्राति का निवारण नही कर सकता। भारती मे जलता कपूर अपनी सुगध से ईश्वर तक पहुचना चाहता है, कभी मन्दिर के कलश का ध्वज बन ईश्वर का सामीप्य अनुभूत करना चाहता है कभी सूय की ओर तकती मुग्धा कली का मोह जागता है—ईश्वर का नाम सुनने मे अच्छा लगता है—श्रुतिसुख का कारण है पर इन सबका प्रयोजन ? बार-बार नाम लेकर ईश्वर को यह जताना कि तू मुझे याद है, लेकिन मन ईश्वर के अस्तित्व की भ्रान्ति मात्र को सत्य मानता है। पर उस सबके बावजूद ईश्वर को प्रसन्न रखने की भावना सहज ही मन मे जाग जाती है।

तात्पय यह कि यह जानते हुए भी कि एक भ्राति ही हमारे जीवन की नियन्ता है, इस बात का ज्ञान होते हुए भी कि यह भ्रम है—उस भ्रम के चारा ओर बुना हुआ मान्यताओ सस्कारों और परम्पराओ का जाल अपने पाश से मुक्त नहीं करता। मकडी के जाले से निकलने में असमय कीडे की तरह हाथ पैर झटकता है, लाख सिर पटकता है पर हर प्रयास के साथ उसके बन्धन और अधिक जकड जाते हैं। उसके मन का प्रश्न प्रश्न ही रहता है, उस जाले को तोडने का, उसकी मुक्ति का कोई उपचार नही है और हमारी श्रद्धा और अश्रद्धा के मध्य ठिठकी हुई पीढी के सामने और कोई माग भी नही है।

पानीपत[2]

भारत के मध्यकालीन इतिहास मे जो निर्णायक युद्ध हुए उनमे पानीपत के तीनो युद्ध महत्वपूर्ण हैं। पानीपत पर्याय है युद्ध के मदान का—कुरुक्षेत्र की भाँति पर सुरेश दलाल की कविता म किसी प्रकार के बाहरी आक्रमण का वणन नही है। इब्राहीम लोदी और बाबर, हेमू और अकबर तथा मराठे और अहमदशाह अब्दाली यहाँ हैं—पर प्रच्छन्न रूप में, उनका नाम कविता की किसी पक्ति म नहीं आता, पर हर पक्ति उस युद्ध की

---

१ सुरेश जोशी प्रत्यचा
२ सुरेश दलाल स्कांन

निर्णायक स्थिति की प्रतीक है। यह पानीपत हमारी अपनी दिनचर्या है—एक जसी नीरस और बेलौस।

यह स्थिति प्रारभ होती है रात के उस पहर से जब आंख रह रहकर घडी के घण्टो के साथ जाग जाती है। प्रतिदिन का कायक्रम विलम्ब नहीं होने देता—ब्रश, ब्लेड, तौलिया बार बार याद दिलाते है जल्दी करने की, होने वाली देर का एहसास दिलाते हैं। हाथ म अखबार और कधे पर कोट लटका (सनिक की तरह अस्त्रशस्त्र से सुसज्जित होकर) कूच करने पर मोर्चे पर सन्नद्ध मिलती है—आफिस की मेज, फाइल, खिझाता हुआ फोन और पानी का गिलास यह मार्चा जानता है कि कसे फुसत मिलती है सास लेने के लिए। इधर के मोर्चे के बाद जिन मोर्चों पर लडना पडता है वे है लच टाइम मे खाली गिलासो पर बतरानियाँ, बेशऊर मजाक और घर से लाया हुआ खाना। और फिर बढता हुआ क्रम शाम के समय घर, पत्नी परिवार—एक भी नया चेहरा नही एक भी ताजी मुद्रा नही, पर उस सब मे बाजार के भाव की तरह चढते उतरते खुश होते, खीझते मूड को लेकर व्यस्त रहना पडता है। और इसी रौ मे जीवन बढता रहता है इसी तरह हर नया दिन आता है जसे एक स्वर म दिन भर कथा कहते हुए पडितजी का नीरस थका स्वर ऊबा जाता है वसे ही जीवन की यह एकरसता बार-बार यह इच्छा करने को बाध्य करती है कि कब पूरा होगा यह रोज ह फाडकर मुखडा हो जाने वाला अध्याय ? कब समाप्त होगा यह वितृष्णा भरा युद्ध ?

ऐसे तो गुजराती की नयी कविता मे इस प्रकार की बेहूदी दिनचर्या की दुखद अनुभूति का काफी वणन हुआ है पर यह कविता कुछ न कहते हुए भी बहुत कुछ कह जाती है युद्ध म भीतर तक लिप्त उस व्यक्ति की तरह जो युद्ध को भोगता है, झेलता है पर उससे अपने आपको अलग नही कर सकता।

नयी कविता उपलब्धि और अभाव

आधुनिक ससार म कविता का महत्त्व बहुत कम होता जा रहा है। यह सत्य है कि कविताओ का प्रकाशन पिछले दिनों पर्याप्त हुआ है इसम प्रतिभा के आधिक्य और कविताओ म रुचि प्रमाणित की जा सकती है। कविता सकलित करने वाले व्यक्ति अपने युग के विषय मे कहते हैं कि काव्यात्मक सक्राति को कोई निश्चित रूप देना, या ऐसी अपेक्षा करना अनुचित है।

अनुभव की गरिमा हर युग म कुछ ही व्यक्ति समझ सकते हैं और कवि का महत्त्व पूण होना इसी बात का सूचक है कि वह उसी युग का है और सम्प्रेषण की शक्ति उसके पास है। उसकी अनुभूति-क्षमता और सम्प्रेषण शक्ति मे अन्तर नही किया जा सकता क्योकि एक के अभाव म दूसरे का अथ हम पर स्पष्ट नहीं होगा। वह (कवि) कुछ हिनैषी अतिरिक्त भावुक और कुछ अतिसजग है और साधारण व्यक्ति से अधिक एक व्यक्तित्व है। उसे मालूम है कि वह क्या चाहता है और उसकी रुचि किस म है? वह कवि इसलिए है कि उसके अनुभव को उसकी रुचि से अलग नही किया जा सकता। कविता अनुभव के वास्तविक रूप की सूक्ष्मता को उस सीमा तक सम्प्रेषित करती है जहाँ तक कोई और साधन नही कर पाते। यदि कविता और युग की बुद्धि का एक दूसरे से सम्पक छूट जाए तो कविता का महत्त्व कम हो जाता है।

एक साधारण पाठक प्राचीन परम्परा और सामाजिक परिवश म प्राप्त शिक्षा से भी दूर हो गया है। यहाँ तक कि साधारण भावना की कविता भी उसके लिए असाध्य है और भविष्य की कविता किसी भी प्रकार सहज नही होने जा रही है।

आज की महत्त्वपूण कृतियाँ (कविता ही नही साहित्य और कलामात्र) अपने सप्रेष्य के अनुकूल ही सम्प्रेषण की नवीनता, जटिलता और सूक्ष्मता क कारण साधारण व्यक्तियो की अपेक्षा एक चुनी हुई अल्पसख्या का ही अपील करती है।

सम्प्रेषण की यह समस्या समस्त भारतीय भाषाओ के नए साहित्य की समस्या है क्योकि स्वाधीनता के बाद विकसित होन वाला साहित्य एक ही भावभूमि पर आधारित है और यह नया काव्य अपने आपम कविता क क्षेत्र म महत्वपूण उपलब्धि है।

हिन्दी म छायावाद तो सन ३५ ३६ के आसपास ही स्वच्छन्दतावाद और प्रगतिवाद के

रूप म दो टूक हो चुका था, स्वातन्त्र्योत्तर युग मे प्रगतिवाद साम्यवादी नारेबाजी के शख नाद का अनुगमन करता हुआ भावविहीन मरु की रेत म लुप्त हो गया और स्वच्छन्दतावाद अधकचरी अतिभावुकता के कारण कविसम्मेलनीय मचो से होता हुआ फिल्म जगत का शर णार्थी बन गया। इसलिए जितनी भी और जो भी उपलब्धि इस काल म हुई है वह नयी कविता के ही आँगन मे फली फूली है।

गुजराती की नयी कविता ने गाधीयुग के समतावादी स्वर और अतिशय भक्ति की विह्वलता क दोना छोरो क बीच से अपना माग बनाया है। सन् ५० के बाद विकासमान कविता कई अर्थों म पहले की कविता स अलग और आगे है। गुजराती कविता म गीतितत्त्व और उसकी गीतात्मक भावुकता काव्य की अनिवाय विशेषताओ म से है। सन ५० के बाद कविता म गीतात्मकता भी थी और भावुकता भी पर वयक्तिक रूप की चेतना का एक नया स्वर भी था जिससे पहले की कविता अपरिचित थी।

नयी कविता के कृतिकारो ने जिन्दगी को उसकी पूरी विविधता और जटिलता मे जिया और भोगा है तथा अभिव्यक्त किया है। उसी को नये कवि ने अपना परम और एक मात्र लक्ष्य माना है और यदि उसकी राह मे कोई परम्परागत अभ्यास या कोई रूढिगत बाधा आई है तो उसे छोडने तोडने म उसने आनाकानी नही की है। इसके लिए उसे गुमराह गर जिम्मदार या परम्पराद्रोही कहा गया है तो इसकी उसने परवाह नही की है। कवि कम को ही उसने अपना एकमात्र धम माना है जिसके लिए उस बडे ही साहस, सकल्प और दाविन इच्छा की जरूरत पडी है कुछ इन गुणो के अभाव के कारण नए अपरिचित रास्ते को खोजत और उन पर चलते बहुत दूर नही निकल पाए हैं—बहरहाल उसकी दिशा सही रही है—वही इस युग म सच्ची कविता की दिशा है और उसकी उपलब्धि जसी भी वह है, सच्ची उपलब्धि है नई तो वह है ही।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद और आज भी, पुराना कवि सोचता है कि भारत को एक विदेशी शक्ति ने अपने पशुबल से अपने लोह-बधन म जकड दिया था। कुछ शिक्षा की पराजय क बाद आत्मिक बल और गाधी जी क आध्यात्मिक नतृत्व न देश के विशाल जनगण को एकता और अहिंसा के मन्त्रबल से इतना समथ और शक्तिशाली बना लिया कि पशुबल को पराजित होना पडा और इसी के अनुपम म पुराना कवि सोचता है कि अब फिर स भारत ने अपना खोया हुआ गौरव प्राप्त कर लिया है और उसे भौतिकता को आध्यात्मिकता के अकुश से वशीभूत करके भारतीय संस्कृति की विशिष्टता उजागर करनी है।

दूसरी ओर नय कवि की दृष्टि म भारत अपनी कमजोरियों ■ गुलाम बना था, क्योंकि उसकी सृजनशक्ति लुप्त हो गई थी वह रूढि और अधविश्वासों म जकड गया था, उसने अपनी परम्परा से केवल प्रगति का निषध पाना शुरू कर लिया था और इसलिए वह आन्तरिक दुबलता का शिकार हो गया था।

पुराना कवि उस ससार की ओर देखता है जो वास्तव में नहा है, जिसे पाना सभव नहीं है और यदि पा भी गए तो देखेंगे कि हम एक ऐस विश्व म पहुँच गए हैं जहाँ जनगण विपन्नता और अज्ञान म घुट घुट कर जीने क लिए विवश है। सच तो यह है कि स्वतन्त्रता का बाद भी ऐसा ध्यान आमक है क्योंकि वह यथाथ क तथ्य से दूर का अलग्ना कर

दनी है। वह यह भूल जाती है कि हमारे एकता आंदोलन का सबसे बड़ा विद्रूप यही है कि स्वतन्त्रता का अर्थ देश का विभाजन है। महात्मा गांधी के भूधराकार व्यक्तित्व का कीर्तिगान करने वाला महाकाय महाकाव्य 'लोकायतन' इस करुणा पर आँखें बन्द कर लेता है जबकि 'अंधायुग' इस पितृवध और भ्रातवध को पूरी करुणा और मानवीयता से रूपायित करता है। अंधायुग निर्विवाद रूप से हमारे नए संसार की ओर देखता है, वह केवल इसी करुणा का नहीं, विश्वयुद्धों और शरणार्थी शिविरों में बंटी विश्वव्यापी करुणा का अश्रुलेख है।

स्वतन्त्रता के नशे में हम कुछ दिन ऐसे डूबे थे कि यह भूल गए कि स्वतन्त्रता क्यों और कैसे मिली थी। वह नशा भी कृत्रिम था क्योंकि स्वतन्त्रता, विभाजन और हत्याकाण्ड तीनों साथ ही साथ आए थे। पर सदियों से स्वतन्त्रता की तड़प को शांत करने के लिए थोड़ा नशा आवश्यक था। हमारा स्वतन्त्रता का नशा वैसा ही था जैसा 'गोदान' में गिरधारी का है जो बरस भर की मेहनत से गाढ़ी फसल को बेचकर कर्ज चुकाता है किन्तु तालू में एक इकन्नी छिपा लेता है उसकी ताड़ी पीकर झूमते चलता है और पूछे जाने पर कहता है कि इकन्नी में नशा क्या आता है पर इतने दिन मेहनत की है तो जानबूझ कर झूम रहा हूं कि जिससे दूसरे समझें कि नशे में हूँ। स्वतन्त्रता प्राप्ति पर हमारा विजयोल्लास ऐसा ही कृत्रिम नशा था वरना स्वतन्त्रता पाने में हमने अपने आदर्श की और आदर्श के नायक दोनों की हत्या कर दी थी।

पुराना कवि इस पीड़ा को नहीं देखना चाहता। वह भारत के अतीत स्वप्न से ऐसा मुग्ध है कि उसी में लौट जाना चाहता है। उसने कहा तो जरूर था कि 'सिंहासन खाली करो कि जनता आती है' पर जब उसे भी सिंहासन पर बैठा दिया गया तो वह चुप हो गया।[1]

नये कवि का संसार इससे भिन्न है। वह भारत के अतीत की ओर नहीं लौटना चाहता। वह नारेबाजी नहीं करता क्योंकि नारा देना नेताओं का काम है और वह नेता नहीं एक साधारण व्यक्ति है जो नये विश्व को पाने के लिए बेचैन है, पर उन शक्तियों के पदाघात से छटपटा रहा है जो अतीत के स्वप्न से बंधी, उसे इस पथ पर जाने से रोक रही हैं।

नयी कविता स्वप्न नहीं देखती संदेश या उद्‌बोधन नहीं देती, जो कुछ उसका अनुभव है वह उसका ईमानदार आलेख तैयार करती है और इस प्रयास में जब वह यथार्थ के दलदल में फंस जाती है तो उसकी अभिव्यक्तियों को, उसकी बेचैनी को कुण्ठा कहा जाता है क्योंकि धारणा प्रायः यही है कि कविता आदर्श कथन का पर्याय है—और यदि कुण्ठा की बात कही गई है तो जरूर कुण्ठा का प्रचार कर रही है। यह हमारी व्यवस्था की ही त्रुटि है कि दर्द से कराहते रोगी पर कोई डाक्टर यह आरोप नहीं लगाएगा कि वह रोग का प्रचार कर रहा है। और आधुनिक जीवन के ये रोग सबको समान रूप से ग्रस्त किए हुए हैं, सब छटपटाते हैं क्योंकि कटु यथार्थ का घेरा उन्हें भी अपनी परिधि में समेटे है। विज्ञान समस्त मानवता को सुखी करने की शक्तियों का तो विकास कर चुका है किन्तु व्यक्ति को अतीत के

१ नयी कविता उपलब्धि और संभावना' पर दिल्ली विश्वविद्यालय में दिए गए, श्री भारतभूषण अग्रवाल के भाषण से उद्‌धृत।

व्यामोह से मुक्त कर लेना और स्वार्थों से दूर नहीं कर पाया है। नयी कविता में इसी विश्वव्यापी मानवव्यथा का उसके पूरे वैविध्य के साथ अंकन है और उसका स्वरूप भी निरंतर विश्वव्यापी बनता जा रहा है। यही कारण है कि उसमें संकीर्ण राष्ट्रीयता न होकर एक अविशेष अंतर्राष्ट्रीयता है, थोथा उपदेश न होकर गहरी आत्मपीडा है। नयी कविता कुण्ठा की नहीं, दर्द की कविता है—वह दर्द जो व्यवस्था की यान्त्रिकता और मतवादों की स्वार्थान्धता से उत्पन्न होता है। उस दृष्टि से नयी कविता का सम्बन्ध सीधे मानव की नियति से है जिसकी अभिव्यक्ति निजी और प्रामाणिक स्तर पर हो रही है। सिद्धांत और आदर्श मानव नियति को सुन्दर बनाने में असमर्थ सिद्ध हो रहे हैं विज्ञान को मानव विनाश के दुष्काण्ड में प्रयुक्त किया जा रहा है, सभ्यता और संस्कृति को स्वार्थों का साधन बनाया जा रहा है। नया कवि इस विभीषिका का द्रष्टा ही नहीं, भोक्ता भी है।

यह नए कवि का संसार है जो उसके मन में तो है ही जीवन के हरेक क्षेत्र में भी है और नए कवि को प्रतिपल प्रभावित और रूपायित करता है। इस संसार में साँसें लेता और जीवन जीता अपने स्थान पर अपनी अपनी स्थिति में वह अपने अनुभवों को व्यक्त और वितरित करता है। उसका सृजन उसके यथार्थ से जुड़ा है, वह उसके जीने की शर्त है। इस संसार को मुक्त करने के लिए जूझना है और उसके लिए कविता चाहिए—ऐसी कविता जो वादों से ग्रस्त न हो भविष्य के किसी पूर्व कल्पित साँचों में मनुष्य को फिट करने की कोशिश न करती हो—ऐसी कविता नयी कविता ही हो सकती है क्योंकि इसमें परम्परा का आग्रह नहीं है मतवादिता का आग्रह नहीं है छन्द का आग्रह नहीं है। वह कवि को मुक्त करती है कि वह जैसे चाहे अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करे, व्यक्ति में निहित विश्व मानव की मूर्ति को उजागर करे। उसकी प्रत्येक रचना का अपना एक विशिष्ट और निजी छन्द है, उसमें व्यक्त अनुभूति की अनिवार्यता से उसी के साथ जन्मा है। भाव पक्ष और कला पक्ष को पारखी अलग अलग भले ही करें कवि के मन में कविता समग्र रूप में जागती है—इसीलिए नयी कविता कोई ऐसी धारा नहीं है जिसमें कवि का व्यक्तित्व महत्त्वहीन हो। वह नए मानव के नए मन का व्यक्त रूप है उसमें उतना ही वैविध्य है जितना मानव व्यक्तियों में और उतनी ही एकता है जितनी मानवसमाज में। नयी कविता का एकत्र रूप में अध्ययन किये जाने पर यह लक्षित होगा कि उसमें स्वातन्त्र्योत्तर भारत की कठिन यात्रा अपनी पूरी गहराई से अंकित है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

हिन्दी

अकविता और कला सन्दर्भ	श्याम परमार
अकेले कंठ की पुकार	अजित कुमार
अनुक्षण	प्रभाकर माचवे
अनुपस्थित लोग	भारत भूषण अग्रवाल
अपनी शताब्दी के नाम	दूधनाथ सिंह
अभी और कुछ	शकुंत माथुर
अभी बिल्कुल अभी	केदार नाथ सिंह
अरी ओ करुणा प्रभामय	सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय
अंधायुग	धर्मवीर भारती
अँधेरा कविताए	भवानी प्रसाद मिश्र
अर्द्धशती	बालकृष्ण राव
अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या	रामस्वरूप चतुर्वेदी
आकाश विभाजित है	विष्णुचन्द्र शर्मा
आत्मजयी	कुंवर नारायण
आत्मनेपद	अज्ञेय
आत्महत्या के विरुद्ध	रघुवीर सहाय
आधुनिक कथा साहित्य और मनोविज्ञान	देवराज उपाध्याय
आधुनिक कविता का मूल्यांकन	इन्द्रनाथ मदान
आधुनिक कविता और मूल्यांकन	शिवकुमार मिश्र
आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ	नामवर सिंह
आधुनिक साहित्य का परिदृश्य	अज्ञेय
आधुनिक हिन्दी कविता मे चित्रविधान	रवीन्द्र भ्रमर
आधुनिक हिन्दी कविता मे शिल्प	कैलाश वाजपेयी

आलोचना और आलोचना	देवीशंकर अवस्थी
आस्था और सौन्दर्य	रामविलास शर्मा
आवाजों के घेरे	दुष्यंत कुमार
आँगन के पार द्वार	अज्ञेय
ओ अप्रस्तुत मन	भारतभूषण अग्रवाल
इत्यलम्	अज्ञेय
इन्द्रधनु रौंदे हुए ये	अज्ञेय
एक साहित्यिक की डायरी	गजानन माधव 'मुक्तिबोध'
एक सूनी नाव	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
एकाकी दोनों	स्नेहमयी चौधरी
कविताएँ	कीर्ति चौधरी
कविताएँ और कविताएँ	इन्द्रनाथ मदान
काठ का सपना	मुक्तिबोध
काठ की घंटियाँ	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना
कागज के फूल	भारतभूषण अग्रवाल
कुछ कविताएँ	शमशेर बहादुर सिंह
कुछ और कविताएँ	शमशेर बहादुर सिंह
कुकुरमुत्ता	निराला
कनुप्रिया	धर्मवीर भारती
कितनी नावों में कितनी बार	अज्ञेय
गीतफरोश	भवानीप्रसाद मिश्र
चकित है दुःख	भवानीप्रसाद मिश्र
चक्रव्यूह	कुँवरनारायण
चाँद का मुँह टेढ़ा है	मुक्तिबोध
चौंसठ कविताएँ	इंदु जैन
छायावादोत्तर काव्य	सिद्धेश्वर प्रसाद
जो बंध नहीं सका	गिरिजाकुमार माथुर
झूठा सच	यशपाल
ठण्डा लोहा	धर्मवीर भारती
तार सप्तक	सं० अज्ञेय
तीसरा सप्तक	सं० अज्ञेय
दिनारंभ	श्रीकान्त वर्मा
दूसरा सप्तक	सं० अज्ञेय
देशान्तर	सं० धर्मवीर भारती
देहात से हटकर	कैलाश वाजपेयी
धरती	त्रिलोचन

धूप के धान	गिरिजाकुमार माथुर
नदी के द्वीप	अज्ञेय
नया सवेरा	रामविलास शर्मा
नया हिन्दी काव्य	शिवकुमार मिश्र
नयी कविता	कुमार विमल
नयी कविता के प्रतिमान	लक्ष्मीकात वर्मा
नयी कविता सीमाएँ और सभावनाएँ	गिरिजाकुमार माथुर
नयी कविता का आत्मसघर्ष	मुक्तिबोध
नयी कविता मे सौन्दर्यबोध और अन्य निबन्ध	गायत्री वैश्य
नए प्रतिमान पुराने निकष	लक्ष्मीकात वर्मा
नये सुभाषित	दिनकर
नाव के पाँव	जगदीश गुप्त
नाश और निर्माण	गिरिजाकुमार माथुर
नेहरू अभिनन्दन ग्रथ	स० अज्ञेय
परिवेश हम तुम	कुवर नारायण
पल्लव	सुमित्रानन्दन पन्त
प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड	रागेय राघव
प्रगतिवाद एक समीक्षा	धर्मवीर भारती
प्रतीक और प्रतीकवाद	डा० चन्द्रकला
प्रयोगशील कविता और उसके प्रेरणा स्रोत	श्रीराम नागर
प्रयोगवादी काव्यधारा	रमाशकर तिवारी
पाश्चात्य काव्यशास्त्र सिद्धान्त और वाद	स० राज कुमार कोहली
प्रारम्भ	स० जगदीश चतुर्वेदी
फूल नही रग बोलते हैं	केदारनाथ मिश्र
बावरा अहेरी	अज्ञेय
बाँस का पुल	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
बोलने दो चीड को	नरेश कुमार मेहता
भाषा और सवेदना	रामस्वरूप चतुर्वेदी
मछलीघर	विजयदेव नारायण साही
माध्यम मैं	शम्भुनाथ सिंह
मानव मूल्य और साहित्य	धर्मवीर भारती
मायादर्पण	श्रीकात वर्मा
मिथक और स्वप्न	रमेश कुतल मेघ
युग चितन	नरेन्द्र देवडा
रात बीती	बालकृष्ण राव
लहर	जयशकर प्रसाद

आलोचना और आलोचना	देवीशंकर अवस्थी
आस्था और सौन्दर्य	रामविलास शर्मा
आवाजों के घेरे	दुष्यंत कुमार
आँगन के पार द्वार	अज्ञेय
ओ अप्रस्तुत मन	भारतभूषण अग्रवाल
इत्यलम्	अज्ञेय
इन्द्रधनु रौंदे हुए ये	अज्ञेय
एक साहित्यिक की डायरी	गजानन माधव मुक्तिबोध
एक सूनी नाव	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
एकाकी दोनो	स्नेहमयी चौधरी
कविताए	कीर्ति चौधरी
कविताएँ और कविताए	इन्द्रनाथ मदान
काठ का सपना	मुक्तिबोध
काठ की घंटियां	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना
कागज के फूल	भारतभूषण अग्रवाल
कुछ कविताएं	शमशेर बहादुर सिंह
कुछ और कविताए	शमशेर बहादुर सिंह
कुकुरमुत्ता	निराला
कनुप्रिया	धर्मवीर भारती
कितनी नावो मे कितनी बार	अज्ञेय
गीतफरोश	भवानीप्रसाद मिश्र
चकित है दुःख	भवानीप्रसाद मिश्र
चक्रव्यूह	कुंवरनारायण
चाँद का मुह टेढ़ा है	मुक्तिबोध
चौंसठ कविताए	इन्दु जैन
छायावादोत्तर काव्य	सिद्धेश्वर प्रसाद
जो बंध नही सका	गिरिजाकुमार माथुर
झूठा सच	यशपाल
ठण्डा लोहा	धर्मवीर भारती
तार सप्तक	सं० अज्ञेय
तीसरा सप्तक	सं० अज्ञेय
दिनारंभ	श्रीकान्त वर्मा
दूसरा सप्तक	सं० अज्ञेय
देशान्तर	सं० धर्मवीर भारती
देहात से हटकर	कैलाश वाजपेयी
धरती	त्रिलोचन

धूप के धान	गिरिजाकुमार माथुर
नदी के द्वीप	अज्ञेय
नया सवेरा	रामविलास शर्मा
नया हिन्दी काव्य	शिवकुमार मिश्र
नयी कविता	कुमार विमल
नयी कविता के प्रतिमान	लक्ष्मीकांत वर्मा
नयी कविता सीमाएँ और सभावनाएँ	गिरिजाकुमार माथुर
नयी कविता का आत्मसंघर्ष	मुक्तिबोध
नयी कविता में सौन्दर्यबोध और अन्य निबन्ध	गायत्री वैश्य
नए प्रतिमान पुराने निकष	लक्ष्मीकांत वर्मा
नये सुभाषित	दिनकर
नाव के पाँव	जगदीश गुप्त
नाश और निर्माण	गिरिजाकुमार माथुर
नेहरू अभिनन्दन ग्रंथ	स० अज्ञेय
परिवेश हम तुम	कुवर नारायण
पल्लव	सुमित्रानन्दन पन्त
प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड	रांगेय राघव
प्रगतिवाद एक समीक्षा	धर्मवीर भारती
प्रतीक और प्रतीकवाद	डा० चन्द्रकला
प्रयोगशील कविता और उसके प्रेरणा स्रोत	श्रीराम नागर
प्रयोगवादी काव्यधारा	रमाशंकर तिवारी
पाश्चात्य काव्यशास्त्र सिद्धान्त और वाद	स० राज कुमार कोहली
प्रारम्भ	स० जगदीश चतुर्वेदी
फूल नही रग बोलते हैं	केदारनाथ मिश्र
बावरा अहेरी	अज्ञेय
बाँस का पुल	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
बोलने दो चीड को	नरेश कुमार मेहता
भाषा और सवेदना	रामस्वरूप चतुर्वेदी
मछलीघर	विजयदेव नारायण साही
माध्यम मैं	शम्भुनाथ सिंह
मानव-मूल्य और साहित्य	धर्मवीर भारती
मायादर्पण	श्रीकांत वर्मा
मिथक और स्वप्न	रमेश कुन्तल मेघ
युग चिन्तन	नरेन्द्र देवडा
रात बीती	रामकृष्ण राव
लहर	जयशंकर प्रसाद

लाल फूलों वाली टहनी	विनोदचन्द्र पाण्डेय
लोकप्रिय कवि अज्ञेय	स० विद्यानिवास मिश्र
लोकप्रिय कवि गिरिजाकुमार माथुर	स० नगेन्द्र
वनपाखी सुनो	नरेश कुमार मेहता
विश्व काव्य की रूपरेखा	स० प्रकाश जैन
विवेक के रंग	स० देवीशंकर अवस्थी
शब्द दंश	जगदीश गुप्त
शहर अब भी संभावना है	अशोक वाजपेयी
शिला पंख चमकीले	गिरिजाकुमार माथुर
सफेद चिड़िया	विनोदचन्द्र पाण्डेय
स्वप्न भंग	प्रभाकर माचवे
सात गीत वर्ष	धर्मवीर भारती
साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य	रघुवंश
साहित्य की समस्याएँ	शिवदान सिंह चौहान
सूर्य का स्वागत	दुष्यंत कुमार
सीढ़ियों पर धूप में	रघुवीर सहाय
संक्रांत	कैलाश वाजपेयी
संशय की एक रात	नरेश कुमार मेहता
हरी घास पर क्षण भर	अज्ञेय
हिन्दी कविता और अरविन्द दर्शन	प्रतापसिंह चौहान
हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास	लक्ष्मीनारायण लाल
हिन्दी काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत	केसरीनारायण
हिन्दी काव्य पिछला दशक	गोविन्द शर्मा रजनीश
हिन्दी काव्य में प्रतीकवाद का विकास	वीरेन्द्र सिंह
हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद	विजयशंकर मल्ल
हिन्दी नवलेखन	रामस्वरूप चतुर्वेदी
हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामचन्द्र शुक्ल
हिमकिरीटिनी	माखनलाल चतुर्वेदी
त्रिशंकु	अज्ञेय

गुजराती

अर्घ्य	स्नेहरश्मि
अपिच	सुरेश जोशी
अभिज्ञा	उमाशंकर जोशी
अभिरुचि	उमाशंकर जोशी
अल्पविराम	निरंजन भगत

अशान्त रात्रि	प्रियकात मणियार
अर्वाचीन कविता	सुन्दरम
अर्वाचीन काव्य साहित्य ना वहेणो	रामनारायण पाठक
आर्द्रा	उशनस
आन्दोलन	राजेन्द्रशाह
आधुनिक कविता प्रवाह	जयन्त पाठक
आधुनिक कविता नर विभ्रमो	जयन्त पाठक
आपणी कविता समृद्धि	स० बलवन्त ठाकोर
आलोक	जयन्त पाठक
इगित	हेमन्त देसाई
उदगार	नलिन रावल
उपजाति	सुरेश जोशी
एक	श्रीकात शाह
एकान्त	सुरेश दलाल
कवि नी साधना	उमाशकर जोशी
काव्य मगला	सुन्दरम्
किंचित	सुरेश जोशी
किन्नरी	निरजन भगत
कोया भगत नी कडवी वाणी	सुन्दरम
गगोत्री	उमाशकर जोशी
गुजराती साहित्य नी विकास रेखा	धीरूभाई ठाकर
छन्दोलय	निरजन भगत
तणखो	लाभशकर ठाकर
तमसा	रघुवीर चौधरी
ध्वनि	राजेन्द्र शाह
नमेली साँज	हसमुख पाठक
नवल ग्रथावलि	न० पारेख
नवी कविता	मनसुखलाल झवेरी
नान्दी	प्रजाराम
निशीथ	उमाशकर जोशी
निर्मल	निनु मजुमदार
पगरव	आदिल मसूरी
पनघट	स्नेहरश्मि
प्रत्यचा	सुरेश जोशी
प्रतीक	प्रियकात मणियार
परिक्रमा	बालमुकुन्द दवे

प्राचीना	उमाशंकर जोशी
फीण नी दीवालो	ज्योतिष जानी
मौन	हरीन्द्र दवे
रुचि अने रूप	उशनस
वही जती पाछल रम्य घोषा	लाभशंकर ठाकर
वातायन	चीनु मोदी
विश्व शांति	उमाशंकर जोशी
शांत कोलाहल	राजेन्द्र शाह
शिल्प	दिनेश कोठारी
श्रुति	राजेन्द्र शाह
शैली अने स्वरूप	उमाशंकर जोशी

अँग्रेजी

An Assessment of Twentieth Century Literature—Issacs
Annals of Innocence and Experience—Herbert Read
Age of Reason —Jean Paul Sartre
American Literature in the Twentieth Century—Thorpe
Aristotle s Poetics and Rhetoric—T A Maxon
Background of Twentieth Century Literature—Issacs
Baudlaire—Henry Peyre
Classic, Romantic and modern—Barzun
Collected Poems—D H Lawrence
Collected Poems—Ezra Pound
Collected Poems—T S Eliot
Cultural History of India—A Yusuf Ali
D H Lawrence—Mark Spilka
Diary of Franz Kafka—Kafka
Existential Ethics—Mary Warneck
Existentialism and Humanism—Jean Paul Sartre
Forces in Modern British Literature—W Y Tindall
Freud and Post Freudians—J A C Brown
Illusion and Reality—Christopher Caudwell
Imagination and Its Wonder—Arthur Lowell
Imagination and Fancy—Leigh Hunt
Intimacy—Jean Paul Sartre
Key to Modern Poetry—Durrel

Literary Essays of Ezra Pound—T S Eliot
Language and Reality—W Marshall Urban
Making of the Poem—Stiff and Spendour
Metamorphosis and Other Stories—Franz Kafka
Nausea—Jean Paul Sartre
New Bearings in English Poetry—F R Lewis
Outsider—Albert Camus
Our Heritage—Humayun Kabir
Poetry and Experience—Moleash
Plague—Albert Camus
Prose and Poems—Pasternak
Psychological Contribution of Sigmund Freud—C T Bhopatkar
Reason in Existentialism—R K Sinari
Reprieve—Jean Paul Sartre
Resistence, Rebellion and Death—Albert Camus
Road to Freedom—Jean Paul Sartre
Selected Essays—T S Eliot
Sense and Sensibility in Modern Poetry—Conner
Struggle of Modern Man—Stiff & Spendour
The Background of English Literature—C M Bowra
The Basis of Artistic Creation in Fine Arts—Rhys Carpenter
The Fall—Albert Camus
The Future Poetry—*Sri Aurobindo*
The Myth of Sisyphus—Albert Camus
The Poetic Image—Cecil Day Lewis
The Posthumous Papers of D H Lawrence—Pheonix
The Symbolist Movement in Literature—Arthur Symons
Twentieth Century English Literature—A C Ward
T S *Eliot*—Moments and Patterns—Leonard Unger
Words—Jean Paul Sartre